श्री राम उवाच-37

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः

आचार्य श्री रामलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः

संस्करण प्रथम, अक्टूबर, 2023
4000 प्रतियाँ

मूल्य ₹ 125/-

प्रकाशक **साधुमार्गी पब्लिकेशन**
अंतर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग,
श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने,
नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.)
☎ 0151-2270261
e-mail : sahitya@sadhumargi.com

ISBN 978-93-91137-87-8

मुद्रक साक्षी प्रिंटर्स, जयपुर, मो. 9829799888

श्रद्धा से मिले सफलता

सामान्य रूप से कहा जाता है कि सफलता के लिए पुरुषार्थ आवश्यक है। इससे इनकार भी नहीं किया जा सकता। यह सच है। इस सच के साथ एक प्रश्न उठता है कि जब सभी यह जानते हैं कि पुरुषार्थ के बिना सफलता नहीं मिल सकती तो सफलता की इच्छा रखने वाले लोग पुरुषार्थ कर क्यों नहीं पाते?

'जाकी रही भावना जैसी' की तर्ज पर इस प्रश्न के कई जवाब हो सकते हैं। जितने मुँह उतनी बातें हो सकती हैं। चाहे जैसी भावना रहे, चाहे जितनी बातें हो जाएं पर मूल कारण है श्रद्धा का अभाव। श्रद्धा के अभाव में पुरुषार्थ संभव नहीं हो पाता। संभव है भी नहीं क्योंकि पुरुषार्थ के लिए पौरुष होना आवश्यक है और पौरुष निर्मित होता है श्रद्धा से। श्रद्धा जितनी अधिक होगी, जितनी सशक्त होगी, व्यक्ति उतना ही पौरुष से संपन्न होगा। श्रद्धा ही पुरुषार्थ को जगाती है। श्रद्धा के बल पर ही पुरुष असंभव दिखने वाले कार्यों को संभव कर देता है। सच यह है कि श्रद्धा है तो ही पुरुष है। श्रद्धा के अभाव में पुरुष, पुरुष नहीं है, वह पुरुषाकार वस्तु है। वह खेतों में खड़ा किए गए उस पुतले के समान है, जिसका उपयोग किसान अपने फसलों की रक्षा के लिए करते हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसे देखें तो आधुनिक कंपनियां जिसे 'विजन' बोलती हैं, दरअसल वह श्रद्धा का ही दूसरा नाम है। श्रद्धा को ही विजन नाम की चाशनी में लपेटकर कंपनियां अपना 'बैलेंसशीट' ठीक कर सफलता के नए सोपान तय करती हैं। मनुष्य की 'बैलेंसशीट' ठीक करने के लिए आचार्य प्रवर श्री रामलाल जी म. सा. निरंतर विभिन्न तरह से मार्गदर्शन करते रहते हैं। आचार्यश्री के प्रवचन भी लोगों के 'बैलेंसशीट' को प्रभावी बनाते हैं। इस 'बैलेंसशीट' में धन-संपत्ति नहीं आती। इसमें आती है शांति। इसमें आती है समरसता। इसमें आती है समानता। इसमें आती है विश्व बंधुत्व की भावना। इसमें आती है जीओ और जीने दो की बात। आचार्यश्री ऐसे ही संदेशों से भरे प्रवचन सन् 2023 में चातुर्मासार्थ विराजित मालवा के नीमच शहर में धर्म

श्रद्धा पर फरमा रहे हैं। वहाँ फरमाए गए प्रवचनों में से कुछ को यहाँ इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया जा रहा है कि पाठक धर्म श्रद्धा में निमज्जित हो सकें। जो धर्म श्रद्धा में निमज्जित होगा, उसके भीतर एक फौलादी पुरुष प्रकट होगा। धर्म श्रद्धा से निमज्जित व्यक्ति कष्टदायी क्षणों में भी आपको दृढ़ रखते हुए मुक्ति के लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ेगा।

मुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक '**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः**' नाम के इस पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्यश्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्यश्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गई हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बताएं, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें।

संयोजक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
अंतर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हें चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिंचन को इस पुस्तक '**श्रद्धामयोऽयं पुरुषः**' के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भावना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

- अर्थ सहयोगी -

जतनकुंवर चौधरी, बलवीर-प्रीति, वीरेन्द्र-अर्चना,
देवेन्द्र-सुदर्शना, तनिष्क-कृतिका, कनिका-भाविका चौधरी
उदय शक्ति फाउण्डेशन
मुम्बई, भीलवाड़ा, नीमच

।। सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें।।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	धर्म भक्ति अन्तर प्रकटाएं	07
2.	आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं	21
3.	श्रद्धा से निज को पहचाना	34
4.	ज्ञान गंग निर्मल मन बहती	47
5.	धर्म से मन शिखर बढ़ेगा	61
6.	एक धर्म ही जग जस पाता	77
7.	गौरव गाथा	92
8.	राजमती मन धर्म सुहाया	104
9.	सदा अखण्ड रहे मन श्रद्धा	116
10.	धर्म करे जो अंतर्मन से	127
11.	धर्म जीतता हारे दानव	144
12.	कामदेव ना डिगता बंदा	156
13.	मनुज तन की सफलता	168
14.	अग्नि शीतल शूल सिंहासन	173
15.	अन्तर मन संगीत गुंजाता	185

1

धर्म भक्ति अन्तर प्रकटाएं

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'अन्तर का अघ रूप हटाएं, धर्म-भक्ति अन्तर प्रकटाएं'

इसका बहुत सीधा-सा अर्थ है कि अपने भीतर के अज्ञान को हटाना है। हमें देव, गुरु और धर्म पर आस्था है, विश्वास है, श्रद्धा है, किंतु थोड़ा अज्ञान भी है।

अज्ञान के कारण ही थोड़ा-सा भी कष्ट होने पर, विपत्ति आने पर इधर-उधर ताकने लगते हैं। कोई मजार की तरफ जाता है तो कोई हुसैन टेकरी का उपक्रम करता है। इसी तरह कोई कुछ करता है तो कोई कुछ। उन-उन मान्यता वाले लोगों को कोई समस्या वे जैन स्थानक में कितनी बार आए? वे जैन मंदिर में कितनी बार पहुँचे?

वे नहीं आते, किंतु हम कहीं भी गोते खा लेते हैं। यह हमारा अज्ञान है, पारंपरिक अज्ञान है। हमने इसको समझने का प्रयत्न नहीं किया, इसलिए थोड़ी-सी समस्या आते ही विचलित हो जाते हैं। लुढ़क जाते हैं।

ज्ञान यह है कि कर्म उदय में है, अशुभ कर्म का योग है तो कहीं जाने पर भी, कोई भी शक्ति सुख नहीं दे पाएगी। एक गीत में कहा गया है-

'जरा कर्म देखकर करिए, इन कर्मों की बहुत बड़ी मार है,
नहीं बचा सकेगा परमात्मा, फिर औरों का क्या एतबार है'

जब तीर्थंकर भी कर्मों से नहीं बच पाए तो हम कहाँ बचने वाले हैं। उनको भी कर्म भोगने पड़े। हम केवल मन में तसल्ली कर लेते हैं कि हमने ऐसा कर दिया, हमारा ठीक हो जाएगा। ठीक होता है या नहीं, मैं नहीं कह सकता।

कभी नारियल के पेड़ पर कौआ बैठा और नारियल नीचे गिर गया तो इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि कौए ने नारियल को गिराया। नारियल के पेड़ की टहनी सड़ गई थी, इसलिए नारियल गिर गया। वैसे ही कभी काकतालीय न्याय से हमारे साथ अच्छा हो जाता है तो सोच लेते हैं कि ऐसा होने से ऐसा हो गया। हर बार वैसा नहीं भी होता है।

एक दंपती इसी भाव से ओत-प्रोत था। उसने धर्मगुरुओं की देशना सुनी। देशना सुनकर उसने विचार किया कि मुझे अब अज्ञान का कोई काम नहीं करना। उसने घर में पूजा करना बंद कर दिया। अगरबत्ती और धूप जलाना बंद कर दिया। बंद करते ही संयोग से उसको बुखार आ गया। लोग कहने लगे कि तुमने पूजा, धूप-अगरबत्ती करना छोड़ दिया, इसलिए तुम्हें बुखार आ रहा है।

ऐसे में प्रश्न होता है कि जब पूजा करता था, धूप-अगरबत्ती लगाता था, तब कभी बुखार नहीं आया क्या? कोरोना में जितने भी व्यक्ति मरे, शायद उन सबने धूप-अगरबत्ती नहीं की होगी, पूजा नहीं की होगी, इसलिए मरे! धूप-अगरबत्ती करने वाले भी मरे या नहीं मरे? आप बोलते हो-

'राजा राणा छत्रपति, हथियन के असवार,
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार'

नम्बर आएगा तो अपने को मरना पड़ेगा। अपने स्थान पर कोई दूसरा नहीं जा सकता। जिसकी मौत आएगी उसको मरना पड़ेगा। चाहे वह पूजा, अगरबत्ती या धूप कर रहा हो या न कर रहा हो। तीर्थंकर भी मौत से नहीं बच पाए। जब तीर्थंकर भी मौत से नहीं बचे तो दूसरों की बात ही क्या कहें। कर्मों का भोग आदमी को भोगना ही पड़ेगा। जिसने कर्म बाँधे हैं, उसी को भोगना पड़ेगा।

भगवान से पूछा गया- भगवान! जिस जीव ने कर्मों का बंध किया क्या उसको उन कर्मों को भोगना पड़ेगा?

भगवान ने कहा, कर्म उदय में आते हैं तो भोगता है। कर्म उदय में नहीं आते हैं तो नहीं भोगता। अच्छे या बुरे जैसे कर्म उदय में आएंगे वैसा भोगना पड़ेगा।

कर्म दो प्रकार से उदय में आते हैं- एक विपाकोदय से और एक प्रदेशोदय से। विपाकोदय यानी जिन कर्मों का उदय हमारी अनुभूति में आए।

जैसे– सुख–दुख। प्रदेशोदय– वे कर्म जो उदय में आते हैं, पर मालूम नहीं पड़ते।

इसे थोड़ा समझ लें– मान लीजिए किसी कर्म की स्थिति सौ वर्ष की बँधी हुई है। उसने देवगति का बंध किया था। उसके सौ वर्ष की स्थिति पूरी हो गई। सौ वर्ष पूरे होने के बाद उस कर्म को उदय में आना ही होगा। किंतु वह जीव अभी मनुष्य गति में है, मनुष्य गति में रहते हुए देवगति के कर्म का जो उदय होगा वह प्रदेशोदय के रूप में होगा।

विपाकोदय से वह जीव विपाक मनुष्य गति कर रहा है, पर प्रदेश से देवगति का उदय साथ में हो रहा है। इस प्रकार देवगति नामक कर्म प्रदेशोदय से निकल जाएगा, वह अनुभूति में नहीं आएगा। बातें थोड़ी नई लग रही होंगी। थोड़ी नई लगनी भी चाहिए।

कल दोपहर में कुछ चाशनी देखी। कुछ प्रश्न पूछे तो परिणाम अनुकूल नहीं आया। यद्यपि शिविर लगते हैं, किंतु लोग सोच लेते हैं कि शिविर हमारे लिए नहीं है, शिविर की आवश्यकता बच्चों व महिलाओं को होगी। हमें शिविर की जरूरत नहीं है। हमने जो कुछ भी सीखा है उसे पर्याप्त समझ रहे हैं, किंतु अभी हमने कुछ भी नहीं पाया। समुद्र की एक बूँद भी प्राप्त नहीं हो पाई है।

धन बढ़ाने का मन बहुत रहता है, किंतु धर्म बढ़ाने का मन कम रहता है। म.सा. पूछते हैं कि सामायिक रोज करते हो क्या, तो कहते हैं नहीं म.सा., सप्ताह में एक सामायिक हो जाती है। म.सा. बोलेंगे कि थोड़ी और बढ़ाओ, तो बोलेंगे नहीं, अभी समय नहीं मिलता। यदि धन बढ़ाने की बात आ जाए तो चाहेंगे कि थोड़ा और बढ़ जाए। न केवल चाहेंगे अपितु उसके लिए प्रयास भी करेंगे। यह ज्ञान की दिशा नहीं है।

लक्ष्य यह होना चाहिए कि धर्म बढ़े। धन बढ़े या न बढ़े, मन में शांति रहनी चाहिए। मन में शांति होना बहुत ऊँची बात है। धन मिल जाए और समाधि नहीं मिले तो धन किस काम का होगा।

आपने बहुत सारे आख्यान सुने होंगे। एक आख्यान है कि धर्म की कैसी दृढ़ श्रद्धा होती है। अंबड़ सन्न्यासी किसके पास गया?

(श्रोतागण बोले– सुलसा के पास गया)

सुलसा के पास तो बाद में गया। पहले नगर में गया। उसको मालूम

था कि सुलसा बहुत निष्ठावान श्राविका है। यह सुनकर बहनों का दिल खिल जाएगा कि श्राविका की बात हो रही है। उनका दिल खिल जाएगा कि बहुत दृढ़ श्राविका थी। अंबड़ ने सुलसा की सम्यक्त्व की, श्रद्धा की, आस्था की परीक्षा लेने की सोची। उसे वैक्रिय लब्धि प्राप्त थी। वैक्रिय लब्धि से वह मनचाहा रूप बना सकता था। उसने एक दिन ब्रह्मा जी का रूप बनाया, किंतु सुलसा नहीं गई। दूसरे दिन उसने विष्णु जी का रूप बनाया, सुलसा उस दिन भी नहीं गई। लोगों ने सुलसा से कहा कि विष्णु जी तुम्हारे बारे में पूछ रहे हैं, तुम चलो। तुम देख लो। एक बार देखने से तुम्हारा धर्म नहीं टूट जाएगा।

ऐसे विचार बहुत से लोगों के दिखते हैं। लोग बोलते हैं कि हम तो घूमने गए हुए थे। क्यों गए घूमने? किसलिए गए घूमने?

मान लो आप शराब के ठेके पर बैठकर गिलास में दूध पी रहे हो, पर देखनेवाला क्या सोचेगा? देखनेवाला क्या विचार करेगा?

देखनेवाले को लगेगा कि शराब पी रहा है। देखनेवाला तो यही बोलेगा कि शराब पी रहा था। वह तो कहेगा कि मैंने अपनी आँखों से देखा, वह शराब के ठेके पर शराब पी रहा था। जब उस रास्ते जाएंगे ही नहीं तब कौन बोलेगा कि शराब के ठेके पर शराब पी रहा था!

तीसरे दिन अंबड़ जी ने शंकर का रूप बनाया, तब भी सुलसा नहीं आई। चौथे दिन अंबड़ सन्न्यासी 25वें तीर्थंकर का रूप बनाकर आया। 25वें तीर्थंकर के प्रकट होने की बात सुनकर बहुत से लोग दौड़ेंगे कि चलो 25वें तीर्थंकर को देखते हैं। उनका दर्शन करते हैं। वे लोग भी जाएंगे जो मस्जिदों-मंदिरों में नहीं जाते किंतु सुलसा कहती है- 'भूतो ना भविष्यति।'

सुलसा जानती है कि एक काल में 24 ही तीर्थंकर होते हैं। 25 तीर्थंकर होते ही नहीं। वह सोचती है कि जरूर कोई इंद्रजालिया होगा, छलिया होगा, मैं नहीं चलूंगी। हम भले ही बोलें या ना बोलें, किंतु उतने मजबूत रह जाएं, सुदृढ़ रह जाएं बहुत कठिन है। बहुत मुश्किल है। आपको मालूम पड़ जाए कि 25वें तीर्थंकर नीमच में प्रकट हुए है तो शायद उस दिन व्याख्यान बंद रखना पड़ जाए। कहने के लिए लोग यही कहेंगे कि हम तो केवल देखने के लिए गए थे कि उनका समवसरण कैसा होता है, उनका रंग-रूप कैसा होता है। आप वंदन-नमस्कार कर लें तो भी कोई बड़ी बात नहीं है।

मैंने कई घरों में साधुओं के फोटो लगे हुए देखे हैं। घर के लोग सुबह-सुबह फोटो को हाथ जोड़कर नमस्कार करने का उपक्रम करते है। क्या फोटो को नमस्कार करना योग्य है? स्थानकवासी परंपरा की मान्यता यह नहीं है। फोटो जड़ है। जैसे मूर्ति जड़ है, वैसे ही फोटो जड़ है। फोटो को नमस्कार कर समझते हैं कि हमने गुरु को नमस्कार कर लिया, किंतु यह उलटा रूप है। फोटो के सामने नमस्कार करने के बजाय गुरु महाराज का स्मरण करके नमस्कार किया जाना उचित है। अन्यथा पीछे वाली पीढ़ी कहेगी कि हमारे पिताजी भी फोटो को नमस्कार करते थे, मैं भी करूंगा।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. का अजमेर में चातुर्मास था। उस समय प्रवेश के समय किसी ने छिपकर गुरुदेव का फोटो खींच लिया। बाद में लुका-छिपी से वह फोटो बेचने लगा। लोग धड़ल्ले से खरीदने लगे। गुरुदेव को मालूम पड़ा। आसोज सुदी दूज या तीज का दिन था। लगभग पाँच हजार जनता मौजूद थी। गुरुदेव ने कहा, मेरे पर विश्वास है तो फोटो को फाड़ दो। फोटो फाड़ने वाले एक प्रतिशत भी नहीं मिले। गुरुदेव पर आस्था रखनेवाले बहुत मिले, किंतु गुरु की मानने वाले एक प्रतिशत भी नहीं मिल पाए।

बात समझ में आई क्या? मेरी बात क्या समझ में आई?

यदि गुरुदेव ने कह दिया कि मेरा फोटो फाड़ दो तो क्या करेंगे?

कहेंगे, बावजी! फोटो तो कोनी फाड़िजे।

किसी का दिल फाड़ देंगे, किसी का दिल चोटिल कर देंगे, साधु-संतों के दिल को भी चोटिल करने में पीछे नहीं रहेंगे, किंतु फोटो नहीं फाड़ेंगे। गुरु के आदेश से बड़ी हो गई फोटो। गुरु की वाणी से बड़ी हो गई।

(श्रोतागण बोले- गुरु के आदेश से बड़ी नहीं है फोटो)

किंतु वहाँ रहे एक प्रतिशत लोगों ने भी फोटो नहीं फाड़ी। भले ही घर में ले जाकर अटैची में, तिजोरी में रख दी, किंतु फाड़ी नहीं। यह अज्ञान है। जीते-जागते साधु पर विश्वास है या नहीं, पर फोटो पर बहुत ज्यादा विश्वास है। फोटो फाड़ने के लिए कहने पर कहेंगे कि फोटो कैसे फाड़ दूँ, मेरे गुरुदेव का फोटो है।

कई बार अखबारों में साधुओं की फोटो, तीर्थंकरों की फोटो छप जाती है। अखबार या रद्दी खरीदने वाले को अखबार बेचते समय फोटो से

संबंध नहीं रहता, किंतु जिस फोटो को हमने खींचा या खरीदा उससे इतना संबंध जुड़ जाता है कि उसको फाड़ने को तैयार नहीं होते। क्या मानना चाहिए? गुरु बोले वह बात स्वीकार करनी या फोटो रखनी?

(श्रोतागण बोले– गुरु की बात स्वीकार करनी)

अभी मैंने किसी को कह दिया कि खड़े हो जाओ और दीक्षा ले लो तो मन में कोई विचार तो नहीं होगा? आप खड़े होते जाएंगे? ऐसे वक्त पर कहेंगे कि म.सा.! बिना सोचे-समझे कैसे खड़े हो जाएं। ऐसे एकदम खड़े कैसे हो जाएं। वैसे ऐसी घटना पहले भी हो चुकी है। इसलिए सावधान होकर खड़ा होना।

यह चिंता की बात नहीं है। यदि योग्य हैं और आह्वान किया जा रहा है तो दिक्कत की क्या बात! किंतु साहस पैदा नहीं होता, हिम्मत पैदा नहीं होती। कभी-कभी अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं होता कि हमारे भीतर कितनी शक्ति है, कितना सामर्थ्य है, इसलिए भी कार्य कर नहीं पाते। व्यक्ति अपने सामर्थ्य का बोध नहीं कर पाता।

रामायण का एक प्रसंग है। सीता जी की खोज के लिए अनेक टोलियाँ निकलीं। उन टोलियों में हनुमान भी थे। चलते-चलते सामने देखा कि समुद्र है। आगे जाने का रास्ता नहीं है, तो क्या करें। जामवंत को याद आया कि हनुमान में शक्ति है, पर शापित है। जामवंत ने हनुमान को शक्ति का बोध कराया। कहा कि हनुमान तुम्हारे में शापित शक्ति है, तुम्हें उसका ज्ञान नहीं है। हनुमान जी को जैसे ही शक्ति का बोध हुआ, वे समुद्र लाँघ गए। वैसे ही हमारे भीतर शक्ति है, किंतु हम उसको भूले हुए हैं।

किसके भीतर सामर्थ्य नहीं है साधु बनने का? हाथ खड़े करो कि मेरे भीतर साधु बनने का सामर्थ्य नहीं है। बूढ़ा हो या जवान, कोई भी साधु बन सकता है। किसी को भी साधु बनने में कठिनाई नहीं है। आप कहोगे कि हमारा परिवार है, यह है, वह है। यह कोई कठिनाई नहीं है। इन सबसे एक दिन दूर होना ही होगा। एक दिन मरना ही पड़ेगा, जाना ही पड़ेगा। क्या परिवार के लिए आप आयुष्य को लम्बा कर लोगे, बढ़ा लोगे! क्या चाहोगे कि इनके रहते हुए अब मैं नहीं मरूँ! कौन चाहता है कि मेरा बेटा मेरे रहते हुए मर जाए! कौन चाहता है कि मेरा पूरा परिवार मेरे देखते-देखते मर जाए! कौन चाहता कि मेरी आयुष्य सबसे लम्बी हो! सबसे लम्बी आयुष्य होगी तो क्या होगा! उसके

सामने कौन-कौन चला जाएगा!

जिसकी आयुष्य सबसे अधिक होगी, वह पूरे परिवार को श्मशान पहुँचाते-पहुँचाते परेशान हो जाएगा। हैरान हो जाएगा। आज एक को श्मशान पहुँचाया, कल दूसरे को पहुँचाया, परसों किसी और को पहुँचाया। कितने लोगों को श्मशान पहुँचाएगा? जो लम्बी आयुष्य माँग लेगा, उसे परिवार वालों को श्मशान तो पहुँचाना पड़ेगा ही, किंतु ऐसा होता नहीं है। अपने आयुष्य के हिसाब से आदमी को जाना ही पड़ता है। हमें यह विश्वास है कि हमारी मौत एक दिन आने वाली है। हम सदा अमर रहने वाले नहीं हैं। घर में, परिवार में सदा रहने वाले नहीं हैं। एक-न-एक दिन घर छोड़ना ही होगा।

एक तो चार आदमी कंधे पर उठाकर ले जाएं और एक आप चलकर निकले। दोनों में कौन-सा निकलना महत्त्वपूर्ण हुआ?

(श्रोतागण बोले- अपने आप निकलना महत्त्वपूर्ण होगा)

चार आदमी कंधे पर लेकर चल रहे हैं और बोल रहे हैं 'राम नाम सत्य है।'

अब किसको सुना रहे हैं?

भाई! तू पहले राम का नाम सुन लिया होता तो आज लाश को नहीं सुनाना पड़ता। पहले सुन लिया होता, समझ लिया होता, जान लिया होता तो लाश को सुनाने का काम नहीं पड़ता। जीता-जागता आदमी भी नहीं सुन सका तो अब लाश कहाँ सुननेवाली है!

सम्यक् दृष्टि वाले की लालसा-अभिलाषा रहती है कि वह त्याग, नियम, प्रत्याख्यान स्वीकार करे। हर श्रावक के मन में यह अभिलाषा होनी चाहिए कि मेरा वह दिन धन्य होगा, जिस दिन संसार के मोह, माया, ममत्व का जाल तोड़कर साधु जीवन स्वीकार करूंगा।

बोलो, क्या लक्ष्य होता है श्रावक का?

जिसका यह लक्ष्य नहीं वह पक्का श्रावक नहीं है। हर श्रावक का लक्ष्य होना चाहिए और होता है। कौन-सा लक्ष्य होता है श्रावक का?

बोलो, वह दिन मेरा धन्य होगा, जिस दिन मोह-ममत्व का त्याग करके, घर का त्याग करके, शुद्ध भाव से साधु जीवन स्वीकार करूंगा।

वस्तुतः वह दिन हमारा धन्य होने वाला है। वही दिन हमारे लिए

सार्थक होने वाला है। मनुष्य जीवन की सार्थकता उसी में है कि साधु जीवन को स्वीकार करें। अभी आप निर्वाण मुनि जी म.सा. से किसका वर्णन सुन रहे थे?

(श्रोतागण बोले- सुबाहु कुमार का वर्णन सुन रहे थे)

सुबाहु कुमार भगवान महावीर के पास आया। वह साधु जीवन स्वीकार नहीं कर पाया, किंतु श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए।

यहाँ बैठने वालों में बारह व्रतधारी कौन-कौन हैं? ऐसे कितने लोग हैं, जिन्होंने श्रावक के बारह व्रत स्वीकार किए हुए हैं? हाथ खड़े करो?

(कुछ लोगों ने हाथ खड़े किए)

कुछ लोगों ने ले भी लिए तो क्या होगा। यह बताओ श्रावक के बारह व्रत स्वीकारने में क्या कठिनाई लगती है?

'मानव का शुभ तन-मन पाया, व्रतधारी बनो व्रतधारी बनो,
प्रभुवीर का सिर पर ले साया, व्रतधारी बनो व्रतधारी बनो'

बारह व्रतधारी बनने से बहुत लाभ है। बहुत फायदा है। जैसे पालतू कुत्ते की रक्षा होती है वैसे ही हमारी रक्षा होने वाली है। नरक-निगोद के रास्ते बंद हो जाएंगे। उस रास्ते नहीं जाना पड़ेगा। नहीं तो पता नहीं कौन-से गलियारे में, कौन-सी गली में घुसेंगे और कहाँ जाकर गिरेंगे। यदि साधु जीवन स्वीकार कर लिया, साधु जीवन की आराधना कर ली, श्रावक जीवन की आराधना कर ली तो निश्चित है कि नरक-निगोद टल जाएगा। किंतु हिम्मत नहीं हो पाती है और कीमत हिम्मत की ही है। वैसे हिम्मत की कोई बात नहीं है, बहुतों की समझ ही नहीं है। बहुतों ने बारह व्रत को जाना ही नहीं, समझा ही नहीं, सुना ही नहीं। जब जाना नहीं, सुना नहीं, समझा नहीं तो उसकी पालना करने की भावना कैसे बनेगी! उसकी आराधना कैसे कर पाएंगे! लोग भय खाते रहते हैं कि मैंने नियम-व्रत, पच्चक्खाण ले लिए, पर कहीं टूट गए तो...

जिस पांडाल के नीचे आप बैठे हैं क्या इसको लेकर मन भयभीत नहीं होता कि कहीं यह पांडाल गिर गया तो? तेज हवा आ गई और पांडाल नीचे गिर गया तो इसके नीचे दब जाएंगे। ऐसा भय क्यों नहीं लगता?

अखबारों में ऐसे समाचार आते हैं कि दो-चार महीने पहले बनी आर.सी.सी की छत गिर गई। ऐसी स्थिति में क्या करना? मकान बनाना ही नहीं? क्या आर.सी.सी वाले मकान में रहना ही नहीं? पर ऐसा होता नहीं है।

व्यक्ति जानता है कि एक मकान की छत गिर गई तो सारे मकानों की छत गिर जाएगी यह जरूरी नहीं है।

कपड़े पहनेंगे तो मैले होंगे। कपड़े सिलाएंगे तो फटेंगे। किंतु उसके लिए ऐसा नहीं सोचते कि कपड़े पहनूंगा तो मैले हो जाएंगे। कपड़े सिलाऊंगा तो फट जाएंगे। फट जाएंगे तो और सिलाएंगे। कपड़े मैले होंगे तो धोएंगे। कपड़े फट जाने के डर से, कपड़े गंदे हो जाने के डर से कपड़े पहने ही नहीं, ऐसा नहीं होना। जैसे कपड़े गंदे होने पर धोए जाते हैं, कपड़े फट जाने पर सिले जाते हैं वैसे ही व्रत में दोष लग जाए तो उसका शुद्धिकरण किया जाता है। उसका प्रतिक्रमण किया जाता है। व्रत में दोष लगने पर वेल्डिंग कर लेने से वापस नियम सुदृढ़ हो जाएगा। दोष लगने के डर से कई लोग व्रत धारण नहीं करते। ऐसे लोग यह बात नहीं सोचते कि रोटी खाऊँगा तो पेट दर्द करने लग जाएगा। यह नहीं सोचते कि मैं शादी नहीं करता, क्योंकि शादी करूंगा कहीं पत्नी तलाक दे देगी तो?

यदि ऐसा हो तो शादी करने का पच्चक्खाण कर लो। अर्थात् शादी नहीं करूंगा। कितने लोग हैं यहाँ बिना शादी वाले? वे पच्चक्खाण ले लें कि शादी नहीं करूंगा। शादी करने के लिए तैयार रहेंगे, किंतु त्याग-नियम लेने की बात आएगी तो कहेंगे कि अरे! त्याग-नियम टूट गया तो...

टूट गया तो सिलाई कर लेंगे। वेल्ड कर लेंगे।

आते हैं सुलसा की बात पर। वह 25वें तीर्थंकर को देखने के लिए नहीं गई। उसमें कोई उत्सुकता पैदा नहीं हुई। उसे आश्चर्य नहीं हुआ कि अरे! 25वें तीर्थंकर प्रकट हुए, एक बार देखूं तो सही, ऐसा उसने सोचा भी नहीं क्योंकि उसको विश्वास था कि 25वें तीर्थंकर होते ही नहीं। मन में कौतूहल क्यों होना! चमत्कार देखने का विचार क्यों होना! ऐसा होना हमारी कमजोरी है। तत्त्व ज्ञान की अनभिज्ञता है।

'अन्तर का अघ रूप हटाएं, धर्म भक्ति अन्तर प्रकटाएं'

हमें अन्तर ज्योति, श्रद्धा की ज्योति, भक्ति की ज्योति विकसाने की आवश्यकता है। भेल-संभेल (मिलावट) करेंगे तो श्रद्धा उड़ान नहीं भर पाएगी।

किसी पक्षी के पंख पानी से भीग जाए तो वह उड़ नहीं पाएगा। पहले वह अपने 'पर' से पानी झटकेगा उसके बाद उड़ान भरेगा। वैसे ही यदि श्रद्धा में

कामना-आकांक्षा को जोड़ेंगे, सोचेंगे कि उपवास करूंगा, बेला-तेला करूंगा तो मेरा व्यापार चल जाएगा, मेरा कोर्ट-कचहरी का निपटारा हो जाएगा तो यह अज्ञान है।

इस प्रकार से किसी आकांक्षा पूर्ति के लिए की गई धर्माराधना कारगर नहीं होगी। धर्म जीवन को संतोष देने वाला है, शांति देने वाला है। धर्माराधना करेंगे तो द्वंद्व पैदा नहीं होगा। अशांति पैदा नहीं होगी। धर्माराधना के बजाय हम धर्म के साथ खेल खेलने लगते हैं। खिलवाड़ करने लगते हैं। सोचने लगते हैं कि धर्माराधना करने से क्या मिला। सोचने लगते हैं कि मैंने इतना धर्म किया, किंतु मेरी मनोकामनाएं पूरी नहीं हो रही हैं।

मनोकामना का भाव पैदा होना ही क्यों? यदि ज्ञान प्राप्त किया है, श्रद्धा मजबूत है तो सम्यक्त्व होना ही समाधान है।

सुनंदा इन्हीं विचारों की थी। सुनंदा में ऐसे ही संस्कार थे। उन संस्कारों का पालन करना वह अपना कर्तव्य मान रही थी।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
विजय की व्यापार कुशलता, उसकी देखे सेठ सफलता,
बन गया सेठ विचार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
घर में जब वह चर्चा करता, परिजन सब ही हामी भरता,
सुनंदा थी मौन, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

विजय की माता चाहती थी कि विजय की शादी करवा दूँ। मैंने बताया कि-

'भागवाना रे भूत कमावे, बिना कमाये घर में आवे'

विजय की व्यापार कुशलता को सुनंदा के पिता ने देखा। उन्होंने उसे समझा, जाना कि यह कुशल है और सफलता प्राप्त कर रहा है। उनके मन में विचार आया कि सुनंदा के लिए विजय उचित वर है। उन्होंने सोचा कि मुझे सुनंदा को इसके हाथों में सौंप देना चाहिए। इसके साथ ही यह विचार उनके मन में पैदा हुआ कि यह बात मुझे परिजनों के बीच रखनी चाहिए। सबकी विचारधारा को जान लेना चाहिए कि सब लोग इस विषय में क्या कहते हैं। मेरे विचार हों और परिजनों का विचार नहीं हो तो परिवार में क्लेश खड़ा हो जाए ऐसा काम नहीं करना। परिवार में समस्या खड़ी नहीं होनी चाहिए। परिजनों के

विचार भी सुनने चाहिए।

ऐसा सोचकर उन्होंने परिवार के सामने चर्चा की तो सब सहमत हो गए। सब कहने लगे कि आपने हजारों में से एक को चुना है। एकदम सही है। उन्होंने सुनंदा का विचार भी जानने का प्रयत्न किया। सुनंदा मौन थी। सहेलियों के माध्यम से पूछताछ कराने का प्रसंग बना। सुनंदा का साफ मंतव्य था–

'मात-पिता जो निर्णय करते, संतान सुहित उसमें लखते,
ऐसा रही वह मान, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...'

सुनंदा का साफ मंतव्य था कि माता-पिता, परिजन, बुजुर्ग जो भी सोचते हैं संतान के हित में ही सोचते हैं। वे संतान का हित देखकर विचार करते हैं। उसने कहा कि इस संबंध में मुझे कुछ बोलने की आवश्यकता नहीं है।

अब जमाना बदला है। विचारधारा बदल गई है। आज के युवा-युवती थोड़े अलग विचार लेकर चलते हैं। वे कहते हैं कि माता-पिता अपने स्वार्थ को देखते हैं। उनका ऐसा कहना एकदम से गलत भी नहीं है।

बीच के समय में कुछ ऐसी गड़बड़ियाँ हुई हैं। बीच के समय में माता-पिता अपने स्वार्थ को ही ज्यादा देखने लगे थे कि कौन-सा परिवार ज्यादा धन देने वाला है। कौन-सा परिवार ज्यादा दहेज देने वाला है। लड़की भले कैसी भी हो यदि धन ज्यादा मिल रहा, दहेज ज्यादा मिल रहा है तो वहाँ संबंध जोड़ दिया करते थे।

धन के लोभ में कई परिवारों का, कई दंपतियों का जीवन कष्टमय बन गया था। धन तो मिल गया, किंतु जो मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पाया। परस्पर का सम्प और समन्वय नहीं मिल पाया। जिस प्रेम का आदान-प्रदान होना चाहिए वह नहीं हो पाया तो धन मिलने से क्या होगा!

बीच के समय में लोग धन के लिए, दहेज के लिए मुँह फाड़े रहते थे। लोग कहने लगे थे कि उसको लाखों का दहेज मिला तो मुझे उससे ज्यादा मिलना चाहिए। मेरा बेटा सुंदर है, पढ़ा-लिखा है हमें ज्यादा दहेज मिलना चाहिए। ज्यादा धन मिलना चाहिए। उस समय एक प्रकार से बोलियाँ लगने लगीं। कोई लड़का देखने आता तो घूम-फिरकर यही बात होती कि क्या दोगे, कितना दोगे? वह कहता मैं 10 लाख, 20 लाख, 25 लाख, 50 लाख दूंगा। उससे कहा जाता कि 60 लाख तो अमुक परिवार दे रहा था। 60 लाख देने के

लिए तो अमुक बोल गए हैं। इसका मतलब क्या? मायने तो यही निकला कि आप इससे ऊपर बढ़ें। जहाँ से ज्यादा धन मिलता वहाँ संबंध जोड़ देते।

इस कारण से गड़बड़ियाँ होने लगीं। धीरे-धीरे युवा व युवतियां कहने लगीं कि हम अपने आप चयन करेंगे। हमें उनके साथ जीवन बिताना है, इसलिए अपना चयन खुद करेंगे। बहुत-सी जगह पर माता-पिता एक-दूसरे का मन मिलते देख लेते हैं तो शादी हो जाती है। कुछ लोग तो जात-पात भी नहीं पूछते।

अभी नीमच के सांसद गुप्ता जी आए थे। उन्होंने बताया कि हिंदू और जैन समाज की 55 हजार लड़कियाँ पराई हो चुकी हैं। ऐसे-ऐसे खेल खेले जाते हैं जो अपरिपक्व लड़कियाँ समझ नहीं पातीं। परिपक्व नहीं होने पर उनमें लव जिहाद जैसी भावनाओं का बहाव ज्यादा होता है।

मैंने ऐसा भी सुना है, किताबों में पढ़ा है कि जो ज्यादा अमीर लड़की को लेकर आता है उसको उतनी ही ज्यादा बख्शीश मिलती है। यह सही है या गलत मुझे पता नहीं। ऐसी बहुत सारी बातें किताबों में पढ़ी है। आप भी पढ़ेंगे तो मालूम पड़ेगा कि दुनिया में क्या-क्या खेल होते हैं। लव जिहाद के नाम से घरवालों से संघर्ष कर लेते हैं। एक बार माता-पिता से हट जाने के बाद दुराव बढ़ता जाता है। फिर लड़की के जीवन में कठिनाई आती है। उसको बार-बार पीड़ित किया जाता है। कहा जाता है कि तुम घर से और धन लाओ, संपत्ति लाओ। जब तक वह धन लाती है, तब तक ठीक रहता है। धन लाना बंद होने पर उसके साथ अमानवीय व्यवहार होना शुरू हो जाता है। यह केवल मेरे मुँह की बातें नहीं हैं। मैंने ये बातें किताबों में पढ़ी हैं। मुझे विश्वास नहीं होता कि ऐसी अमानवीय बातें होंगी, किंतु जिसको धन से ही प्रेम है उसके लिए कोई अतिशयोक्ति नहीं है, कठिनाई की बात नहीं है।

सुनंदा उस युग की थी, जब यह माना जाता था कि परिवारवालों ने जो देखा वह सही है। सुनंदा मौन थी।

विजय की माता तक यह बात पहुँची। वह बड़ी खुश हुई। वह सोचने लगी कि मैं तो चाहती थी विजय की शादी करनी है। जो भी देखना-परखना था वह देख-देखा फाइनल हुआ।

सात भांवरें पड़ी पराई, बेटी जग में होती आई,
देता श्रेष्ठी सीख भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा को सात भांवरें पड़ी और वह पराई हो गई। उसने सात फेरे खाए। बहनें गाती हैं-

'बाई हो गई पराई'

लड़कियाँ तो पराई हो ही जाती हैं। दुनिया में यह चलता है। लड़की अपने घर की लक्ष्मी नहीं होती। वह ससुराल की लक्ष्मी होती है। लड़की को अपना पीहर छोड़ना पड़ता है। उसे ससुराल जाना पड़ता है। उसका मूल घर ससुराल ही होता है। परिवारवालों से यह संबंध रहता है कि ये मेरे माता-पिता हैं, भाई-बहन हैं, भाई-भाभी हैं।

सुनंदा की शादी हो गई। उसके माता-पिता ने दहेज में जो देना था, वह तो दिया, उससे अधिक अनमोल शिक्षा दी थी, जो रत्नों से कम नहीं थी। उस शिक्षा को बहुमूल्य रत्नों से तौला नहीं जा सकता। कौन-सी शिक्षा दी, कैसी शिक्षा दी, यह तो समय के साथ ही विचार करेंगे।

कुछ लोगों की इच्छा यह जानने की होती है कि दहेज में क्या चीज लाई। कितना धन लाई। जिनको दहेज की आवश्यकता रहती है, दहेज पर दृष्टि रहती है, वे यह नहीं पूछते कि माता-पिता ने क्या शिक्षा दी। शिक्षा वह धन है जिसको कोई बाँट नहीं सकता। दहेज को बाँटा जा सकता है, किंतु शिक्षा को नहीं बाँटा जा सकता।

खैर, सुनंदा के माता-पिता उसे क्या शिक्षा दिए, वह कितनी कारगर हुई, इस पर समय के साथ विचार करेंगे।

पुन: आते हैं सुलसा के प्रसंग पर। जब 25वें तीर्थंकर को देखने वह नहीं गई तो अंबड़ सन्न्यासी ने विचार किया कि मुझे स्वयं चलकर जाना होगा। अंबड़ सन्न्यासी भगवान महावीर का बारह व्रतधारी श्रावक था। उसके 800 शिष्य थे। सन्न्यासी के रूप में अंबड़ गया, निस्सहि-निस्सहि शब्द बोला। सुलसा आगे आई। सुलसा ने जैसे ही अंबड़ को सन्न्यासी के रूप में देखा, वह खड़ी रह गई।

सन्न्यासी ने कहा, हे भद्रे! मैं भगवान महावीर का बारह व्रतधारी श्रावक हूँ। फिर सुलसा ने उसका स्वागत किया, सम्मान किया। हम कह सकते

हैं कि उसने सामान्य-सा भी व्यवहार नहीं किया। मूल बात पर ध्यान दें- वहाँ श्रावक की बात हो रही है। सामान्य बात हो रही होती तो बात अलग होती। अंबड़ सन्न्यासी श्रावक बनकर आया लेकिन उसका जो वेष देखा वह श्रावक का नहीं था, इसलिए वह ठिठक गई। इसमें और कोई दूसरी बात नहीं है। हम श्रावक बनकर आएंगे तो श्रावक की हैसियत से पहचाने जाएंगे। सुलसा ने अंबड़ सन्न्यासी का स्वागत किया, सम्मान किया। तब अंबड़ सन्न्यासी ने कहा, मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि सुलसा की धर्मनिष्ठा का, उसकी गहराई का परीक्षण करना चाहिए। मैंने सारे खेल खेले, किंतु जितना सुना उससे भी बढ़कर तुम्हारी धर्मनिष्ठा पाई।

बंधुओ! यह कहानी सिर्फ कानों से सुनने के लिए नहीं है। हकीकत में ऐसी श्रद्धा, ऐसी दृढ़ता, ऐसी आस्था हमारे मन में भी होनी चाहिए। ऐसी आस्था होगी तो अपने अज्ञान को दूर करने वाले बनेंगे। उसके लिए सतत ज्ञान की आराधना करनी चाहिए। नियमित रूप से कम-से-कम पंद्रह मिनट धार्मिक अध्ययन अवश्य करें। ज्यादा कर सकें तो और भी अच्छी बात, किंतु केवल आया-गया नहीं हो। जो भी अध्ययन करें, जो भी धर्माराधना हो, वह जीवन में उतरे। अपनी क्रियाविधि को शुद्ध करने का लक्ष्य बनाना चाहिए। क्रियाविधि शुद्ध बनेगी ज्ञान होने से। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो सफल बनेंगे।

तपस्याएं भी चल रही हैं। महासती श्री चंदना श्री जी की आज 21 की, महासती श्री जयति श्री जी म.सा. की आज 24 की तपस्या है, 25 के पच्चक्खाण लिए हुए हैं। भावना जी वया की आज 28 की तपस्या है। और भी भाई-बहनों की तपस्या चल रही है। किसी से तपस्या नहीं हो पा रही हो तो कोई बात नहीं। क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं करें। राग-द्वेष को पतला करने का लक्ष्य बनाएं। यह भी तपस्या है। बहुत महत्त्वपूर्ण तपस्या है।

किसी से ईर्ष्या नहीं करें। यह मत सोचें कि मेरे पास जितनी संपत्ति है, उतनी दूसरे के पास क्यों आई? मेरे पास जितना ज्ञान है, उससे ज्यादा ज्ञान दूसरे को क्यों हो गया? ऐसा भाव पैदा नहीं होना चाहिए। ऐसी तपस्या कर लेंगे तो अपने अन्तर को पवित्र करने वाले बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

20 जुलाई, 2023

2

आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं, अन्तर तम को दूर भगाएं'

जो मेरा रक्षक है, जिससे मेरी रक्षा होनी संभव है, जो मेरी सुरक्षा का दायित्व लिए है उसको हमेशा बनाए रखना जरूरी है। हम कभी धर्म श्रद्धा वाले होते हैं और कभी-कभी उससे डाँवाडोल हो जाते हैं। मन हिल जाता है। चंचल बन जाता है। उसमें उतार-चढ़ाव आने लगता है। ऐसा होने से कई बार व्यक्ति धर्म श्रद्धा से च्युत भी हो जाता है।

भगवान महावीर से पूछा गया, भगवान! क्या कारण है कि व्यक्ति श्रद्धा से च्युत हो जाता है?

भगवान ने कहा, दर्शन-मोह का वेदन करते हुए जीव ज्ञानावरणीय एवं दर्शनावरणीय कर्म का वेदन करता है और श्रद्धा से च्युत हो जाता है।

फिर पूछा गया कि किन-किन कारणों से ऐसा होता है तो भगवान ने कहा कांक्षा-मोहनीय के कारण से होता है। हमारे भीतर कांक्षा पैदा होती है। कांक्षा का मतलब है अभिलाषा-आकांक्षा। दूसरों को देखकर अपने सिद्धांत को हीन समझते हुए सोचते हैं कि वहाँ बहुत अच्छा हो रहा है।

अच्छाई की परिभाषा क्या है?

अच्छाई की कोई एक परिभाषा नहीं है। कोई किसी कार्य को अच्छा बताता है तो कोई किसी कार्य को। कोई कहता है कि अमुक जगह सेवा का कार्य बहुत बढ़िया हो रहा है तो कोई किसी अन्य कार्य को बढ़िया कहता है

और कोई अन्य किसी विशेषता की बात करता है।

हमारी विशेषता क्या है? हमारी विशेषता हमें ज्ञात ही नहीं है। दूसरी जगह जहाँ कुछ भी हो रहा है, वहाँ वे कर्मबंधन की प्रक्रिया से रुके नहीं हैं, कर्मबंधन हो रहा है और हो रहा है। हमारे यहाँ पर संवर की आराधना बताई गई है। कर्मबंधन से मुक्त होने का उपाय बताया गया है। अन्य किसी भी धर्म-मजहब को आप देख लो कर्मबंधन की प्रक्रिया से मुक्त होने का उपाय नहीं मिलेगा। कर्मबंधन रोकने का उपाय एकमात्र जैन धर्म में ही मिलेगा। यदि किसी अन्य धर्म में आपको मिले तो मुझे बताना। संवर की आराधना केवल हमारे यहाँ हो रही है। हमारे यहाँ का मतलब है जैन धर्म में।

संवर का अर्थ होता है अपने आपको ढक लेना। अपने आपको आवृत कर लेना। ऐसा ढकना कि बाहर के कर्म आकर न लग सके। अर्थात् अपने आपको सुरक्षित कर लेना।

पुराने जमाने में युद्ध करने के लिए तलवार और ढाल होते थे। एक तरफ वार करने और दूसरी तरफ अपनी रक्षा करने का लक्ष्य होता था। भगवान कहते हैं कि वार करने का विचार छोड़ दो। अपनी रक्षा का लक्ष्य बनाओ। वार करने का विचार बनेगा तो कहीं-न-कहीं वैर-विरोध पैदा होगा। शत्रुता के भाव पैदा होंगे। नए शत्रुओं को तैयार करेंगे। इसलिए वार नहीं करते हुए अपनी रक्षा का लक्ष्य रहना चाहिए। हर प्राणी अपनी रक्षा चाहता है।

रक्षा करने का अर्थ शरीर से मत लेना। शरीर की रक्षा बहुत बार करते रहे हैं। जन्मों-जन्मों से शरीर की रक्षा करते रहे हैं पर शरीर की रक्षा कभी हो नहीं पाई। अंततोगत्वा शरीर यहीं छूटता है।

हमें आत्मा की रक्षा करनी है। हमारे मन के अशुभ विचार आत्मा को दुर्गति दिलाने वाले होते हैं। हमारा धर्म कहता है कि अपने मन के प्रशस्त विचारों को बदलो। मन के विचार बदलेंगे तो कर्मबंधन की प्रक्रिया बदल जाएगी। धर्म कहता है कि अपने तीखे वचनों को बदलो। तीखे वचन के बजाय सत्य वचन बोलना चाहिए। सत्य, प्रिय व मधुर बोलें। आप सोचते हैं कि हम स्पष्ट कहने वाले हैं, साफ-साफ कहने वाले हैं। बहुत अच्छी बात है कि आप साफ-साफ कहने वाले हैं, पर यह देखें कि आप साफ-साफ सुनने वाले भी हैं या नहीं! बहुत-से लोग वाग्जाल वाले होते हैं। वे बात को सजाकर बोलते हैं,

किंतु सुनने की उतनी ही क्षमता नहीं होती। साफ वक्ता को साफ श्रोता भी होना चाहिए, किंतु बहुधा देखा गया है जो अपने आपको साफ वक्ता मानता है वह सुनने में बड़ा कमजोर होता है। वह सुन नहीं पाता।

जब सुनने की क्षमता नहीं हो तो बोलने पर भी विराम लगा देना चाहिए। यदि सुनने की क्षमता हो, सहन करने की क्षमता हो तो बोलने में कोई बाधा नहीं है। वैसे तो अनावश्यक बोलना ही नहीं चाहिए, किंतु अपने आपको साफ वक्ता मानने वाले में सुनने की क्षमता होनी चाहिए।

यह देखा गया है कि बहुत-से लोग बातों के तीर चलाना जानते हैं, किंतु उनके पास उससे रक्षा करने का उपाय नहीं होता। वे आने वाले तीर को सहन नहीं कर पाते। भभक जाते हैं। इसका मतलब क्या हुआ? भले ही वह साफ वक्ता होगा, किंतु बोलने का तरीका नहीं है।

नीतिकार कहते हैं- '**सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्**'

अर्थात् सत्य बोलो और प्रिय बोलो। कुछ कथ्य अप्रिय भी हो सकते हैं। उनसे झंझट भी पैदा हो सकती है। इसका मतलब यह नहीं है कि झूठ बोलें। सत्य बोलना भी जरूरी नहीं है। नहीं बोलना है तो मौन रहो।

कोई व्यक्ति कुछ कह रहा है और आपको वह बात अच्छी नहीं लग रही है तो आप मौन रहें। सामने वाला भड़के वैसी बात आपको नहीं करनी। नहीं बोलना तो मौन रह लें, किंतु झूठ बोलना उचित नहीं है। जो प्रिय हो वैसा सत्य बोलें। बोलो तो मधुरता से बोलें।

कोयल को लोग सुनना पसंद क्यों करते हैं? कौआ बोले तो आदमी सुनना पसंद क्यों नहीं करता? क्योंकि कोयल मीठा बोलती है और कौआ कर्कश बोलता है। यह बात हमें अवगत कराना चाहती है कि कौए की तरह कर्कश नहीं बोलना, बल्कि कोयल की तरह मीठा बोलना। मधुर वचन बोलना। मधुरता सबको प्रिय है। कठोर वचन किसी को प्रिय नहीं लगते।

हमारा धर्म हमें शिक्षा देता है कि सदा सत्य बोलो। इसका उलटा अर्थ मत लेना कि चापलूसी करनी है। चापलूसी करना सत्य बोलना नहीं है। सत्य सदा सत्य होता है, तेजस्वी होता है।

हाथ किसी की रक्षा करने के लिए भी उठते हैं और किसी को मारने के लिए भी। किसी को गिराने के लिए हाथ एक धक्का लगा सकता है और

गिरते हुए को बचाने के लिए भी हाथ का प्रयोग किया जाता है। ऐसा नहीं कि कोई फिसल रहा है तो उसको थोड़ा धक्का दे दूँ ताकि आराम से फिसल जाए और रोकने की नौबत नहीं आए।

अभी-अभी सुना कि एक पुलिस अधिकारी किसी को बचाने के लिए जल में कूदा और स्वयं मृत्यु को प्राप्त हो गया। मरना तो एक दिन सबको है, किंतु किसी को बचाने के लिए कोई मरे तो उसका नाम अमर हो जाता है। लोगों की जुबां पर उसका नाम आ गया। उसने दूसरे को बचाने का प्रयास किया और स्वयं मर गया।

सेना के जवान देश की रक्षा करने के लिए तैयार रहते हैं। कई बार वे शहीद भी हो जाते हैं। लोग उनकी शहादत को याद रखते हैं। मरने वाले बहुत होते हैं। कोई एक्सीडेंट में मरता है तो कोई किसी और प्रकार से। कोई लड़ाई-झगड़ा करके मर जाता है। उनका नाम कितना रोशन होता है, उनका नाम कितना अमर होता है?

(श्रोतागण बोले- उनका नाम अमर नहीं होता)

उनका नाम अमर होने वाला नहीं है। दो-चार दिन लोग याद करेंगे और बाद में भूल जाएंगे।

हमारा धर्म, हमारी श्रद्धा कहती है कि तुम अपने मन, वचन और काया का गोपन करो। इनकी रक्षा करो। इनकी रक्षा कर पाओगे तो अपने शत्रु को भी मित्र बनाने में समर्थ बनोगे।

कांक्षा के बहुत सारे भेद बताए गए हैं। तत्त्व की बातें सामने आती हैं। उदाहरण के रूप में श्रीमद् स्थानांग सूत्र में वर्णन है कि आत्मा एक है और अन्य शास्त्रों में बताया गया है कि आत्मा अनंतानंत है। 25 बोल का थोकड़ा, सिद्धांत बत्तीसी जिसने याद की होगी उसको ध्यान होगा कि जीवास्तिकाय को द्रव्य में अनंतानंत बताया अर्थात् जीव अनंत हैं। जब जीव अनंत हैं तो स्थानांग सूत्र में कैसे कह दिया- 'एगे आया।' जहाँ संग्रह वय से कथन होता है वहाँ समान धर्म वाले सभी को एक साथ कर दिया जाता है। जीव अनंतानंत हैं। प्रत्येक जीव अपनी स्वतंत्र सत्ता लिए हुए हैं, किंतु जीवास्तिकाय के रूप में एक ही है।

यह क्या है? (हाथ में व्याख्यान का पुट्ठा लेकर दिखाते हुए)

यह धर्मास्तिकाय है या अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय है या जीवास्तिकाय या फिर पुद्गलास्तिकाय?

(कई श्रोता बोलते हैं– पुद्गलास्तिकाय है)

अध्यक्ष साहब! शौकीन जी! क्या है यह?

(शौकीन जी बोले– पुद्गलास्तिकाय है)

(चश्मा हाथ में लेकर) ...और यह क्या है?

(श्रोतागण बोले– यह भी पुद्गलास्तिकाय है)

कितने पुद्गलास्तिकाय हैं?

(श्रोतागण बोले– एक है)

पुद्गलास्तिकाय भी पाँच बोलों से पहचान की जाती है। यह पुद्गलास्तिकाय नहीं है। हम इनको कहेंगे पुद्गल। पुद्गलास्तिकाय में सारे पुद्गल हैं। एक भी पुद्गल जिसमें बाकी नहीं रहेगा। सारे पुद्गल मिलकर पुद्गलास्तिकाय हैं। एक परमाणु भी यदि अलग रहेगा तो पुद्गलास्तिकाय नहीं कहलाएगा।

हम थोकड़े याद करते हैं, सीख लेते हैं, उसे रट लेते हैं किंतु उसके आगे विचार नहीं करते।

कई लोग ट्रेनर से धन कमाने के गुर सीखते हैं, किंतु उनका प्रयोग नहीं करें तो केवल सीखना क्या सार्थक होगा। उसका उपयोग करने से कुछ होगा। आप उनका उपयोग भी करते हैं क्या?

(श्रोतागण बोले– उनका उपयोग करते हैं)

उपयोग नहीं करेंगे तो सीखा हुआ ही रह जाएगा। उसका लाभ नहीं उठा पाएंगे। उसमें दीमक लग जाएगा। जैसे उनका उपयोग करते हैं, वैसे ही यहाँ सीखा हुआ ज्ञान भी उपयोग में आना चाहिए कि मेरा धर्म कैसे बढ़े।

'आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं, अन्तर तम को दूर भगाएं'

अन्तर्तम को दूर करने का क्या उपाय किया जाए?

कल मैंने बात बताई अन्तर के अज्ञान को हटाने की। प्रश्न खड़ा हुआ कि कैसे हटाएं? उसका समाधान है कि भीतर ज्ञान की ज्योति जगाएंगे तो अज्ञान दूर हटेगा। बहुत–सी बातें अज्ञान के रूप में पड़ी रहती हैं। अज्ञानता की वजह से हम डाँवाडोल होते रहते हैं।

नीतिकारों ने कहा कि संशय, आत्मा का विनाश करने वाला होता

है। थोड़ी ध्यान से सुनें मेरी बात। आत्मा का विनाश होता है क्या? यहाँ पर विनाश का मतलब है आत्मा के सत्व का, उसकी श्रद्धा का, उसके ज्ञान का विनाश होना। इसलिए कभी संशय में नहीं रहना। संशय का निराकरण कर लेना। अपने आप कर सकें तो बहुत अच्छी बात है। शास्त्रों को पढ़कर कर सकें तो बहुत अच्छी बात है। यदि अपने आप नहीं कर सकें तो जहाँ भी संत-महात्मा से संपर्क हो, उनसे समाधान लें। उनसे समाधान लेने से ज्ञान परिपक्व होगा। ज्ञान, विज्ञान का रूप लेगा। ज्ञान का विस्तार होगा यानी तत्त्व विशेष रूप से पहचान हो पाएगी।

ज्ञानचर्चा के समय बार-बार कहा जाता है कि पूछो, किंतु लोग पूछने के लिए तैयार नहीं होते। कई लोगों के मन में भय भी रहता होगा कि कहीं पूछना गलत न हो जाए। अगर पूछना गलत होगा तो उसका सुधार भी होगा। जब तक पूछेंगे नहीं तब तक वह गलती, गलती रह जाएगी। इसलिए तैयारी करें कि कुछ-न-कुछ पूछेंगे। पूछने की तैयारी करने के लिए स्वाध्याय करना होगा। चिंतन-मनन करना होगा। चिंतन-मनन करेंगे तो प्रश्न पूछ पाएंगे। यदि विचार ही नहीं करेंगे तो जिज्ञासा कैसे पैदा होगी, तर्क कैसे पैदा होगा।

जमीन में बीज डाला जाता है तो वह अंकुरित होता है। उसी तरह जो अपने भीतर स्वाध्याय का बीज डालेगा, उसके भीतर जिज्ञासा पैदा होगी, तर्क पैदा होगा। सामने बहुत सारे प्रश्न खड़े होंगे कि ऐसा क्यों हो गया, कैसे हो गया। प्रश्नों के जवाब तलाशने के लिए किताब पढ़नी होगी। स्वाध्याय करना होगा। टाइम पास के लिए किताब नहीं पढ़नी। उस पर गहरी दृष्टि होनी चाहिए।

आचार्य पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि किताब का एक पैराग्राफ पढ़ना, फिर किताब बंद करके मन में विचार करना कि इसमें क्या कहा गया है! विचार करना कि इसमें क्या तत्त्व है, क्या कथ्य है, लेखक क्या कहना चाह रहा है! इस प्रकार विचार करते हुए पढ़ेंगे तो उसमें रहा हुआ भाव, उसमें रही हुई गहराई समझने में समर्थ होंगे। पैराग्राफ के भावों को अपने आप समझ लेना बहुत अच्छी बात है।

आगमों के लिए कहा जाता है कि उन्हें जितनी बार पढ़ेंगे, उतनी बार नया ज्ञान मिलेगा। यदि चार बार पढ़ेंगे तो चारों बार कुछ-न-कुछ नया मिलेगा।

क्यों मिलेगा नया?

क्योंकि पढ़ने की दृष्टि बदल गई। पहले सामान्य दृष्टि थी। बाद में उसमें तेजस्विता आई। दूसरी बार, तीसरी बार पढ़ने में तत्त्व को हृदयगंम करने का सामर्थ्य बना। इसलिए बार-बार पढ़ना चाहिए। पढ़ने से श्रद्धा मजबूत बनेगी। अंधेरा हटेगा। भीतर का अज्ञान दूर हटेगा, दूर भगेगा। जैसे सूर्योदय होते ही अंधकार छँट जाता है, वैसे ही ज्ञान होते ही भीतर का अंधकार भाग जाएगा। श्रद्धा निर्मल होगी, पवित्र होगी। जैसे हम आँखों से अच्छी तरह से देख रहे होते हैं, उस पर सहसा अविश्वास नहीं होता, वैसे ही ज्ञान से उन विषयों के प्रति रही शंका दूर होगी, जिसको हमने जाना नहीं। जिसको आँखों से देखा नहीं। जिसका कभी अनुभव नहीं किया। जैसे मैंने आत्मा की बात कही, वैसे ही बहुत सारे प्रश्न होते हैं, बहुत सारे विषय होते हैं जिनमें संशय होने की गुंजाइश होती है। संशय होना स्वाभाविक है, किंतु एक बात मन में अच्छी तरह से जमा लेनी होगी कि जो जिनेश्वर भगवंतों ने कहा है, वही सत्य है। वही निश्शंक है।

यदि उसके प्रति कभी मन में डाउट हो जाए तो सूत्र ''तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहि पवेइयं'' हमारा दिशा-निर्देशक बनेगा कि मेरी समझ में नहीं आ रहा होगा, किंतु जिनेश्वर भगवंतों ने जो कहा है, वह सत्य है। उसमें शंका की गुंजाइश नहीं है। मेरा ज्ञान अधूरा है इस कारण से मेरी समझ में नहीं आ रहा होगा।

कोई फिजिक्स पढ़ता है तो कोई केमेस्ट्री। कोई संस्कृत तो कोई कुछ और। लोग अलग-अलग विषय पढ़ते हैं। उन विषयों में डाउट होने पर समाधान लेते हैं। वैसे ही हम समाधान लेते रहेंगे तो धर्म का ज्ञान बढ़ता जाएगा। हो सकता है बहुत सी बातें समझ में न आएं, किंतु हमें यह लक्ष्य रखना है कि जो भगवान के द्वारा कहा गया है उसमें कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती। मेरी समझ में गड़बड़ी हो सकती है। मेरा क्षयोपशम प्रबल नहीं होने से मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, कोई ज्ञानी मिलेंगे तो उनसे चर्चा करके समाधन प्राप्त करूंगा।

बीकानेर के मुलतान जी गोलछा अभी नहीं रहे। वे प्राय: साधुओं से कहते कि म.सा., भगवान का आप पर उतना भरोसा नहीं था, जितना हम श्रावकों पर भरोसा था।

यह बात सही है क्या?

यह बात आपके गले उतरेगी नहीं। वे तर्क देते थे कि भगवान ने आप लोगों के लिए कहा कि जहाँ रात्रि विश्राम करते हों वहाँ पानी खुला नहीं रहना चाहिए। जहाँ पानी पड़ा है वहाँ रात को रुकना नहीं। ये नियम, ये मर्यादा बताई पर श्रावक के लिए ऐसी बात नहीं है। चौविहार होने पर भी श्रावक पानी की मटकी को पास में रखकर सो सकता है। ऐसा क्यों? उन्हें श्रावकों पर भरोसा था कि इसके त्याग है तो यह पानी नहीं पीयेगा। ऐसे ही तर्क देकर वे कहते कि हम पर भगवान को जितना भरोसा था, उतना भरोसा आप पर नहीं था।

इसी प्रकार आप साधुओं के लिए भगवान ने बताया कि जहाँ रात्रि को महिलाएं रहती हों, वहाँ नहीं रहना। पर श्रावक ने शीलव्रत ले भी लिया तो उसको ऐसी मनाही नहीं है।

अब क्या जवाब देंगे अध्यक्ष साहब! कुछ तो जवाब दो, हमारा बचाव तो करो। कुछ तो हमें रास्ता बताओ। यहाँ एक बार मन में संशय हो सकता है कि तर्क तो एकदम सही है।

मेरे सामने भी ऐसा प्रश्न आया। मैंने कहा कि कवच सभी को नहीं दिया जाता। जो युद्ध करने जाता है उसको ही सुरक्षा कवच पहनाया जाता है आम पब्लिक को नहीं। योद्धाओं की सुरक्षा की जाएगी या आम पब्लिक की?

(श्रोतागण बोले- योद्धाओं की सुरक्षा की जाएगी)

योद्धाओं की सुरक्षा की जाएगी, क्योंकि योद्धा सुरक्षित होंगे तो हमारी रक्षा हो पाएगी। योद्धाओं को कवच न पहनाकर आम पब्लिक को पहनाएंगे तो पब्लिक अपनी रक्षा कर पाएगी या नहीं, योद्धा भी हाथ से निकल जाएंगे। योद्धाओं की रक्षा होनी चाहिए। जो युद्ध में जाते हैं उनको सुरक्षा कवच पहनाया जाता है। साधु युद्ध में कूद पड़े हैं, इसलिए उनको सुरक्षा कवच पहनाया जाता है। जो रण में कूद पड़े उनको कवच की आवश्यकता रहती है।

समाधान हुआ कि नहीं?

(श्रोतागण बोले- हो गया)

फिर पहले संशय पैदा क्यों हुआ?

संशय तो नहीं हुआ होगा, पर हमारे पास तर्क नहीं था। उत्तर देने के लिए कोई तर्क नहीं था। तीर को काटने के लिए कोई दूसरा तीर नहीं था,

इसलिए मौन रहे।

यह बताओ महाराणा प्रताप हाथ में ढाल रखते थे या नहीं?

(श्रोतागण बोले- रखते थे)

सामान्य लोग क्यों नहीं रखते?

क्योंकि वे युद्ध में, रण में नहीं जा रहे हैं। जो रण में जाएगा उसको अपनी सुरक्षा करनी पड़ेगी। साधु कर्मों के रण को जीतने के लिए निकला है तो उसको कवच की आवश्यकता पड़ेगी। उसको सुरक्षा की आवश्यकता पड़ेगी। इसलिए भगवान ने कहा कि उनकी रक्षा के लिए मर्यादा रूपी कवच जरूरी है। भगवान ने साधु के लिए अलग नियम-मर्यादा बताए और श्रावकों के लिए अलग।

अपने अज्ञान को दूर करने के लिए हमें अपनी श्रद्धा का बार-बार निरीक्षण करते रहना चाहिए। लोग कह सकते हैं कि 'हमारी श्रद्धा है, उसे बार-बार क्या देखें।' इसलिए देखें क्योंकि बहुत-सी चीजें पड़ी-पड़ी खराब हो जाती हैं। घर में पड़ी हुई किताब में दीमक लग जाता है।

घर में पड़ी-पड़ी किताब में दीमक लग जाता है। किताब सड़ जाती है। जीर्ण हो जाती है।

पान भी पड़े-पड़े खराब हो जाते हैं। इसलिए पनवाड़ी पान को बार-बार फेरता रहता है। घोड़े को रोज घुमाना पड़ता है। घोड़ा पालने वाले उसे हमेशा साँकल से बाँधकर नहीं रखते। रोज उसको घुमाना जरूरी है। यदि नहीं घुमाया जाएगा तो घोड़ा अड़ जाएगा। वह सही रूप से चलने में समर्थ नहीं होगा। इसी तरह सेना को रोज अभ्यास कराना जरूरी होता है। सैनिक अभ्यास नहीं करेंगे तो सीखा हुआ वे भूल जाएंगे और वह समय पर काम नहीं आएगा।

इन उदाहरणों से समझा जा सकता है कि श्रद्धा की समालोचना बार-बार करनी चाहिए। निरीक्षण करते रहना चाहिए कि मेरी श्रद्धा में कहाँ-कहाँ कमजोरी है। देखना चाहिए कि मेरी श्रद्धा मजबूत है या नहीं। इस प्रकार से श्रद्धा की समीक्षा करेंगे तो उसको मजबूत बनाए रखने में समर्थ बनेंगे।

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में नंदमणियार का वर्णन आता है। नंदमणियार भगवान महावीर का बारह व्रतधारी श्रावक था, किंतु उसे बार-बार साधुओं का संपर्क नहीं मिला। बार-बार साधुओं का संयोग नहीं मिलने से उसने भी पर्यालोचन नहीं की, अनुप्रेक्षा नहीं की।

एक बार ज्येष्ठ महीने में उसने पौषध सहित चौविहार तेला किया। उसका मन भटक गया कि क्या पड़ा है तेले में। क्यों भूखा-प्यासा मरूँ। भूखे रहने से लाभ नहीं होगा। उसके भीतर नकारात्मक विचार चालू हो गए कि पौषध पूरा होने के बाद मैं पौषध-सामायिक छोड़कर दूसरी सेवा करने में लग जाऊँगा। उसने विचार किया कि सम्राट से जमीन प्राप्त करके बगीचा लगवाऊँगा, बावड़ियाँ बनवाऊँगा। पौषध पूर्ण होने पर अपने विचारों के अनुसार उसने सम्राट से जमीन ली और बगीचा बनवाया। बावड़ियाँ बनवाईं। जब बगीचे के पौधों में फल आने पर लोग फल खा कर, बावड़ी से पी कर तो नंदमणियार की बहुत प्रशंसा करते।

प्रशंसा सुनकर नंदमणियार को लगता कि मैंने कितना सुंदर काम किया, कितना बढ़िया काम किया। उसने धर्म-ध्यान छोड़-छाड़ दिया, श्रद्धा से भी च्युत हो गया। क्यों च्युत हो गया श्रद्धा से? क्योंकि उसको संसर्ग नहीं मिला। जिससे वह अपने सम्यक्त्व की, तत्त्व की अनुप्रेक्षा नहीं कर पाया इसलिए संसर्ग की आवश्यकता होती है। बार-बार संतों के समागम में जाएंगे, बार-बार संतों का संयोग मिलेगा तो संशय दूर होगा। ज्ञान की बात सीखेंगे। उसका बार-बार चिंतन-मनन करते रहने से श्रद्धा को मजबूत बनाए रखने में समर्थ होंगे।

नंदमणियार का जीव भटक गया। प्रशंसा सुनने के लिए उसके कान खड़े रहते थे। वह सुनना चाहता था कि उसने कितना अच्छा काम किया।

उसने आरंभ का काम किया या संवर का? उसने हिंसा का काम किया या संवर का?

(श्रोतागण बोले- आरंभ का काम किया)

बहुत से लोग इस बात में राजी रहते हैं कि हम सोशल काम करने वाले हैं। मैं यह नहीं कहता कि आप सोशल काम मत करो, किंतु हिंसा, हिंसा ही रहेगी। आरंभ, आरंभ ही रहेगा और धर्म, धर्म ही रहेगा। आत्मा की सुरक्षा संवर से, धर्माराधना से होगी। दूसरा कोई उपाय नहीं है।

नंदमणियार मर करके उसी बावड़ी में मेढक के रूप में जन्मा।

श्रावक की गति क्या है?

श्रावक की गति देव की है। यदि श्रावक ने श्रावक व्रतों की आराधना

की हो तो वह दूसरी गतियों में नहीं जाएगा, किंतु नंदमणियार मर करके मेढक के रूप में जन्मा। क्योंकि वह श्रद्धा से, व्रतों से भटक गया था। जितने भी बारह व्रतधारी श्रावकों के बारे में सुनते हैं, पढ़ते हैं वे सारे देवलोक में गए। जिन्होंने श्रावक के व्रतों की आराधना की वे देवलोक में गए। नंदमणियार प्रशंसा से फूल कर धर्म से च्युत हो गया। इसलिए वह मेढक के रूप में जन्म लेने वाला बना।

हम विचार कर सकते हैं कि कहाँ हमसे चूक हो जाती है। कहाँ हम भटक जाते हैं। इसके लिए हमें बार-बार श्रद्धा की अनुप्रेक्षा करनी चाहिए।

'आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं, अन्तर तम को दूर भगाएं'

बार-बार सकारात्मक सोच से श्रद्धा को पुष्ट करना, उसको बलवान करना, उसको भगवान की वाणी के अनुसार बल देना, जैसे आर.सी.सी. का मकान बनाने के बाद तराई दी जाती है।

आर.सी.सी. का मकान तो बना लिया, किंतु मकान मजबूत कब होगा?

जब पानी से उसकी तराई की जाएगी तब वह मजबूत होगा। तब वह मजबूती से खड़ा रह पाएगा। यदि पानी से तराई नहीं की गई तो मकान फट जाएगा। वह मजबूत नहीं रह पाएगा। आर.सी.सी. के मकान की तरह श्रद्धा को भी तराई चाहिए। तराई नहीं करेंगे तो उसकी मजबूती भी संदिग्ध बन सकती है। उसकी तराई होगी स्वाध्याय से। अनुप्रेक्षा से। निरंतर स्वाध्याय करते हुए, अनुप्रेक्षा करते हुए उसको सुदृढ़ बनाना जरूरी है।

सुनंदा की थोड़ी चर्चा कर लेते हैं।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
श्वसुरबाड़ी अब घर तेरा, वहीं चलेगा जीवन बसेरा,
रखना सबसे प्रेम, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
पालन करना सास अनुज्ञा, पति परमेश्वर की जो आज्ञा,
देवर आदि से प्यार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

विजय के साथ सुनंदा का संबंध जुड़ गया। उसने विजय के साथ सात फेरे ले लिए। अब वह पराया धन हो गया। दहेज देने की प्रथा रही है। माता-पिता, परिवारवालों ने क्या दहेज दिया, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। शिक्षा रूपी मोती और रत्न उन्होंने अपनी बेटी को दहेज में अवश्य दिए। उसके पिता ने कहा, बेटी! अब ससुर का घर ही तुम्हारा घर होगा। वहीं तुम्हें रात-दिन

व्यतीत करने रहेंगे। अत: सबके साथ हिल-मिलकर रहना, प्रेम से रहना। हिल-मिलकर रहने से प्रसन्नता रहेगी या मुँह चढ़ाकर रहने से?

(श्रोतागण बोले- हिल-मिलकर रहेंगे तो प्रसन्नता रहेगी)

सुनंदा के पिता ने कहा कि अपने दिमाग में यह बात जमा लो कि मुझे अब ससुराल में ही रहना है। वही मेरा घर है, वही मेरा परिवार है।

हम भी यह विचार करें कि मुझे इसी घर में रहना है तो क्यों रोज-रोज कट-कट करना? रोज कट-कट करने से फायदा होने वाला नहीं है। उससे क्लेश बढ़ेगा, प्रेम घटेगा। इसलिए वैसा नहीं करें। उसके बजाय यह लक्ष्य होना चाहिए कि परस्पर संबंध हमेशा बना रहे।

सुनंदा को उसके पिता सीख देते हैं, बेटी! सबसे प्रेम से रहना, सास की आज्ञा का पालन करना।

ससुर की आज्ञा का पालन करने के लिए क्यों नहीं कहा?

क्योंकि ससुर से बात का काम कम ही होता है। मुख्यत: सास की बात मान ली जाती है, इसलिए ससुर को सीख देने का काम कम ही होता है। सास की बात मान ली जाए तो घर में क्लेश नहीं होगा। दूसरी बात, विजय के पिता का स्वर्गवास हो चुका था, इसलिए ससुर की बात नहीं की।

पहले किसकी आज्ञा का पालन करने की सीख दी?

(श्रोतागण बोले- सास की आज्ञा का पालन करने की)

पहले सास की आज्ञा का पालन करने की सीख दी। ऐसा नहीं कि पति की बात मानना, सास की नहीं मानना। पति की बात भी मानना जरूरी है, किंतु सास की आज्ञा का पालन करना बहुत जरूरी है।

घर-परिवार में समन्वय किससे बना रहेगा?

दो तरफ से अलग-अलग आज्ञा आ रही है तो क्या करना?

इस बारे में अपनी बुद्धि से ही निर्णय करना पड़ेगा। पति की अपेक्षा सास-ससुर ज्यादा अनुभवी होते हैं। उनकी सीख अनुभवों से जुड़ी होती है। पति को उतना अनुभव शायद हो। इसलिए सास-ससुर की बात को महत्त्व दिया गया है। देवर-देवरानी, ननद आदि परिवार के जो भी सदस्य हैं उनके साथ वात्सल्य बनाए रखना। प्रेम से रहना। ऐसा नहीं समझना कि ये तो पराए हैं, मैं तो पति की आज्ञा का पालन करूंगी।

कभी-कभी लोग सोच लेते हैं, मैं तो गुरु महाराज की सेवा करूंगा, संतों की सेवा क्या करना। मन में रहता है कि हम संतों से नहीं, गुरु महाराज से बात करेंगे। संतों को भी महत्त्व दें, क्योंकि वे भी महाव्रतधारी हैं और धर्म की आराधना कर रहे हैं। हमें उनसे धर्म बोध लेना है। उनसे धर्म बोध लेते रहेंगे तो गुरु महाराज अपने आप खुश हो जाएंगे। संतों से ज्ञान लेने से बढ़कर और क्या बात हो सकती है। गुरु के लिए सबको एक साथ समय देना मुश्किल भी हो सकता है।

हमें तो खाने से मतलब रखना चाहिए, चाहे कोई भी परोसगारी करे। ऐसा नहीं हो कि परोसगारी के लिए घरधणी आएंगे तो ही खाना लूंगा। घरधणी नहीं आएंगे तो भोजन नहीं करूंगा।

नहीं करेंगे तो भूखे रहेंगे। इसलिए यह लक्ष्य रखें कि हमें तो भोजन करने से मतलब है। परोसगारी चाहे कोई भी करे, हमारी थाली में भोजन आ रहा है न! हमें खाना तो मिल रहा है न!

इसी प्रकार चाहे कोई भी संत हो, हमें तो ज्ञान-ध्यान सीखने का लक्ष्य रखना है। ज्ञान-ध्यान बढ़ाने का लक्ष्य रखना है। किसी की अपेक्षा नहीं करनी है। जहाँ से भी सीखने को मिले, सीखने का लक्ष्य बनाएं। मगध सम्राट श्रेणिक ने मेहतर से भी ज्ञान लिया। ऐसा नहीं कि हर्षित मुनि जी सिखाएं तो ही सीखें। निर्वाण मुनि जी से क्या सीखना। कोई भी सीखा रहा हो, हमारा लक्ष्य सीखने का रहना चाहिए। ज्ञान पाएंगे तो अपनी श्रद्धा को सुदृढ़ कर पाएंगे, जिससे हमारे भीतर सहसा कोई संशय पैदा नहीं होगा। ज्ञान नेत्र खुल जाने से हम बार-बार अपनी श्रद्धा का अन्वेषण कर पाएंगे। यदि भीतर दोष होगा तो उसे दूर करने का प्रयत्न होगा। अतः अपने ज्ञान को बढ़ाने का लक्ष्य रखते हुए धर्माराधना भाव बनाएं।

एक बार सब मिलकर बोलेंगे-

'आओ श्रद्धा गीत गुँजाएं, अन्तर तम को दूर भगाएं'

ऐसा लक्ष्य बनेगा तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

21 जुलाई, 2023

3

श्रद्धा से निज को पहचाना

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'श्रद्धा से निज को पहचाना, सत्य धर्म को तब ही जाना'

धर्म की पहचान कब होगी?

जब अपनी पहचान हो जाएगी तब धर्म की भी पहचान हो पाएगी।

हमारी पहचान कब होगी?

पहचान तब होगी, जब धर्म की श्रद्धा हमारे भीतर प्रकट हो जाएगी। धर्म श्रद्धा में झूलेंगे तब हमारी पहचान होगी कि मैं कौन हूँ! मेरा क्या स्वरूप है? मैं कहाँ से आया हूँ? और कहाँ जाना है? ये प्रश्न कब खड़े होंगे?

कई बार प्रश्नों में प्रश्न खड़ा हो जाता है। लोग पूछते हैं, गुरुदेव! भवी और अभवी की पहचान क्या है? लोगों का सवाल होता है कि कैसे समझें कि हम भवी हैं या अभवी?

भवी या अभवी की अलग से कोई पहचान नहीं बताई गई। कुछ ऐसा नहीं बताया गया जिससे पता चले कि वह भवी है या अभवी है। जिसमें धर्म श्रद्धा जगे वह निश्चित ही भवी है। जो केवल औपचारिक रूप से धर्म कर रहा है उसे एकान्त भवी नहीं कहा जा सकता।

आचारांग सूत्र की टीका में यह बात बताई गई है कि जिसके अंदर से यह प्रश्न खड़ा हो कि मैं भवी हूँ या अभवी, वह भवी है। भवी के मन में ही ऐसा प्रश्न खड़ा होता है कि मैं भवी हूँ या अभवी? अभवी के मन में ऐसा विचार, ऐसा प्रश्न, ऐसा विकल्प कभी खड़ा नहीं होता। किताबें पढ़ने से ऐसा विचार

पैदा होना दूसरी बात है। जिसके अन्तर से विचार पैदा हो रहा हो कि मैं भवी हूँ या अभवी, वह निश्चित भवी है।

'श्रद्धा से निज को पहचाना'

जब सम्यक्त्व प्राप्त होती है, सम्यक्त्व का प्रादुर्भाव होता है तभी अपनी पहचान करने में समर्थ होते हैं। तब यह अध्यवसाय पैदा होता है कि शरीर और आत्मा भिन्न है। उसका बोध तभी हो पाता है।

सम्यक्त्व के बहुत प्रकार हैं। उसकी बहुत-सी श्रेणियाँ हैं। बहुत-सी कोटियाँ हैं। सम्यक्त्व के जघन्य अध्यवसाय और उत्कृष्ट अध्यवसाय भी होते हैं। हर सम्यक्त्व में शरीर और आत्मा की भिन्नता का बोध नहीं होता, किंतु अन्तर में आत्मा की झलक उसे होने लगती है। उसके बल पर वह जान लेता है कि शरीर और आत्मा भिन्न है। यह जानकार उस पर विश्वास करता है। उस पर श्रद्धा रहती है और आत्मा की भिन्नता का अनुभव करने के लिए वह प्रयत्नशील होता है।

हमने कोई बात जानी या सुनी तो हमारे भीतर यह खोज चालू हो जाती है कि वह कितनी सच है। किसी ने कोई बात कही तो वह बात कितनी सत्य है, इसकी खोज करनी है। खोज करते-करते जब सत्यता ज्ञात होती है तो उसके प्रति विश्वास अक्षुण्ण हो जाता है। हमने किताबों में पढ़ा, गुरु महाराज से सुना कि आत्मा और शरीर भिन्न होता है। आत्मा, शरीर नहीं है और शरीर, आत्मा नहीं है। आत्म तत्त्व रहते हुए शरीर के सारे स्पंदन हो रहे हैं। जिस दिन तन से आत्म तत्त्व लुप्त हो जाएगा, उस दिन शरीर की सारी क्रियाएं, सारी हलचल रुक जाएगी। थम जाएगी।

हमें आत्मा दिखती क्यों नहीं?

रायप्रश्नीय सूत्र में प्रदेशी राजा का वर्णन आता है। उसको आत्मा पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसका तर्क था कि आत्मा दिखती क्यों नहीं है। शरीर से आत्मा अलग है तो शरीर के मरने पर आत्मा दिखती क्यों नहीं?

प्रदेशी राजा ने बहुत सारे प्रयोग किए। कई लोग कहते हैं कि वह नास्तिक था। कहने वाले कुछ भी कहें, किंतु मेरी दृष्टि में वह नास्तिक नहीं रहा होगा। वह खोजी जरूर था। यह बात अलग है कि उसकी खोज की दृष्टि, खोज का तरीका सही नहीं रहा हो। आज के वैज्ञानिक शोध करते हैं तो जो बात

उनकी मशीनों में आ जाए, यंत्रों में आ जाए उसे ही वे सही मानते हैं, नहीं तो नहीं। उनकी सोच अलग है। आत्मा को यंत्रों पर प्राप्त नहीं किया जा सकता।

भगवान महावीर ने कहा कि आत्मा अमूर्त है और अमूर्त भाव नित्य होता है। सदा विद्यमान होता है। अमूर्त भाव न कभी मरता है और न ही कभी खंडित होता है। हमारी इंद्रियाँ मूर्त को ग्रहण करती हैं। इंद्रियाँ आकार-प्रकार ग्रहण करती हैं। जिसे हमारी इंद्रियाँ ग्रहण करती हैं, यंत्र भी उन्हें ग्रहण कर सकता है किंतु आत्मा को यंत्र ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे धर्मास्तिकाय-अधर्मास्तिकाय को यंत्र अपनी सीमा में नहीं ले पाते, वैसे ही यंत्र आत्मा को अपनी सीमा में नहीं ले पाएंगे। साधना से आत्मा की अनुभूति होती है। साधना से आत्मा का साक्षात्कार होता है।

गीता और महाभारत में ऐसे प्रसंग हैं कि अर्जुन को श्रीकृष्ण ने दिव्य रूप दर्शाया। दिव्य रूप दर्शाने का मतलब क्या है? इसका मतलब है कि आध्यात्मिक बोध दिया। उसकी दृष्टि में यह बताया कि कोई भी अपना नहीं है।

भगवान महावीर ने बताया कि जितनी भी आत्माएं हैं, उन सभी के साथ हमारा संबंध हो चुका है। कोई भी आत्मा अनजानी नहीं है। किसी भव में मित्र, किसी भव में पिता, किसी जन्म में माता, किसी जन्म में पुत्र रहा, किसी में भाई, किसी में बहन, किसी में पत्नी रही। इसी तरह किसी जन्म में नाना-नानी, दादा-दादी रहे। जितने भी संबंध होते हैं उनको हमने उन समग्र आत्माओं के साथ जोड़ा है और आज उन्हीं के साथ लड़ाई-झगड़ा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ वैर-विरोध कर रहे हैं। यदि बीच का पर्दा हट जाए तो हमारी हालत खराब हो जाएगी कि हम क्या कर रहे हैं। जाति-स्मरण ज्ञान से भी कुछ जाना जा सकता है। जाति स्मरण ज्ञान से लोगों ने जाना भी है कि मैं पूर्व जन्मों में कहाँ था, किस रूप में था, किस घर में था। किस घर में मेरा जन्म हुआ, कौन-कौन मेरे रिलेशन वाले थे।

पर्दा गिरने पर हम पुरानी बातें भूल जाते हैं। भूल जाते हैं कि किसके साथ संबंध था, किसके साथ रिलेशन था। इसलिए नया जन्म, नया सवेरा, नए संबंध और नए रिश्ते। हम वापस वहाँ से शुरुआत कर लेते हैं। उनके साथ झगड़ा, मन की एकरूपता या विषमता करते जाते हैं। ये अज्ञान के कारण होता है। अज्ञान के कारण जान नहीं पाए, इसलिए ऐसा व्यवहार होता रहा और हो रहा है।

जिस दिन सम्यक्त्व प्रखर हो जाएगा, श्रद्धा का सूर्य व्यक्त हो जाएगा उस दिन पता चल जाएगा कि तीर्थंकर देवों ने जो कहा उसमें कोई अंतर आ ही नहीं सकता। घट-घट के ज्ञानी होते हैं तीर्थंकर देव। घट-घट के ज्ञानी होते हैं केवलज्ञानी। वे जो देखते हैं वही बात कहते हैं। उनके ज्ञान से कोई भी बात छिपी नहीं रहती। सारे विषय उनके ज्ञान में झलकते हैं। इसलिए उनके वचन कभी यथार्थ नहीं होते, अन्यथा नहीं होते।

ऐसे दृढ़ विश्वास से आत्मा की खोज करने में आगे बढ़ जाएं। खोज करें कि मैं कौन हूँ? सोचें कि आज तक मैं अंधेरे में भटकता रहा, नहीं जान पाया कि शरीर और आत्मा भिन्न है। अब मेरे भीतर एक किरण प्रस्फुटित हुई है, जिससे पता चला कि मैं भिन्न हूँ और मेरा शरीर भिन्न।

आत्मा की खोज करने वाले को धीरे-धीरे अनुभव होता है कि मेरी आँख, आत्मा नहीं है। कान, मेरी आत्मा नहीं है। शरीर, आत्मा नहीं है, क्योंकि मेरा अनुभव ऐसा कहता है कि आत्मा की अनुपस्थिति में न कान काम करते हैं और न आँखें काम करती हैं। मरा हुआ कलेवर पड़ा हो, वह देख नहीं पाएगा। किसी के मरने के बाद उसके कान के सामने कितना भी मधुर स्वर गुँजा दो, कितने ही प्रिय गाने बजा दो, उसमें हलचल पैदा नहीं होगी। उसके मुँह में स्वादिष्ट भोजन, उसका प्रिय भोजन रखने पर भी वह खा नहीं पाएगा। क्योंकि बिना आत्मा के सारी क्रियाएं ठप हो जाती हैं।

इसलिए मानना पड़ेगा कि शरीर से अलग कोई तत्त्व है, जिससे सारा स्पंदन हो रहा है। सारी हलन-चलन हो रही है। जिससे ये सारी हलन-चलन हो रही है, वही आत्मा है। आत्मा वहाँ से हट जाती है तो सारी क्रियाएं ठप हो जाती हैं। जिसके निमित्त से, जिसके कारण से, जिसके होने से शरीर में सारा हलन-चलन हो रहा है, सारी क्रियाएं हो रही हैं वह तत्त्व आत्मा है। हम स्वाध्याय करेंगे, अनुप्रेक्षा करेंगे तो यह बात समझ पाएंगे और हमारा विश्वास गहरा होता जाएगा कि जीव का नाश होने वाला नहीं है।

'नत्थि जीवस्स नासु त्ति'

इस तथ्य को जिस दिन हम हृदयंगम करेंगे उस दिन सारे भय हमसे दूर हो जाएंगे। लोगों को मृत्यु का भय सताता रहता है कि पता नहीं कब मौत आ जाएगी, जबकि जानते सभी हैं कि मौत आएगी। है कोई जो नहीं जानता हो कि

मौत नहीं आएगी? सभी जान रहे हैं कि मौत आएगी। अपने समय पर आएगी। हमें यह जानकारी नहीं है कि मौत कब आएगी, इसलिए भयभीत होते रहते हैं।

मौत से भय क्यों खाना?

मौत आएगी जिस दिन आएगी। जिस दिन उसकी मरजी होगी उस दिन आएगी। जब तक मौत नहीं आ रही तब तक आराम से जीओ।

कल की चिंता हमें बहुत सताती है। कल क्या होगा इसकी चिंता बहुत सताती है। ज्ञानीजन कहते हैं कि आज जो तुम्हें मिला है, उसे आराम से जी लो। आज का दिन बिना चिंता के जी लो। आज का दिन बिना भय के जी लो। आज यदि ढंग से जी लिए तो कल का दिन अवश्य सुखद होगा पर लोग कल की चिंता में न आज को ठीक से जी पाते हैं और न कल को सही बना पाते हैं।

जिसने सही तरह से आज के दिन को जी लिया, उसे तनाव नहीं होगा, टेंशन नहीं होगा, भय नहीं होगा, चिंता नहीं होगी। फिर उसका कल अवश्यमेव सही होगा। दूसरे शब्दों में कहूँ, कल भारी संकट आने वाला है तो आज चिंता करने से क्या होगा। आज चिंता करने से कुछ नहीं होगा, क्योंकि वह तो आएगा ही।

दशरथ के सामने कोई समस्या नहीं थी, किंतु विश्वामित्र उनके सामने आकर खड़े हो गए और कहने लगे कि राम और लक्ष्मण को मेरे साथ भेजो। हम ऋषि, यज्ञादि करते हैं तो राक्षस उसमें बाधक बनते हैं। उसमें बाधा खड़ी करते हैं। उत्तर साधक के रूप में हम राम को ले जाना चाहते हैं। ये हमारी रक्षा करेंगे।

दशरथ ने ऐसे प्रसंग की कल्पना भी नहीं की थी। उनके सामने बड़ी दुविधा आ गई। वे राम को आँखों से अलग करना नहीं चाहते थे पर ऋषि को भी मना नहीं कर सकते थे। विश्वामित्र उस समय के प्रसिद्ध ऋषियों में से एक थे। दशरथ जानते थे कि उनका कोप भयंकर होता है। वे क्रोध में किसी को भी शाप (श्राप) दे देते हैं। उनका दिया शाप बेकार नहीं जाता था।

हालांकि ऋषियों को शाप (श्राप) देना नहीं चाहिए। किंतु यह भी कुदरत की देन है। इससे यह अहसास कराया जाता है कि तुम अभी अपूर्ण हो, सर्वशक्ति संपन्न नहीं हो।

दशरथ के सामने विकट समस्या थी। वे न राम को भेजने की स्थिति

में थे और न ही विश्वामित्र को मना कर पाने की स्थिति में थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करूँ। राम को विश्वामित्र के साथ भेजने से बचने के लिए उन्होंने कुछ उपाय किए। कहा कि ऋषिवर यह अभी बच्चा है। अभी इसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे, यह क्या दानवों से रक्षा करेगा।

दशरथ कहते हैं कि ये क्या रक्षा करेगा, मैं आपके साथ चलता हूँ, किंतु विश्वामित्र कहते हैं, नहीं, मुझे राम चाहिए। मैं उत्तर साधक के रूप में राम को ले जाना चाहता हूँ।

दशरथ का जब कोई दाँव नहीं चला तो विश्वामित्र के साथ राम को भेजना पड़ा। साथ में लक्ष्मण भी गए।

जब किसी अनहोनी को हम टाल नहीं पाएंगे, तो उसके लिए पहले से ही चिंता क्यों करना। आज जो मिला है उसे तो आराम से जीओ, मस्ती में जीओ। आज आराम से जीएंगे तो बुद्धि सही रहेगी और समस्याओं का समाधान ढूँढ पाएगी। चिंता से, तनाव से बुद्धि विकृत हो जाती है और समस्या का सही समाधान ढूँढना उसके लिए दुष्कर हो जाता है। सबकी बुद्धि का अपना-अपना माप है, किंतु यह निश्चित है कि जो अपनी बुद्धि को पवित्र बनाए रखता है उसकी बुद्धि बहुत गहराई से समाधान ढूँढ कर लाती है। पवित्र बुद्धि अबूझ पहेली को भी सुलझाने में समर्थ है। जिस अबूझ पहेली को सुलझा लेना सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं होती, उसका समाधान पवित्र बुद्धि ले आती है। पवित्रता रहेगी निश्चिंत भाव से।

चिंता रहित जीवन जीएं। शांत भाव से जीवन जीएं। मस्ती से जीवन जीएं। जो अपना है उसको जीएं। ऐसा जीवन जीएंगे तो सत्य को साक्षात् करने में समर्थ होंगे।

'श्रद्धा से निज को पहचाना, सत्य धर्म को तब ही जाना'

तब सत्य को जान पाएंगे कि आत्मा शाश्वत है। आत्मा अजर है, अमर है। शरीर मरता है, आत्मा का कभी मरना नहीं होता। जब आत्मा का मरना ही नहीं होता, तो क्यों करें! किसलिए चिंता करें!

भगवान महावीर ने साधकों को शिक्षा देते हुए बताया कि कोई तुम्हारा वध करने के लिए आ जाए, कोई तुम्हें मारने के लिए आ जाए तो तुम घबराना मत। तुम विचार करना कि 'नत्थि जीवस्स नासुत्ति' अर्थात् मेरे जीव

का नाश होने वाला नहीं है। कोई तलवार से गरदन हटा सकता है, शरीर को गोला-बारूद से उड़ा सकता है, समाप्त कर सकता है, किंतु मेरी आत्मा को नहीं उड़ा सकता। आत्मा को समाप्त नहीं कर सकता। शरीर का नाश होने वाला है, आत्मा का नहीं।

हमें पीड़ा क्यों होती है?

पीड़ा इसलिए होती है कि हमने आत्मा और शरीर को तादात्म्य समझ लिया। शरीर और आत्मा को एक समझेंगे तो मन में भय लगेगा, क्योंकि शरीर मरता है। हम उसी को समझ लेते हैं कि मेरा मरना हो गया, किंतु वह मरना मेरा नहीं, शरीर का हुआ।

ये बातें तो हम बहुत समझते हैं, किंतु वैसी दृष्टि नहीं बनती। वैसी दृष्टि बन जाए तो समझ लो कि सत्य को प्राप्त कर लिया। अब मुझे कोई मारे-काटे, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कोई मारे तो मार दे, काटे तो काट दे। ऐसा करके कोई मेरे शरीर को ही मार सकता है, आत्मा को नहीं। यही ज्ञान सत्य है, इसे ही आत्मज्ञान कहते हैं।

व्यवहार चलाने के लिए, जीवन जीने के लिए बहुत सारे ज्ञान होते हैं, वे केवल व्यावहारिक धरातल पर रह जाते हैं। भय मुक्त बनाने वाला ज्ञान सत्य ज्ञान होता है। जिसका सत्य समन्वित ज्ञान से संबंध हो जाता है, सत्य संबंधी ज्ञान जिसके भीतर प्रकट होता है, वह निर्भय हो जाता है। निर्भयता उसके नजदीक हो जाती है।

सम्यक्त्व के आठ आचार बताए गए हैं। उसमें पहला आचार बताया गया है- निश्शंकता।

कोई शंका नहीं, कोई डाउट नहीं। कोई समस्या नहीं, कोई भय नहीं। यह होगा श्रद्धा की दृढ़ता से। सत्य की दृढ़ता के लिए मैं प्राय: रोज बोल रहा हूँ। हमें अपने आपको उसके लिए मजबूत करना होगा। स्वाध्याय के बल से, स्वाध्याय से सिंचन करते रहने से, स्वयं को व अपनी श्रद्धा को मजबूत बना लेंगे। नौ पदार्थों का, नौ तत्त्वों का ज्ञान श्रद्धा को संबल देने वाला है, श्रद्धा को मजबूत बनाने वाला है।

उधर सुनंदा पराए घर में जा रही है। यूँ कहें कि अपने घर में जा रही है। जिस घर में जन्म लिया उस घर को छोड़ रही है। कन्याओं को वह घर छोड़ना

ही होता है। दूसरा घर कहें या अपना घर कहें, उसको उस घर जाना ही होता है। दहेज में अन्य-अन्य वस्तुएं दी जाती हैं। संस्कारित माता-पिता अपनी बेटी को विदा करते हुए रोते नहीं हैं, अपितु अपनी संतान को, अपनी बेटी को अच्छी शिक्षा से संस्कारित करते हैं। पाथेय देते हैं।

कोई आदमी मृत्युशय्या पर हो तो उस समय क्या करना चाहिए? उसके पास बैठकर जोर-जोर से रोना चाहिए क्या कि हाय अब क्या होगा, कैसे होगा?

(एक व्यक्ति ने कहा- धर्म ध्यान सुनाना चाहिए)

धर्म ध्यान आए ही नहीं तो क्या सुनाएंगे। बेटे कहेंगे, पापा किससे लेना-देना बाकी रह गया, आप अपनी मौजूदगी में बता दें। कहेंगे कि हम चारों भाइयों का बँटवारा कर दें। न जाने क्या-क्या बातें करेंगे! उस समय जो बात याद रहेगी वही कही जाएगी।

उस समय धर्म की अच्छी-अच्छी बातें सुनाई जाती हैं। आत्मा-परमात्मा की बातें सुनाई जाती हैं। पर क्या उसने अपने जीवन में कभी आत्मा-परमात्मा की बातें नहीं सुनी? क्या उसने कभी धर्म-ध्यान की बातें नहीं सुनी? उसने पहले ये बातें सुनीं, किंतु जाते हुए उसको विशेष पाथेय दिया जाता है।

भगवान महावीर मोक्ष में पधारने की तैयारी में थे। उस समय उन्होंने अपने शिष्यों को आपुट्ठ वागरणा दी। सुखविपाक व दुखविपाक के 55-55 अध्ययन सुनाए। उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्ययन सुनाए। उन्होंने तत्त्वों को बताया और निर्वाण को प्राप्त हुए। उन्होंने अपने रहते हुए गणधरों को सारा ज्ञान दिया, किंतु जाते-जाते फिर खास-खास बातें बताईं। वैसे ही सेठ (सुनंदा के पिता) सुनंदा को शिक्षा दे रहे हैं।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
कर्तव्य पथ पर तू डट रहना, कोई च्युत यदि हो तो कहना,
नीति पथ श्रेयकार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
पति विमुख गर तुमसे होवे, फिर भी तेरा मन ना रोवे।
हो कर्मोदय ज्ञान, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

कल मैंने बताया था कि पिता ने सुनंदा से कहा कि बेटी! अब ससुराल ही तुम्हारा घर है, वहीं पर तुम्हें जीवन बसर करना है। सबके साथ

हिल-मिलकर रहना। सबसे हिल-मिलकर रहने का मतलब है सबके साथ समन्वय बनाकर रहना। रहते तो सभी हैं पर एक रहना परम सुखदायी होता है और एक झिक-झिक करते हुए रहना होता है। दोनों में फर्क है। एक को लोग स्वर्ग कहेंगे और एक को नरक। एक को लोग अंधेरी रात कहेंगे और एक को उजली रात।

सेठ आगे शिक्षा दे रहे हैं कि कर्तव्य भाव पर तू डटी रहना। नैतिकता को कभी भुलाना मत। नैतिकता तुम्हारे जीवन का अंग बना रहना चाहिए। नैतिकता अर्थात् बहुत-से लोगों के लिए, सभी लोगों के लिए, घर के लोगों के लिए जो नीतियाँ निर्धारित की जाती हैं, उन नीतियों पर चलना। यदि कभी सास विमुख हो जाए तो उनको मनाने की कोशिश करना। तुम्हारा पति भी विमुख हो जाए तो रोना मत, अपने कर्म का उदय समझना। अंजना को याद करना। 22 वर्षों तक (कहीं-कहीं 12 वर्ष) पवन जी उनसे बोले नहीं, तो भी अंजना ने धैर्य धारण किया। अत: तुम भी कभी रोना मत, तनाव में आना मत, दुष्चिंता में नहीं जाना। यह चिंता मत करना कि मेरा भविष्य क्या होगा। ऐसी चिंता न करके अपने कर्तव्य पथ पर डटे रहना।

जिसको भविष्य की चिंता नहीं सताती वह संतुष्ट होता है। वह किसी से भयभीत नहीं होता।

'जो करना सो अच्छा करना, फिर दुनिया में किससे डरना'

मैं जो कर रहा हूँ अच्छा कर रहा हूँ, मैं उसको अच्छा मानकर कर रहा हूँ। मैं जो कर रहा हूँ, आत्मविश्वास के साथ यह मानकर चल रहा हूँ कि मैं अच्छा कर रहा हूँ। आत्मविश्वास नहीं हो तो छद्म कार्य भी अच्छा लगेगा। जिसमें स्वार्थ की पूर्ति हो रही हो वह भी अच्छा लगेगा। पर वह सही नहीं है। भीतर से जिस कार्य के लिए सपोर्ट मिले, जिस कार्य को आत्मा कहे कि सही है, उसको करने में कभी पीछे नहीं रहना। ऐसा करने में कोई विमुख भी हो जाए तो कभी घबराना नहीं। उस समय यह समझ लेना कि कर्मों का योग है। समझ लेना कि कर्म योग के कारण ऐसा हो रहा है। नैतिकता की डगर सदा सुहावनी होती है, यह मानकर चलना है।

घर के यदि सभी रूठ जाएं, तेरी दृष्टि न दोष बतावे,
अपना ही है दोष, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

चारित्र भाग ज्यादा लम्बा नहीं चल पाता, पर खाली कहानी सुना देना महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात है कि उसके तथ्य को स्पष्ट करना।

कहानी किसलिए सुनना?

इसलिए सुनना कि वह जीवन का दर्पण बन सके। जीवन के लिए गाइड बन सके। कहानी के पात्र के जीवन के आधार पर अपने जीवन को सही दिशा में ढाल सकूं। इसलिए बीच में आने वाली बातों को थोड़ा खोलकर कहना जरूरी होता है। अभी आप सुनना बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है।

सुनंदा के पिता ने कहा कि यदि परिवार के सारे लोग भी रूठ जाएं तो भी तुम्हारे मन में, तुम्हारी दृष्टि में उनके दोष नजर नहीं आने चाहिए।

ऐसा होना आसान है क्या? आसान है या कठिन?

(श्रोतागण बोले– कठिन है)

(एक श्रोता ने कहा– असंभव नहीं है)

बस यही बात बहुतों को समझ में आनी चाहिए। कठिन को आसान बनाया जा सकता है और आसान को कठिन बनाया जा सकता है। असंभव को संभव नहीं किया जा सकता। असंभव मान लेने का मतलब है कि अब मेरे वश की बात नहीं है। वश की बात मानना कठिन है, किंतु कठिन कार्य भी आदमी सम्पन्न करते हैं और मैं भी मनुष्य हूँ। मैं भी मनुष्य हूँ तो पीछे क्यों हटूं।

हालांकि बहुतायत लोगों की दृष्टि विपरीत हो जाती है। लोगों को अपने दोष नजर नहीं आते। दूसरों के दोषों को ढूँढते हैं। कहते हैं कि उसने मेरे साथ ऐसा कर दिया, उसने मुझे ऐसा कह दिया, उसने मेरे साथ अच्छा नहीं किया। मैंने उसके लिए इतना काम किया। मैं हर वक्त उसके लिए तैयार रहा, किंतु उसने मेरे साथ धोखा किया। मैंने हर जगह उसका सहयोग किया, उसकी मदद की। मैंने उसका इतना सपोर्ट किया, सहयोग किया, किंतु उसके बाद भी मुझसे नाराज हो रहा है।

ऐसा कुछ भी नहीं सोचें। सोचें कि सारे लोग गुणों के भण्डार हैं। सारे गुणीजन हैं, दोष हमारे ही हैं। सोचें कि पूर्व भव के किए हुए कर्म उदय में आए हैं जिस कारण से लोग हमसे विमुख हो रहे हैं।

सेठ, सुनंदा को शिक्षा दे रहे हैं कि अंजना को अपने सामने रखना। अंजना ने 22 वर्षों तक अपने पति का मुँह नहीं देखा। पवन जी ने मुँह नहीं

दिखाया। 22 वर्षों तक पवन जी अंजना से बोले नहीं। आप विचार करें कि 22 वर्षों तक अंजना ने आँख उठाकर नहीं देखा। वह कभी पति को देख भी नहीं सकी। कितना धैर्य था अंजना में।

अंजना ने किसी को दोष दिया क्या? सास-ससुर से कभी शिकायत की क्या? माता-पिता से कभी शिकायत की क्या?

नहीं की। माता-पिता से शिकायत नहीं की कि कहाँ मेरी शादी करवा दी! अंजना ने कभी ऐसी शिकायत नहीं की। वह मान रही थी कि मेरे कर्मयोग ऐसे ही हैं। माता-पिता ने अच्छा सोचकर अच्छा परिवार देखा। सब काम ठीक किया। ये तो मेरे कर्मों के दोष हैं।

सेठ ने सुनंदा से कहा कि सारा परिवार तुमसे रूठ जाए, तुम्हारे विपरीत हो जाए, तुमसे बुरा बरताव भी करे तो भी तू उनमें कोई दोष मत देखना।

पर सामान्यतया यह होता है कि जो थोड़ा-सा विमुख हो जाता है, विपरीत हो जाता है, उसमें दोष ही दोष नजर आते हैं। उसमें कमी ही नजर आती है। इतनी कमी नजर आती है कि उस पर पूरा रामायण लिख सकते हैं। जब तक वह रूठा रहेगा, हमारा मन नकारात्मक विचारों में चलता रहेगा। वह राजी हो गया तो शायद सब भूल जाए। लिखे हुए सारे पन्ने नीचे दबा देंगे। उसके प्रति अब तक के विचारों को पलट देंगे। फिर वह आदमी अच्छा लगने लगेगा। प्रिय लगने लगेगा।

खैर, सेठ, सुनंदा से कहता है, बेटी! कभी किसी का दोष मत देखना। अपने मुँह से कभी यह नहीं कहना कि इनमें यह दोष है, उनमें यह दोष है। यह निष्ठुर है। दोष तुम्हारे कर्मों का है जिस कारण से लोग तुम्हारे विपरीत बने। सेठ ने कहा कि अपने कर्मों को ठीक करने का विचार करना। अपने कर्मों को सही बनाने का लक्ष्य बनाना। यह विचार करना कि पहले मैंने ऐसे दोष किए होंगे, जिसके कारण आज परिवार के लोग मुझसे विपरीत हुए हैं। आगे उनके साथ ऐसा व्यवहार रखूं कि कोई मुझसे विपरीत नहीं हो। सेठ ने कहा कि ऐसी दृष्टि तू रखोगी तो दुखी नहीं होओगी, नहीं तो आदमी सभी का दुख अपने माथे पर ले लेता है और इतना बोझिल हो जाता है, इतना दुखी हो जाता है कि उसको कोई समाधान ही नहीं मिलता। अंततोगत्वा विस्फोट हो जाता है।

बंधुओ! एक छोटी-सी बात स्वीकार करें कि सारे लोग मुझसे रूठ जाएं, किंतु मैं उनमें दुर्गुण देखने का प्रयत्न नहीं करूंगा। दोष देखने का प्रयत्न नहीं करूंगा। इस एक बात को यदि आपने स्वीकार कर लिया, इस बात को गाँठ बाँध लिया तो सुखी जीवन जी सकते हैं। सुख से जी सकते हैं।

जो हमसे विपरीत हैं उनके प्रति भी करुणा रहे, वात्सल्य रहे। उनके लिए भी नैनों से अमृत टपकता रहे। ऐसा होगा तो उसका आनंद अलग ही आएगा। हमसे जो भी अलग हुआ है, रूठा है उसके साथ हम प्रेम का भाव रखेंगे, वात्सल्य का भाव रखेंगे तो वे सोचने को बाध्य होंगे कि यह मनुष्य है या देवता। भगवान है या इनसान। इनसान ही भगवान बनता है। यदि इनसान की पहचान नहीं होगी तो भगवान की पहचान भी नहीं होगी।

'जो ना जाने इनसान को, वह क्या जाने भगवान को'

जो इनसान को नहीं जान सकता, जो इनसान की पहचान नहीं कर सकता, उसके लिए भगवान की पहचान करना बहुत कठिन है। भगवान की पहचान से पहले इनसान की पहचान करनी होगी। अपनी दृष्टि में पूरी दुनिया में इनसानियत है, आपकी दृष्टि में सारे लोग इनसान हैं, कोई भी हैवान नहीं है, शैतान नहीं है तो भगवान आपकी दृष्टि से ओझल नहीं हैं। फिर अगले कदम पर आपको भगवान दिखने वाले होंगे।

भगवान कब दिखेंगे?

जब हर इनसान में इनसानियत नजर आएगी तब भगवान दिखेंगे। हमें किसी में शैतानियत नजर नहीं आए तो भगवान का बोध होने में देर नहीं लगेगी। फिर भगवान का ज्ञान होने में देर नहीं लगेगी।

'श्रद्धा से निज को पहचाना, सत्य धर्म को तब ही जाना'

जब यह जान लेंगे कि जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही आत्मा दुनिया के समग्र प्राणियों की है तो हर समस्या का समाधान मिलेगा। जब किसी को पराया नहीं समझेंगे तो समस्या का समाधान मिलेगा। हम बोलते आए हैं कि कौन है मेरा? मैं बोलता हूँ कि कौन नहीं है मेरा? सभी अपने हैं। जिस दिन 'वसुधैव कुटुंबकम्' की दृष्टि हो जाएगी, उस दिन समस्या का समाधान मिलेगा। उस दिन समस्याएं रहेंगी ही नहीं। दुनिया के सामने समस्याएं आती रहेंगी, किंतु मेरे सामने कभी समस्या नहीं रहेगी। समस्या कभी मेरे नजदीक

नहीं आएगी। मैं सदा समाधान में जीऊंगा। ऐसा अपने जीवन का लक्ष्य बनाएं और अपने आपको धन्य बनाएं।

महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. की आज 23 की तपस्या व महासती श्री जयति श्री जी म.सा. की आज 26 कितनी तपस्या है। भाई-बहनों में भी तपस्याएं चल रही हैं। भावना जी वया के आज मासखमण है। भावना जी वया आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रही हैं। अब आगे वह क्या करेंगी, कितनी तपस्या करेंगी यह समय पर ज्ञात होगा। हमारे श्री दिनेश मुनि जी म.सा. इनके संसार पक्षीय देवर हैं। ये उनकी भाभी जी लगती हैं।

खैर, रिश्ता अलग बात है, किंतु इन्होंने हिम्मत की। हिम्मत की कीमत होती है। हम भी अपने आपको प्रेरित करें। श्रद्धा से अपनी आत्मा की पहचान करें। सत्य धर्म की पहचान करें। वह दिन धन्य होगा जिस दिन सत्य धर्म की पहचान करेंगे। जिस दिन उस धर्म पर आरूढ़ होंगे। लक्ष्य यही होना चाहिए। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

22 जुलाई, 2023

4

ज्ञान गंग निर्मल मन बहती

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।
'ज्ञान गंग निर्मल मन बहती, बहती मन को चंगा रखती'

मन निर्मल होगा, पवित्र होगा, पावन होगा तो उसमें ज्ञान की गंगा का प्रवाह होगा। सामान्यत: गंगा को पवित्र माना गया है, किंतु ज्ञान गंगा की पवित्रता का तो कहना ही क्या! मन के दूषणों से या मन के दूषित हो जाने से ज्ञान गंगा दूषित न हो जाए, इसलिए सदा मन को पवित्र बनाए रखना बहुत जरूरी है। पुण्यानुबंधी पुण्य का योग होता है तो मन पवित्र बना रहता है। उसमें काम वासना, विषय वासना न तो जन्मती है, न ही रह पाती है। उसमें निष्काम भाव प्रधान होता है और निष्काम भाव से मन पवित्र रहता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना निष्काम भाव से होती है। जहाँ कामना प्रवेश कर जाती है, वहाँ घालमेल हो जाता है, मिलावट हो जाती है। मूल स्वभाव गायब हो जाता है। पवित्रता का हनन होने लगता है।

'ज्ञान गंग निर्मल मन बहती'

जिसका मन निर्मल होता है, जिसका मन पावन होता है, जिसका मन पवित्र होता है उसमें ज्ञान गंगा का प्रवाह बना रहता है। लोग सोचते हैं कि हमको ज्ञान चढ़ता नहीं है, याद रहता नहीं है। वे अपने मन को पवित्र बना लें तो याद भी होने लगेगा और ज्ञान भी बढ़ने लगेगा। ज्ञान को गंगा की उपमा दी गई है। एक जगह जमा हुआ ज्ञान भी सम्यक् नहीं रह पाएगा।

आर्य सुधर्मा स्वामी ने भगवान महावीर से ज्ञान प्राप्त किया। सुधर्मा

स्वामी ने जम्बू स्वामी के निवेदन करने पर जम्बू स्वामी को ज्ञान दिया। जम्बू स्वामी ने प्रभव स्वामी को ज्ञान दिया। प्रभव स्वामी ने शय्यंभव स्वामी को ज्ञान दिया। इस प्रकार से ज्ञान की गंगा प्रवहमान बनी रही।

इस नीति का भाव स्पष्ट है कि ज्ञान को आगे-से-आगे बढ़ाते रहना। जो ज्ञान हमने पाया है, वह दूसरों को देते रहना। आगे-से-आगे वितरित करने रहना। ज्ञान को जितना प्रवाही बनाएंगे, उतना ही जन-जन के कलुषित मन को पवित्र बनाने का काम करेंगे। ज्ञान किसी को देना नहीं चाहेंगे, सोचेंगे कि मेरे पास ही रहे तो वह तालाब या कुएं के रूप में रह जाएगा। वह ज्ञान गंगा का रूप नहीं ले पाएगा।

'बहता पानी निर्मला'

जैसे पानी बहता हुआ निर्मल रहता है, वैसे ही ज्ञान की गंगा भी बहती हुई निर्मल रहती है। ज्ञान से मन को पवित्र बनाया जाना चाहिए और पवित्र मन में ज्ञान का झरना निरंतर बहते रहना चाहिए। जिस व्यक्ति के पास जो वस्तु होती है, उसी पर उसका ध्यान होता है। जिसके मन में यदि ज्ञान होगा उसे निरंतर ज्ञान के अध्यवसाय चलते रहेंगे। कोई भी छोटी-मोटी बात होगी, वह ज्ञान चेतना को जगाने वाली होगी।

समुदाय में रहने पर जीवन में उतार-चढ़ाव नहीं आए, यह कम संभव है, असंभव है किंतु उतार-चढ़ाव में अपने मन को शमित रखना, उपशांत रखना ज्ञान का प्रभाव है। ज्ञान के प्रताप से ही अपने मन को शांत रख सकते हैं, समाधि में रख सकते हैं। शांत मन समाधि देने वाला होता है। अशांत मन से बहुत सारी समस्याएं खड़ी होती रहती हैं। समस्याओं का समाधान शांत मन से स्वत: ही हो जाता है। अशांत मन स्वयं में एक समस्या है और जहाँ एक समस्या खड़ी होती है, वहाँ ढेरों समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। निर्मल मन में ज्ञान गंगा बहती रहती है। ज्ञान गंगा मन को सदा चंगा बनाए रखती है, निर्मल बनाए रखती है। ज्ञान की धारा प्रवाहित होती रहेगी तो मन विषमता में नहीं जाएगा। मन में समता बनी रहेगी, शांति बनी रहेगी, मन समाहित रहेगा।

आज मासखमण का घर है। मासखमण के घर का मतलब है कि आज से चालू की गई तपस्या संवत्सरी तक मासखमण कराने वाली हो जाएगी। मैं कितनी तपस्या कर पाऊंगा, कितनी नहीं, यह बात दिमाग से

हटाकर उपवास से चालू करें। अच्छा लगे तो बेला कर लें। अच्छा लगे तो तेला कर लें और ज्यादा अच्छा लगे तो आगे बढ़ते रहें। जिस दिन लगे कि शरीर साथ नहीं दे रहा है, मन साथ नहीं दे रहा है तो पारणा करने में भी कोई एतराज नहीं है, क्योंकि मन, वचन और काया की समाधि रहने तक ही तपस्या करना ठीक रहता है। कहा गया है–

'सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं'

अर्थात् सर्व प्रकार से समाधि भाव का आगार तपस्या में भी रहता है। मन को समाधि में लाने के लिए तपस्या की जाती है। तपस्या से यदि मन अशांत हो जाता है तो मन में असमाधि आ जाती है। ऐसी तपस्या लाभदायी नहीं होती।

ध्यान में लेना सबसे प्राथमिक सूत्र है कि मन समाधि में बना रहे, मन असमाधि में नहीं जाए। मन को समाधि में लाने के लिए तपस्या की जाती है, न कि मन की समाधि खोने के लिए। जहाँ से भी मन की समाधि टूटती हो, वहाँ से डायवर्ट हो जाना चाहिए। यदि मन और तन की समाधि बनी हुई है तो मासखमण में भी कोई एतराज नहीं है। आज मासखमण का घर है। यदि आज से तपस्या चालू हो तो संवत्सरी तक मासखमण हो जाएगा।

संवत्सरी महापर्व की आराधना कब होगी?

(श्रोतागण बोले– 21 अगस्त को हो जाएगी)

इस वर्ष दो श्रावण होने से भिन्नताएं सामने आ रही हैं। किसी ने कहा कि वॉट्सएप पर कई चर्चाएं चल रही हैं। दो-तीन दिन पहले किसी ने उपाध्याय-प्रवर को पत्र दिया, उन्होंने वह पत्र मुझे दिया।

वॉट्सएप पर कुछ भी चले, उससे हमारा संबंध नहीं है। यदि कोई हमें वॉट्सएप पर संदेश दे रहे हैं तो उनको ज्ञान होना चाहिए कि वॉट्सएप हम चलाते नहीं। हमें नहीं पता कि क्या संदेश दिया जा रहा है, क्या कहा जा रहा है! एक पत्रावली हमको मिली। उसमें लिखा था कि साधुमार्गी संघ ने भी भादवा महीने में संवत्सरी पर्व मनाने का समर्थन किया है।

हमने किसी को कोई समर्थन नहीं किया। हमारी बात पहले भी स्पष्ट थी और आज भी स्पष्ट है। हमें सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने राजमार्ग बना रखा है। आज

से लगभग 50 वर्ष पहले उन्होंने घोषणा की थी कि 'सारा जैन समाज एक होता है तो मैं तैयार हूँ। सारा जैन समाज यदि तैयार नहीं होता हो, केवल सारा श्वेताम्बर जैन समाज एक संवत्सरी मनाता है तो भी मैं उसमें तैयार हूँ। यदि श्वेताम्बर जैन समाज भी तैयार नहीं होता हो और केवल सारा स्थानकवासी समाज तैयार होता है तो मैं उसमें भी तैयार हूँ। मेरा आग्रह न श्रावण के लिए है, न भाद्रपद के लिए, न आसोज के लिए, न ही चतुर्थी व पंचमी के लिए। कोई भी महीना व कोई भी तिथि हो, उक्त स्थिति में मैं उसके लिए तैयार हूँ।'

आज भी हम उसी रास्ते पर हैं। कल भी तैयार थे, आज भी तैयार हैं और आगे भी तैयार रहेंगे।

पूज्य श्री सरदार मुनि जी (गुजरात बरवाला सम्प्रदाय) और दरियापुरी संप्रदाय के पूज्य श्री वीरेंद्र मुनि जी के पत्र आए थे। उनको निवेदन करवाया था कि यदि स्थानकवासी संप्रदाय की संवत्सरी एक दिन होती है तो हम उसमें तैयार हैं, किंतु यदि एक भी संप्रदाय वंचित रहता है तो सारे स्थानकवासी की एकरूपता नहीं बनती है। वैसी स्थिति में जो हमारी धारणा है, जो हमारी मान्यता है, उस पर हम अडिग हैं।

हमारी जानकारी के अनुसार पूरा स्थानकवासी जैन समाज एक दिन संवत्सरी की आराधना नहीं कर रहा है। बहुमत की, अल्पमत की बात अलग होती है। यहाँ कोई चुनाव नहीं है कि बहुमत-अल्पमत पर विचार करें।

पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म.सा. जलगाँव चातुर्मास संपन्न कर रहे थे। उस समय 'भारत जैन महामंडल' का एक शिष्टमण्डल गुरुदेव के पास आया। उसने संवत्सरी के विषय पर चर्चा की और कहा कि 55 प्रतिशत लोग हमारे साथ हो गए हैं। हम घोषणा कर रहे हैं कि भाद्रपद सुदी पंचमी को संवत्सरी मनाई जाएगी। वह महामंडल अभी तो प्राय: सोया हुआ है। उस समय भी सोया हुआ ही था। कभी-कभी फंक्शन के समय जाग जाता।

गुरुदेव ने उस शिष्टमण्डल से कहा, आपने इतना प्रयत्न किया, इतना बहुमत हो गया तो थोड़ा और साधो। जल्दी मत करो। बहुमत-अल्पमत राजनैतिक क्षेत्र में भी समस्या बना हुआ है। इसलिए अल्पमत और बहुमत को महत्त्व नहीं देते हुए थोड़ा और प्रयत्न करना चाहिए। वे जल्दबाजी में थे। 1986 या 1987 में वे कोई कार्यक्रम करवाने जा रहे थे। राष्ट्रपति ज्ञानी जैल

सिंह उस कार्यक्रम में आने वाले थे। राष्ट्रपति के मुँह से घोषणा करवानी थी। उन्होंने उनके मुँह से घोषणा करवाई।

कितने वर्षों तक वह घोषणा चली? ऐसी घोषणा कितने सालों तक काम आएगी?

लोग कहने लगे कि हम तो वही करेंगे जो 'भारत जैन महामंडल' ने तय किया है, मैंने मन में सोचा- जैन समाज किसी संस्था के आधार पर नहीं चलता। जैन समाज धर्मगुरुओं के उपदेशों से चलता है। धर्मगुरु जब तक उस बात को स्वीकार नहीं करेंगे, तब तक वह बात संभव नहीं हो पाएगी। तब तक एकता संभव नहीं है और वही हुआ। भारत जैन महामण्डल ने घोषणा की, किंतु वह घोषणा धरी की धरी रह गई।

साधुमार्गी संघ प्राय: श्रमणसंघ के साथ संवत्सरी पर्व मनाता रहा था। श्रमणसंघ भी दो श्रावण होने पर दूसरे श्रावण को संवत्सरी पर्व मनाता रहा था। दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपद में संवत्सरी पर्व मनाता था। अर्थात् चातुर्मास चालू होने के बाद एक महीना, 20 रात्रि पर संवत्सरी पर्व की आराधना का लक्ष्य रहता था।

1987 में श्रमणसंघ का पूना में अधिवेशन हुआ। तब उन्होंने अपनी एक नई परंपरा स्थापित कर ली। उन्होंने न किसी को साथ लेने का सोचा और न किसी से पूछा। दो श्रावण होंगे तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद होंगे तो पहले भाद्रपद में संवत्सरी पर्व मनाने की नई परंपरा स्थापित की। उनके सामने अपनी समस्याएं रही होंगी, क्योंकि श्रमणसंघ में 50वें दिन संवत्सरी पर्व की मान्यता वाले साधु-संत भी हैं और दो भाद्रपद होने पर दूसरे भाद्रपद में संवत्सरी पर्व मनाने वाले भी। इसलिए समीकरण बनाकर एक फैसला कर लिया होगा। उसके बाद कहीं हम साथ में रहे, कहीं नहीं रहे। वही स्थिति वर्तमान में बनी हुई है।

वर्तमान में जब पूरा स्थानकवासी समाज भी एक साथ संवत्सरी पर्व मनाने को तैयार नहीं तो पूरे जैन समाज की तो बात ही क्या की जाए! ऐसी स्थिति में हम अपनी मान्यता, अपनी मर्यादा पर कायम हैं, दृढ़ हैं। न केवल हम, बल्कि और भी कई संप्रदाय के लोग इसी रूप में संवत्सरी पर्व की आराधना करने का सोच रहे हैं। अपना अभिमत हमने अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के अध्यक्ष श्री गौतम जी रांका को बता दिया था।

यदि पूरा जैन समाज अथवा श्वेताम्बर जैन समाज या स्थानकवासी जैन समाज एक होता तो आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. का सपना साकार होता और हम उसके लिए तैयार थे व हैं। हम कल भी तैयार थे, आज भी तैयार हैं और कल भी तैयार रहेंगे। किंतु जब तक एकता नहीं हो, तब तक अपने स्थान पर मौजूद हैं। कभी कुछ बदले, कभी कुछ बदले, इससे बढ़िया है कि हम अपने स्थान पर मौजूद रहें।

उसी भावना से हम अपनी मान्यतानुसार चातुर्मास के 1 माह 20 रात्रि पर महापर्व संवत्सरी मना रहे हैं। हमने किसी को समर्थन दिया ही नहीं तो लेने की बात का प्रश्न ही कहाँ रह जाता है। हमारी अपनी विचारधारा, हमारे पूर्वजों की देन और हमारी धारणा को बिना किसी ठोस आलंबन के छोड़ना हमारे मन को नहीं भाया। हाँ! यदि पूरे स्थानकवासी समुदाय की संवत्सरी एक होती तो हम भी उसमें सहमत हो जाते, किंतु वैसा नहीं होने से अपनी मान्यता को कायम रखना उचित लगा। तदनुसार आज मासखमण का घर है।

यदि हिम्मत करते हैं, मन कमजोर नहीं बनाते हैं तो आज से चालू की गई तपस्या संवत्सरी के दिन मासखमण के रूप में पूर्ण हो जाएगी। अपना मन कमजोर करने की बात नहीं है।

नीमच संघ ने कल बताया कि आज का दिन हम उपवास दिवस के रूप में मनाना चाहते हैं। किंतु इतना अवश्य है कि आज के दिन मासखमण की भावना से उपवास करते हैं और मासखमण नहीं भी कर पाए तो भावना का लाभ मिलेगा।

भावना का लाभ मिलेगा या नहीं मिलेगा?

(श्रोतागण बोले- भावना का लाभ मिलेगा)

जोर से बोलो किस-किसकी भावना बन रही है?

मैंने इस बात को बहुत स्पष्ट कर दिया है। आगे तपस्या नहीं हो पाए तो पारणा कर सकते हैं, किंतु आज क्या करना है?

(श्रोतागण बोले- आज उपवास करना है)

किस रूप में करना है?

(श्रोतागण बोले- मासखमण की भावना के रूप में करना है)

और यह पवित्र मन रहेगा तो-

'जाए सद्धाए निक्खंतो तमेव अणुपालिया'

अर्थात् जिस उत्साह से, जिस उमंग से तपस्या चालू करें, उसी उत्साह से तपस्या संपन्न करने का लक्ष्य रखें। यह भगवान महावीर का सूत्र है। किसी भी कार्य के प्रारंभ में जैसा उत्साह रहता है, वैसा ही उत्साह आगे भी बना रहना चाहिए। वैसा ही उत्साह बना रहेगा तो कार्य संपन्न होने में कहीं से रुकावट नहीं आएगी।

'ज्ञान गंग निर्मल मन बहती, बहती मन को चंगा रखती'

हमारा मन पवित्र रहेगा, निर्मल होगा तो उसमें ज्ञान की गंगा निरंतर प्रवाहित होगी। हम ज्ञान गंगा को अपने मन में बहाते हुए पवित्र करें।

हम सुनंदा की चर्चा पिछले दिनों से कर रहे हैं।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
बहसबाजी ना उनसे करना, जो भी कह दे उसको सहना,
सहने में है सार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
सहना सहना सहते रहना, कभी न मुख से कुछ भी कहना,
होगी निश्चित जीत, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा के पिता ने उसको शिक्षा दी। कहा– बेटी! तू पराए घर में जा रही है या यूं समझ कि अब तुम्हारा घर वही है। वहाँ पर तुम इस प्रकार से रहना कि सास, ननद, देवर, पति कोई बात कह दें तो उनसे बहसबाजी मत करना।

क्या नहीं करना?

(श्रोतागण बोले– बहसबाजी नहीं करना)

घर में जितनी बहस होगी, घर उतना ही कोर्ट बनता चला जाएगा। बहस का काम कोर्ट के हवाले कर दो। घर बहस से नहीं चलता। कानून और कायदों से नहीं चलता। घर चलता है वात्सल्य के प्रभाव से। प्रेम से चलता है। वात्सल्य का भाव प्रखर रहेगा तो परिवार में, घर में अमन–चैन रहेगा। हर कोई कानूनी बातें रखने लगेगा और बहस करता रहेगा तो परिवार की शांति क्षीण होगी। समाधि लुप्त होगी। वहाँ पर कलह का साम्राज्य व्याप्त हो जाएगा।

ऐसा न हो, इसलिए सुनंदा के पिता उसे सीख देते हैं कि बेटी कभी भी ससुराल वालों से बहस नहीं करना।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने हमें शिक्षा दी थी– अपनों

से विवाद नहीं। जिनको हम अपना मानते हैं उनके साथ विवाद नहीं करना। संवाद निश्चित रूप से करना चाहिए।

संवाद से तत्त्व ज्ञान की वृद्धि होती है, किंतु जहाँ वाद खत्म हो जाता है वहाँ विवाद चालू हो जाता है। जहाँ वाद खत्म हो जाता है वहाँ तत्त्व ज्ञान की आकांक्षा कम पड़ जाती है। वहाँ अपने आपको विजित करने का भाव गहराता जाता है। अपना इगो सक्रिय होता जाता है। उसमें व्यक्ति चाहता है कि मैंने जो कहा वह होना चाहिए। मैंने जो कहा वह रहना चाहिए। वहाँ विशेष रूप से अपनी बात की पकड़ होती है। इसलिए अपनों से विवाद नहीं। जिनको अपना मानते हैं उनके साथ विवाद नहीं करें। बहसबाजी नहीं करें। वे जो कहें उसे सुनें। यदि मन के प्रतिकूल है तो भी सहन करना सीखें। हर बात का जवाब नहीं होता कुछ का जवाब मौन भी होता है, इसे भूले नहीं। अत: हर बात का जवाब नहीं देना।

जो हर बात का जवाब देने के लिए तैयार रहता है उसकी समाधि भंग होने की स्थिति होती है इसलिए सुनें और शांत भाव से सुनें। सुनते हुए, मन को उग्र नहीं बनाएं। सुनने के बाद समाधान देने वाली कोई बात हो तो शांति से समाधान दिया जा सकता है। यदि क्लेश होने की संभावना हो तो वहाँ चुप रहना ही अच्छा है। उसी में समाधि है। जिस घर में लोग चुप रहेंगे, उस घर में समाधि बनी रहेगी।

सहना-सहना, सहते रहना,
कब तक सहना, कब तक सहना,
जब तक जीवन, तब तक सहना।

सहने की कोई सीमा नहीं है। समुद्र कभी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता। वैसे ही सहनशील व्यक्ति कभी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता है। कोई कितना भी कह दे उसकी सहनशीलता जवाब नहीं देगी। जो सहन करना सीख जाता है वह महान बनता है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि वह महान बनेगा। निश्चित है कि एक दिन उसकी महानता जगजाहिर होगी। जो सुनने के लिए तैयार है उसका भविष्य उज्ज्वल है। यदि हम सुनने को तैयार नहीं हैं तो उन्नति में संदेह है। जो 'टिट फॉर टैट' यानी ईंट का जवाब पत्थर से देने के पक्ष में होता है, वह सुनने को तैयार नहीं होगा, वह ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए तैयार रहेगा,

उसका भविष्य संदिग्ध होगा। इसलिए सुनना और सहना महानता की जड़ है। महानता की निशानी है।

जो व्यक्ति सुन सकता है, वही महान बन सकता है। जो महानता के पथ पर गतिशील है, वही सहन कर सकता है। सहने का मतलब मन से दुखी होकर सहना नहीं है। सहने का मतलब है कि मन पर कोई असर नहीं हो। असर नहीं होने का अर्थ मूढ़ता नहीं है। सुनने के बाद मन दुखी नहीं हो, मन शांत बना रहे तो उसको सहना कहते हैं। ऐसी सहनशीलता होगी तो घर, परिवार और राष्ट्र में शांति का साम्राज्य झलकेगा। जहाँ सहन करने की क्षमता नहीं होगी, वहाँ कुछ-न-कुछ तकरार होती रहेगी। वहाँ छोटी-छोटी बातों को उभारा जाएगा। कहा जाएगा कि ऐसा नहीं हुआ, वैसा नहीं हुआ। उसने ऐसा नहीं किया, उसने वैसा नहीं किया। अत: बहस करने के कारण सुनें, सहें।

वर्तमान में लोकसभा और विधानसभाओं में हम क्या सुनते हैं? क्या देखते हैं? वहाँ क्या चल रहा है?

वहाँ हंगामा होता है। हंगामे से कभी समाधान नहीं हुआ, कभी होगा भी नहीं, किंतु हमारे राष्ट्र के नेताओं को पता नहीं, क्यों यह बात समझ में नहीं आती कि हंगामा करने से कितना समय, शक्ति व पैसा बर्बाद हो जाता है। ऐसे में वे क्या राष्ट्र की भलाई कर पाएंगे। क्या वे अपने देश का हित कर पाएंगे? मूल मुद्दों पर 'टू द प्वाइंट' बात होनी चाहिए और दृढ़ता से होनी चाहिए। राष्ट्रहित की बात पर विचार होना चाहिए न कि हंगामा।

हंगामा करने से क्या मिलेगा?

हंगामा किसी बात का समाधान नहीं है। हंगामा करने का मतलब हुआ कि मैं कमजोर हूँ। मेरे पास कोई दूसरा उपाय नहीं है तो हो-हल्ला करके बात को टाल दी जाए।

हंगामा कौन करता है?

जिसके पास ताकत नहीं होती वह हंगामा करता है। उसके पास शोरगुल की ताकत होती है। हो-हल्ले की ताकत होती है। बच्चे के पास ताकत नहीं होती है तो वह रोता है। रोना ही उसकी ताकत है। हंगामा करना कमजोर मानसिकता है। जिसके पास 'टू द प्वांइट' बात करने की क्षमता नहीं होगी, वह हंगामा करेगा। वह सोचेगा कि मैंने हंगामा करके सामने वाले की बात रोक दी।

बात रोकने से क्या रुकेगा?

हमने किसी की बात रोक दी होगी, किंतु यह देखो कि हमने देश के विकास में अवरोध तो खड़ा नहीं किया! हमारे हंगामे से यदि देश के विकास में अवरोध होता है तो हंगामा कभी लाभदायी नहीं होगा। जनता बेचारी भोली-भाली होती है। बहुत कम लोग मूल मुद्दों को जानते हैं व बहुत कम लोग बात की गहराई तक जाते हैं। बहुत-से लोग ऊपरा-ऊपरी देखते हैं।

हम विचार करें! लोकसभा-राज्यसभा प्रतिनिधि सभाएं हैं। उनकी अपनी जिम्मेदारी होती है। उन्हें अपनी जिम्मेदारी से मुकरना नहीं चाहिए, अपनी जिम्मेदारी का वहन करना चाहिए। सोचना चाहिए कि हमारा आचरण, हमारा व्यवहार पूरी जनता देख रही है। पूरा भारत व विश्व देख रहा है, हमारे हंगामे का उन पर क्या असर पड़ेगा! किंतु जनता हंगामों को भूल जाती है, बात आई-गई हो जाती है, लेकिन इससे राष्ट्र का विकास अवरुद्ध होता है। विकास अवरुद्ध होगा तो राष्ट्र को ज्यादा ऊँचाई पर नहीं देख पाएंगे। जैसी राष्ट्र की बात है, वैसी ही समाज की बात भी है। समाज के सदस्यों का लक्ष्य होना चाहिए कि समाज उन्नत हो, समाज ऊँचाइयों पर रहे।

समाज ऊँचाइयों पर कब रहेगा?

इसे एक घटना से जान सकते हैं। श्रीकृष्ण वासुदेव ने गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर उठा लिया। उसके बाद ग्वालों ने क्या किया? ग्वालों ने अपने पास के डंडे उस पर्वत के नीचे लगा दिए। वह पहाड़ ग्वालों के डंडों पर टिका हुआ नहीं था, किंतु यह प्रसंग प्रेरणा देता है कि हम एक साथ मिल-जुलकर रहें। पर हमारे यहाँ तो होता यह है कि किसी ने पहाड़ उठाया तो हम गिराने का प्रयत्न करेंगे। ऐसा नहीं होना चाहिए। हमारा लक्ष्य रहना चाहिए साथ रहने का।

ग्वालों का प्रेम था कि उन्होंने श्रीकृष्ण को देखकर डंडा खड़ा कर दिया, ताकि श्रीकृष्ण के अंगुलियों पर जोर न आए। भार न आए इसलिए उन्होंने डंडे खड़े किए। यह देखकर श्रीकृष्ण मुस्कुराने लगे। उनके मन में सात्विक भाव जगा कि देखो! इन सब भोले प्राणियों का मेरे प्रति कितना सद्भाव है, कितना अहोभाव है।

ऐसी सद्भावना जहाँ रहेगी, वहाँ हर समस्या का समाधान होगा।

ऐसी सद्भावना वाले परिवार, समाज या राष्ट्र का कभी पतन नहीं हो सकता। कभी अंत नहीं हो सकता।

'सौ सैणों का एक मत, एक मूर्ख के सौ मत'

इसका मतलब है कि हम दिखने में सौ जने जरूर हैं पर हमारा मत एक है। मत मतलब सबके विचार समान हैं और 'एक मूर्ख के सौ मत' यानी एक मूर्ख के अनेक विचार। एक विचार पर स्थिर नहीं रहना। विचार बदलते रहते हैं।

सौ सयाने एक मत होकर चलेंगे तो समाज, राष्ट्र के विकास को कोई रोक नहीं सकता।

चीन का एक दीवान वृद्ध हो गया। उसके घर में पाँच सौ सदस्य थे। एक रसोड़े में पाँच सौ लोगों का खाना बनता। सभी एक घर में रहते। पाँच सौ आदमियों का एक घर में रहना मुश्किल होता है। पाँच जने मियां-बीवी, बेटा-बेटी, सास या ससुर यदि एक घर में रहे तो कलह हो जाती है। बेटे को माँ नहीं सुहाती। बहू को सास नहीं सुहाती। सास को बहू नहीं सुहाती। पोते को दादा नहीं सुहाता। वहाँ रोज झमेले खड़े होते हैं। निर्वाण मुनि जी बहुत सारी बातें आपको बताते रहते हैं, किंतु वह अल्पमत की बात है।

शराब या मांस से हमारा जैन समाज आज भी बहुत बचा हुआ है। यह हमारे पूर्वजों की, हमारे धर्मगुरुओं की तपस्या है। यह हमारे सुंदर संस्कार हैं। मेरे खयाल से एक प्रतिशत से ज्यादा लोग बुराई की ओर नहीं गए होंगे। एक प्रतिशत के आधार से 99 प्रतिशत का निर्णय नहीं किया जा सकता।

एक चावल को देखकर यह पता चल सकता है कि सारे चावल पके हैं या नहीं, किंतु समाज में एक आदमी को बुरा देखकर पूरे समाज को बुरा नहीं कहा जा सकता। जैन समाज आज भी दूसरे समाजों से सुरक्षित ही नहीं बहुत सुरक्षित है। हमारे भीतर एक भी दोष नहीं होना चाहिए। मैं यह भी मानता हूँ कि एक भी आदमी क्यों बिगड़े। एक भी आदमी नहीं बिगड़ना चाहिए, किंतु यह संगति का प्रभाव है। माता-पिता का इतना प्रभाव नहीं है जितना संगति का प्रभाव है, क्योंकि माता-पिता हर वक्त साथ नहीं रहते। मित्र लोग ज्यादा साथ रहते हैं। जैसी संगत होती है, वैसी रंगत हो जाती है। कभी-कभी आदमी नहीं चाहता है, किंतु मित्र के दबाव से वैसा करना पड़ जाता है, कर लेता है।

भीम सिंह जी सुप्रीम कोर्ट के एडवोकेट रहे हैं। पहले भोपाल में रहते थे। वे स्कूल में पढ़ रहे थे। एक बार बच्चों ने सामूहिक भोजन किया। सभी बच्चे साथ बैठकर अपना-अपना टिफिन खोले। भीम सिंह जी के साथ वाले बच्चों के टिफिन से अण्डे निकले। बच्चे भीमसिंह जी को अण्डे खिलाने लगे। उन्होंने कहा, मैं अण्डे नहीं खाता। उनके साथ जबरदस्ती की जाने लगी। बच्चों ने उनका हाथ पकड़ लिया और अण्डा खिलाने के लिए जबरदस्ती करने लगे।

वे जैसे-तैसे हाथ छुड़ाकर मास्टर के पास गए। उन्होंने मास्टर से शिकायत की कि मेरे साथ इस प्रकार की जबरदस्ती कर रहे हैं। अध्यापक ने उनसे कहा कि इसमें क्या हो गया? अण्डे में प्रोटीन ज्यादा होता है, खा ले तो क्या होगा। वे घर गए और पिताजी से कहा। उनके पिताजी वकील थे। उनके पिताजी ने कार्यवाही की और कहा, ऐसे टीचर किस काम के, जो बच्चों को सही शिक्षा नहीं दें, सही संस्कार नहीं दें! सही संस्कार देने वाले टीचर होने चाहिए। भीमसिंह के घर के, परिवार के ऐसे संस्कार थे जो उन्हें वहाँ से भगा दिया। वे उन लोगों से सहमत नहीं हुए, किंतु सभी जगह ऐसा नहीं होता। कभी-कभी मित्रों के दबाव से कोई ऐसा कर ले तो पूरे समाज पर लांछन नहीं लगाया जा सकता।

यह क्या है? (एक नोटबुक का पेज दिखाते हुए)

(श्रोतागण बोले- कागज है)

कागज पर कुछ लिखा हुआ है या साफ है?

(श्रोतागण बोले- खाली है)

दूर तक बैठने वालों को नजर नहीं आया होगा, किंतु यह कागज साफ है, खाली कागज है। इस कागज पर कुछ नहीं लिखा हुआ है।

अब क्या नजर आ रहा है? (उसी कागज पर पेन से एक गोला बनाकर)

(श्रोतागण बोले- दाग नजर आ रहा है)

खाली दाग नजर आ रहा है या पूरा कागज?

(श्रोतागण बोले- पूरा कागज नजर आ रहा है)

पूरा कागज है, किंतु दिखता दाग है। हमारी चादर सफेद है, जैन समाज की चादर सफेद है। सफेद चादर पर एक दाग लगे तो वह जल्दी आँखों में आता है किंतु चादर दागों से भर जाएगी तो दाग नजर नहीं आएगा। यह पूरा

कागज यदि दागों से भर जाएगा तो एक दाग नजर नहीं आएगा। चादर पर पड़ा एक दाग नजर क्यों आता है? क्योंकि चादर पूरी साफ है। जिस दिन पूरी चादर दाग से भर जाएगी उस दिन दाग नजर नहीं आएंगे। साफ चादर पर एक दाग भी शीघ्र नजर आता है।

हम कह सकते हैं कि जैन समाज अछूता नहीं है, किंतु जैन समाज के लिए जितनी बातें कहें, कम होंगी। जैन समाज की सोच बहुत सभ्य है। जैन समाज के अनुष्ठानों में, कार्यक्रमों में कभी पुलिस को हस्तक्षेप नहीं करना पड़ता। नहीं तो छोटे-छोटे समाज के लिए पुलिस को खड़ा रहना पड़ता है। यह हमारे धर्म की देन है। हमारे पूर्वजों की देन है। पूर्वजों के कारण जैन समाज आज भी इतना सभ्य बना हुआ है, जिसकी अन्य से तुलना नहीं कर सकते। तीर्थंकर भगवंतों के उपदेशों के कारण जैन समाज इतना सभ्य बना हुआ है। हमें अपनी सभ्यता पर कायम रहना होगा। हमें अपनी सभ्यता पर, सात्विकता पर गर्व होना चाहिए कि हमारा समाज दूसरे समाज से बहुत अलग है। बहुत परे है।

इसका मतलब यह नहीं है कि हम घमंड करने लगें। बल्कि हमारा कार्य और बेहतरीन होना चाहिए। हमारा लक्ष्य रहना चाहिए कि हमारी चादर पर एक भी दाग न लगे। यदि दाग लग जाए तो उसे दूर करने का लक्ष्य बने। उस दाग को साफ करने का लक्ष्य बने।

मैं सुनंदा की बात कर रहा था। उसके पिता शिक्षा देते हुए कह रहे हैं कि-

जो भी रूठे तू न रूठना, उठने से पहले तू उठना,
करना घर का काम, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

अर्थात् पूरी दुनिया रूठ जाए, सारा परिवार रूठ जाए पर तुम्हारा मन कभी नहीं रूठना चाहिए। तुम्हारा मन सदा सात्विक रहना चाहिए। सदा तुम्हारे मन में प्रसन्नता रहनी चाहिए। सकारात्मक सोच रहनी चाहिए।

यह सोच न हो जाए कि मैं इतना काम करती हूँ और घरवाले मुझे ही सुना रहे हैं, मैं दिन-रात काम करती हूँ फिर भी मुझे सुनाते रहते हैं, मैं इतना काम करती हूँ फिर भी उनको दिखता नहीं, अब मैं काम नहीं करूंगी। ऐसे विचार न आएं।

सुनंदा ने अपने पिता से इस तरह की शिक्षा पाई है कि घरवाले कुछ

भी कहें, सबको सहते हुए अपने कर्तव्य पालन में लगे रहना। सुबह जल्दी उठना। जल्दी उठकर परिवार के, घर के सारे काम करना।

सुनंदा आगे क्या करती है, आगे पिता क्या शिक्षा देते हैं यह समय के साथ विचार करेंगे। इतना अवश्य है कि हम अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति को जितना कायम रखेंगे, जितना पावन रखेंगे, उतना ही पावन बनेंगे। हमें अपने संस्कारों की रक्षा करनी है। इसके लिए हमारा लक्ष्य रहे कि हम संस्कारित बनें। अपने आपको संस्कारित बनाएं। हम संस्कारित होंगे तो हमारा परिवार संस्कारित होगा। हम कहीं भी रहें, ऐसा लक्ष्य बनना चाहिए। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो धन्य बनेंगे।

तपस्या के दौर में महासती श्री जयति श्री जी की आज 27 की, महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. की 24 की तपस्या है। भावना जी वया कल मासखमण के रथ पर आरूढ़ हुईं। आज उनकी 31 की तपस्या है। और भी भाई-बहनों की तपस्या चल रही है। निरंतर मासखमण की ओर अग्रसर हो रहे हैं। आज उपवास करने वाले उनकी तपस्या में सहभागिता दर्शाते हुए, प्रेरणा लेते हुए, अपने मन में उच्च भावना रखते हुए मासखमण की प्रेरणा ले आगे बढ़ने का लक्ष्य बनाएं। इतना कहते हुए विराम।

23 जुलाई, 2023

5

धर्म से मन शिखर बढ़ेगा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

बात बहुत स्पष्ट है किंतु जितनी स्पष्ट है, उतनी ही कठिन है। धर्म का नाम सुहाना लगता है। धर्म के गीत मन को प्रमुदित करने वाले होते हैं पर जब धर्म जीना होता है तो कठिनाई खड़ी हो जाती है। क्योंकि हमने धर्म के माहात्म्य को समझा नहीं। धर्म के महत्त्व को जाना नहीं, इसलिए उस दिशा में हमारा प्रयत्न नहीं हो पाता। किंतु यह बात ध्यान में लेना, जब भी बुलंदियों पर होंगे, धर्म के आधार पर ही होंगे।

'श्रद्धा से मन सदा बढ़ेगा, श्रद्धा से मन शिखर चढ़ेगा'

धर्म श्रद्धा बड़ी महत्त्वपूर्ण है। श्रद्धा यानी निष्ठा होना, आस्था होना कि वही सत्य है। ऐसा विश्वास होने से मन सदा बढ़ेगा।

गुरुदेव फरमाया करते थे–

धर्म करता धन बढ़े, धन बढ़ते मन बढ़े,
मन बढ़ते मनसा बढ़े, बढ़त-बढ़त बढ़ जाय।
धर्म घटता धन घटे, धर्म घटते मन घटे,
मन घटते मनसा घटे, घटत-घटत घट जाय।।

क्या समझ रहे हो? कथ्य क्या है, तथ्य क्या है?

धर्म सकारात्मक सोच है। धर्म पॉजिटिव सोच है। सही रास्ता चयन करके उस पर चलते रहें... चलते रहें... जब तक सही रास्ते का निर्णय नहीं किया, तब तक समस्या थी। जब निर्णय हो गया, निश्चित हो गया तो अब

केवल उस पर चलना है। गति करना है। अब निर्णय पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है। निर्णय को बदलने की आवश्यकता नहीं है। जिसने ठान लिया कि मुझे मासखमण करना है, उसको इधर-उधर देखने की आवश्यकता नहीं है। उसे केवल पॉजिटिव सोचना है। जितनी पॉजिटिव सोच होगी, उतने ही आगे बढ़ेंगे।

मन कुंठित क्यों होता है?

भय के कारण से मन कुंठित होता है। भय से रोमकोष फूलते हैं और मांसपेशियाँ सिकुड़ती हैं। मांसपेशियों में तनाव आता है।

भय का कारण क्या है?

भय का कारण है, सदाचार के पालन का अभाव। यदि सदाचार का सम्यक् प्रकार से पालन होगा तो भय नहीं रहेगा। भय झूठ को सताता है। वह सत्य के सामने नहीं आता। लोग श्मशान के पास जाने से डरते हैं। यदि किसी को कह दिया जाए कि रात को बारह बजे तुम्हें श्मशान में जाना है तो उसका मन ऊहापोह में आ जाएगा। रात को बारह बजे! अकेले श्मशान जाने में असुविधा है या सुविधा?

(श्रोतागण बोले- असुविधा है)

क्यों, क्या कठिनाई है जाने में?

वहाँ पर लोग बसते हैं क्या? वहाँ पर आततायी लोग रहते हैं क्या? वह सुनसान जगह है। सुनसान जगह में क्या असुविधा है?

वहाँ बहुतों का दाह-संस्कार हुआ है। बहुत-सी लाशें जलाई गई हैं, इसलिए व्यक्ति के मन में भय रहता है कि शायद वहाँ उन लाशों का कोई अस्तित्व रह गया होगा। कब्रिस्तान में तो फिर भी वह अस्तित्व गया होगा क्योंकि कब्रिस्तान में लाशों को दफनाया जाता है। वहाँ शरीर रह जाता है, किंतु जहाँ शरीर जला दिया वहाँ तो कुछ बचा भी नहीं, फिर भी श्मशान में जाने से लोग घबराते हैं।

श्मशान में भय क्यों लगता है?

क्योंकि वहाँ वातावरण नकारात्मक होता है। नेगेटिव वातावरण के कारण वहाँ जाने से लोग घबराते हैं। हरिश्चंद्र राजा को भय नहीं था। वे सत्य से सराबोर थे। वे श्मशान में अकेले खड़े रहे। वह भी एक-दो दिन नहीं, अपितु

काफी दिनों तक रहे।

क्या उनको भूतों ने सताया, क्या लाशों ने वहाँ पर खुला नृत्य किया? क्या उनको घबराहट हुई?

नहीं। भय उनके नजदीक ही नहीं आया। हम जिनको अपनी तरफ आकर्षित करते हैं, उनको गले लगा लेते हैं। हमने भय को अपनी तरफ आकर्षित किया और उसे गले लगा लिया। यदि भय को गले नहीं लगाएंगे तो भय अपने आप ही पास नहीं आएगा। भय को रिस्पांस देने से, उसे महत्त्व देने से वह पास आता है।

एक किंवदंती है कि एक बार बुखार कहीं जा रहा था, तो उसने विचार किया कि मैं किसके गले लगूँ? चलते-चलते उसने एक किसान को देखा। वह हट्टा-कट्टा था। उसने सोचा यह व्यक्ति ठीक है। बुखार ने किसान को घेर लिया, किंतु किसान ने विचार किया कि बुखार हो गया तो क्या हो गया, मुझे अपनी खेती का काम तो करना ही है। समय बीत जाने पर काम क्या काम आएगा। वह किसान दिनभर खेत जोतने में लगा रहा। हल चलाने में लगा रहा। उसने दिनभर पसीना बहाया, बुखार ने देखा कि यहाँ तो हाड़तोड़ मेहनत हो रही है, यहाँ मेरी दाल गलने वाली नहीं है और वह भाग गया।

बुखार घूमता-घूमता एक सेठ के वहाँ गया। उसने सेठ को पकड़ा। जैसे ही बुखार ने सेठ को पकड़ा, सेठ के लिए गादी-तकिए लगाए गए। खाट बिछा दी गई। सेठ का उपचार होने लगा। कोई पानी ला रहा है तो कोई पानी की पट्टी कर रहा है। कोई कुछ कर रहा है तो कोई कुछ। बुखार ने सोचा, मुझे यहीं रहना ठीक है। यहाँ मेरी बहुत अच्छी सेवा हो रही है। चाहे ऐसा नहीं भी हुआ हो, किंतु इस किंवदंती से यह पता चलता है कि रोग आते ही लोग उसको बहुत जल्दी एक्सेप्ट कर लेते हैं और सोच लेते हैं कि रोग हो गया तो परिचर्या होनी चाहिए। वैसे ही भय को गले लगाते हैं तो वह हमारे बहुत नजदीक रहता है। वह सोचता है कि यहीं पर मेरी दाल गलेगी। दूसरी जगह पर दाल गलने वाली नहीं है।

धर्म, श्रद्धा और आस्था प्रगाढ़ है तो भय से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भय डरा नहीं पाएगा। श्रद्धा से ही शिखर चढ़ना होता है।

जो भी तीर्थंकर देव मोक्ष में गए, वे किस बल पर गए?

जो भी मोक्ष गए, चाहे वे तीर्थंकर हो या राम, हनुमान या गौतम, श्रद्धा के बल पर गए। श्रद्धा के बिना मोक्ष में जाना नामुमकिन था। नामुमकिन है और नामुमकिन रहेगा। जो भी मोक्ष गया श्रद्धा के बल पर गया, जो जा रहा है वह श्रद्धा के बल पर जा रहा है और जो जाएगा वह भी श्रद्धा के बल पर ही जाएगा।

श्रद्धा महत्त्वपूर्ण है या नहीं?

(श्रोतागण बोले- महत्त्वपूर्ण है)

किस-किसको मोक्ष की आवश्यकता है?

मेरा दूसरा प्रश्न है कि मोक्ष क्यों जाना चाहते हैं?

(एक व्यक्ति ने कहा- जन्म-मरण का चक्कर काटने के लिए)

क्यों? क्या दिक्कत है जन्म-मरण के चक्कर में? हमने अनंतानंत जन्म-मरण किए हैं। दो-चार, पचीस-पचास और हो जाएंगे तो क्या फर्क पड़ेगा। यदि हमने एक बार श्रद्धा को स्वीकार कर लिया, एक बार श्रद्धा का दामन थाम लिया तो हम चाहे इधर-उधर कहीं भी भटक जाएं, श्रद्धा हमें छोड़ेगी नहीं। वह एक दिन हमें राजमार्ग पर लाकर मोक्ष पहुँचाएगी। इसलिए केवल एक बार श्रद्धा का दामन थाम लें और अच्छी तरह से थाम लें। यदि अच्छी तरह से श्रद्धा का दामन थाम लिया तो संसार में कहीं भी भटक जाने के बाद भी वह आपकी पहचान कर लेगी। आपकी खोज कर लेगी।

मैंने ऐसा सुना है कि यदि कोई सर्प को मार देता है तो मारने वाले का चेहरा उसकी आँख में रह जाता है। सर्पिणी, सर्प की आँख में देखकर जान सकती है कि सर्प को किसने मारा। जिस इनसान की तसवीर उसकी आँख में होती है, सर्पिणी उसको डस लेती है। डस कर वह बदला ले लेती है। ऐसा मैंने सुना है। हकीकत क्या है, मैं नहीं कह सकता।

जैसे सर्पिणी उस इनसान की खोज कर लेती है, वैसे ही श्रद्धा हमारी खोज कर लेगी, हम चाहे कहीं भी रहें। एक बार यदि श्रद्धा को स्वीकार कर लें तो जितना समय संसार में रह गए, अब उतने समय तक संसार में रहना नहीं पड़ेगा। संसार सीमित होगा, निश्चित होगा।

सुबाहु कुमार के प्रकरण में आपने सुना है कि सुमुख गाथापति के भव में सुबाहु कुमार ने सुपात्र दान दिया और संसार को परित किया। संसार को

छोटा कर लिया। सीमित कर लिया। वह श्रद्धा से ही हुआ। श्रद्धा इस संसार को सीमित कर देती है। छोटा कर देती है और हमारी मुक्ति हो जाती है। समझ लो कि अब आरक्षण हो गया। मुक्ति फाइनल हो गई। कितने नंबर पर सीट है, यह बात अलग है, किंतु रिजर्वेशन फाइनल हो गया कि हमें मोक्ष में जाना है।

'धर्म पताका फहरे फर-फर, धर्म नगाड़ा बजता दर-दर'

धर्म पताका फहरने से क्या मतलब है?

इसका मतलब है, सब दिशाओं में धर्म का प्रकाश फैले। धर्म का फैलाव हो जाए। वह तब होगा जब धर्मयुक्त आचरण होगा क्योंकि मुँह से बोलने का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना प्रभाव आचरण का पड़ता है।

बाप, बेटे से कहे कि बेटा! कभी झूठ नहीं बोलना और खुद दिन में कभी सच नहीं बोले तो बेटा, बाप से क्या सीखेगा? वह जान ही नहीं पाएगा कि सच होता क्या है क्योंकि उसने घर में दिन-रात झूठ को ही सुना है। झूठ को ही सुना है तो उसी मार्ग पर चलेगा। उससे सत्य की आश रख पाना बेकार है। यदि घर का वातावरण सत्य प्रधान है तो घर के सभी सदस्य उसी वातावरण में ढलते चले जाएंगे।

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में वातावरण का प्रभाव महत्त्व रखता है। वातावरण का बहुत ज्यादा प्रभाव पड़ता है। बहुत कम लोग वातावरण से प्रभावित नहीं होते होंगे। आप देखना, लोग वातावरण से प्रभावित होते हैं। एक गीत में बताया गया है-

सादो बणजा रे भारतीया, थारे घर की हो गई लूट।
घर की हो गई लूट बावरे, घर-घर पड़ गई फूट।। सादो...
आगे पिवतो दूध मलाई अब चायन की घूँट, सादो...

अब गले से आवाज नहीं आएगी, क्योंकि आदत वैसी बन गई है। अब हमें दूध-मलाई नसीब ही कहाँ है। हमें क्या नसीब है?

(श्रोतागण बोले- हमें चाय नसीब है)

'आगे खावतो मिसरी मेवा, अब खाए बिस्कुट, सादो...'

(श्रोतागण हँसने लगे)

आपको हँसी आ रही है। 50 वर्ष पहले घर में बिस्किट कितने मिलते? सौ साल पहले बिस्किट देखे भी नहीं होंगे और आज घर में कोई चीज मिले या

नहीं, किंतु बिस्किट जरूर मिल जाएंगे। आज बिस्किट प्राय: घरों में उपलब्ध है।

कितना सात्विक भोजन है बिस्किट? कैसे बनता है बिस्किट? उसमें वनस्पति घी लगता है या असली घी?

(श्रोतागण बोले- वनस्पति घी लगता है)

असली घी और वनस्पति घी का परिणाम क्या होता है?

वनस्पति घी आँखों की ज्योति खत्म करने का काम करता है। आँखों की ज्योति मंद करने का काम करता है। चूहों पर वनस्पति घी का प्रयोग किया गया तो उनकी आँखों की ज्योति चली गई। बहुत खतरनाक होता है वनस्पति घी, किंतु जीभ के स्वाद के लिए, अपनी सुविधा के लिए लोग क्या-क्या खा लेते हैं! लोग सोचते हैं कि रात की रोटी कौन बचाएगा। दो बिस्किट सुबह चाय के साथ दे दिए और हो गया नाश्ता। हमारा रहन-सहन कितना बदल गया है।

'पहले पहनते धोती कुर्ता, अब अंग्रेजी सूट, सादो...'

पहले लोग धोती-कुर्ता पहनते थे। अब क्या पहनते हैं?

(श्रोतागण बोले- अब सूट-बूट पहनते हैं)

पहले यात्रा करने वाले लोटा अपने साथ रखते थे। जब कुएं से पानी निकालना होता तो धोती के पल्ले से लोटा बाँधते और पानी निकाल लेते। अब सूट-बूट के युग में क्या हो गया? पहले कहीं स्नान करते थे तो आधी धोती धोकर सूखा लेते थे। आधी पहनी रह जाती थी। अर्थात् एक तरफ से धोकर सुखा लेते, वह सूखती तो उसे पहनकर दूसरा भाग धो लेते। अब चलते-चलते कहीं पानी में गिर गए तो सूट-बूट का क्या करेंगे?

सूट-बूट के पहनावे ने हमें गुलाम बना दिया। भिखारी बना दिया। आज पानी पीना होता है तो कहाँ पीते हैं?

नल के नीचे हाथ मांड देंगे, नहीं तो पहले कुएं से पानी निकालते थे। पहले और अब में अंतर आया या नहीं?

(श्रोतागण बोले- अंतर आया)

हम बड़े खुश हैं कि हम भारत को शिखर पर ले जा रहे हैं।

सादो बणजा रे भारतीया, थारे घर की हो गई लूट।
घर की हो गई लूट बावरे, घर-घर पड़ गई फूट।। सादो...

आज घर-घर में फूट की समस्या है। सौ साल पहले फूट की समस्या

ज्यादा थी या आज ज्यादा है?

(श्रोतागण बोले- आज ज्यादा है)

पहले घर के झगड़े ज्यादा नजर आते थे या वर्तमान में ज्यादा नजर आ रहे हैं?

(श्रोतागण बोले- वर्तमान में ज्यादा नजर आ रहे है)

आने वाला समय कैसा नजर आ रहा है? भविष्य कैसा नजर आ रहा है? भविष्य सुखद नजर आ रहा है क्या?

हम भविष्य की ओर दौड़ तो रहे हैं, पर ध्यान रखना, जितना जल्दी दौड़ रहे हैं उतनी ही जल्दी छठे आरे में पहुँचेंगे। किसको जाना है छठे आरे में?

कौन-कौन छठे आरे की बुकिंग करा रहे हैं?

वैसे तो छठा आरा रुकेगा नहीं। वैसे तो नरक-निगोद रुकेगा नहीं। नरक-निगोद रुकेगा धर्म की आराधना से। धर्म की श्रद्धा से। एक बार सही रूप से धर्म की आराधना, श्रद्धा की आराधना कर ली तो मैं आपको प्रमाण-पत्र दे सकता हूँ कि आप छठे आरे में मनुष्य नहीं बनेंगे। यदि सम्यक् प्रकार से, सही रूप से धर्माराधना कर ली तो छठे आरे में जाने की नौबत नहीं आएगी, किंतु इसकी समीक्षा करनी पड़ेगी कि आराधना-साधना कैसी हो रही है! विचार करना होगा कि हम क्या कर रहे हैं!

भारत की जीवनशैली सादगीपूर्ण थी। उसकी लूट हो चुकी है। हमारा खान-पान, रहन-सहन, सोना-जागना, उठना-बैठना बदल गया है। पहले सोने के लिए खाट होती थी या निवार का ढोलिया होता था। अब लकड़ी के पलंग होते हैं। नाम तो अच्छा है, किंतु बीमारी किसमें हो रही है? बीमारी किससे ज्यादा हो रही है आपने सुना होगा।

सुखविपाक सूत्र के माध्यम से धारिणी महारानी की शय्या कैसी थी?

उनकी शय्या ऊपर की तरफ ऊँची (उन्नत) और पैर की तरफ से भी ऊँची थी। जहाँ पेट, कमर का भाग होता है, वहाँ से नीची थी, निम्न थी। सही पाचन क्रिया के लिए वह व्यवस्था थी। आज का पलंग एकदम स्टेट होता है। आज कमर की बीमारी ज्यादा हो गई। यह देख लो, यहाँ कुर्सी पर बैठने वालों को। हमारे म.सा. बोल रहे हैं कि बहनें आगे तक चली गईं। इसका क्या कारण है? हमने कभी इसकी समीक्षा नहीं की कि ये बीमारियाँ क्यों आ रही हैं! हमने

जितना उनको महत्त्व दिया वे उतनी ही हमारे नजदीक आती हैं। यदि हमने इनको महत्त्व नहीं दिया होता तो ये हमारे गले नहीं लगतीं।

मैं पहले एक दिन बोल गया था कि बीमारी का मूल कारण शारीरिक श्रम कम करना है। जिम चले जाएंगे, वहाँ जाकर व्यायाम करेंगे, किंतु घर का काम करने के लिए तैयार नहीं होंगे। सोचते हैं कि हम बड़े सेठ हैं, अपने हाथ से काम कैसे करें। जब अपने हाथ से काम होता है तो मन की प्रसन्नता बरकरार रहती है। मन बड़ा खुश रहता है। प्रसन्न रहता है।

खैर, धर्म ध्वजा, श्रद्धा की ध्वजा कब फहरेगी?

जब आचरण सही बनेगा, सम्यक् प्रकार से बनेगा तब धर्म ध्वजा, श्रद्धा की ध्वजा फहराने में समर्थ होंगे। श्रद्धा से आचरण सदाचारमय बन जाता है। व्यवहार सुधर जाता है। मन निर्भय हो जाता है। मन में कोई भय नहीं रहता। सच्चाई में जीने वाले को भय की कोई बात नहीं होती। अधर्म में भय होगा, धर्म में कभी भय नहीं होगा।

एक गुरुजी अपने शिष्य के साथ यात्रा कर रहे थे। बीच में एक जंगल आया। जंगल में एक घना वृक्ष दिखने पर गुरुजी ने कहा, बेटा! थोड़ा ध्यान-साधना करने के बाद आगे बढ़ेंगे। इसके बाद गुरुजी ध्यान मग्न हो गए। शिष्य, गुरुजी के पास बैठ गया। इतने में शिष्य ने एक शेर की दहाड़ सुनी। शेर सामने से आते हुए नजर आया। शिष्य ने गुरुजी से कहा, गुरुजी! शेर आ गया। गुरुजी ध्यान में मग्न रहे। शेर देखकर शिष्य झट से पेड़ पर चढ़ गया।

शिष्य ने गुरुजी को कहाँ छोड़ दिया?

(श्रोतागण बोले- नीचे ही छोड़ दिया)

शिष्य को छात्र भी कहा जाता है। छात्र का अर्थ क्या होता है?

(एक व्यक्ति ने कहा- छात्र का अर्थ होता है गुरुजी की सेवा करना)

छात्र का अर्थ होता है, छत्र बनकर रक्षा करना। छत्र बनकर गुरुजी की हर तरह से रक्षा करना ताकि गुरु पर कोई वार नहीं कर सके। पर जो संकट के समय भाग जाए वह क्या सेवा करेगा!

वह शिष्य पेड़ पर चढ़ गया। सिंह गुरुजी के पास आकर बैठ गया। थोड़ी देर रुककर वह चला गया। सिंह ने गुरुजी का कुछ बिगाड़ नहीं किया। सिंह को जाते देख शिष्य पेड़ से नीचे उतर गया। जब गुरुजी का ध्यान पूरा हुआ

तो शिष्य ने कहा, गुरुजी मैंने आपको कितनी आवाज लगाई पर आपने एक नहीं सुनी। गुरुजी ने कहा, बेटा! मैं ध्यान में था।

दोनों ही आगे बढ़े। कुछ ही कदम आगे बढ़े होंगे कि उनको देखकर एक कुतिया भौंकने लगी। गुरुजी डरने लगे। गुरुजी को डरते देख शिष्य को हँसी आ गई। उसने कहा, गुरुजी! आप बहुत अजीब हैं। जब सिंह आपके पास आया तो आप हिले भी नहीं और अब एक छोटी-सी कुतिया सामने आने पर आप डर रहे हैं। गुरुजी ने कहा, बेटा! उस समय मैं भगवान के साथ था, अभी तुम्हारे साथ हूँ।

मैं यह बताना चाह रहा हूँ कि जब हम श्रद्धा के साथ रहेंगे, धर्म के साथ रहेंगे तो निर्भय होकर रहेंगे। जैसे ही अधर्म के साथ जाएंगे, वैसे ही भयभीत हो जाएंगे। मन में संकीर्णता आ जाएगी। मन कुण्ठित हो जाएगा। संकुचित हो जाएगा।

'श्रद्धा है सार-वार, श्रद्धा से खेवो पार...'

श्रद्धा से ही निर्वाण प्राप्त होगा। कोई दूसरा उपाय नहीं है। कितने ही हाथ-पैर पटक दें, दूसरा कोई भी उपाय नहीं है। श्रद्धा जिसके जीवन का बल बन गया, जिसकी आत्मा में श्रद्धा रम गई, उसको रोकने वाला कोई नहीं है। श्रद्धा से ही निर्वाण प्राप्त होगा। समझ लो कि आप वी.आई.पी. बन गए। अब आपके लिए वी.आई.पी. व्यवस्था होगी। इसलिए हम बोलें-

'श्रद्धा से मन सदा बढ़ेगा, श्रद्धा से मन शिखर चढ़ेगा।'

एक गीत है-

'होवे धर्म प्रचार, प्यारे भारत में,
हाँ, होवे धर्म प्रचार, प्यारे भारत में'

मैंने पहले ही बता दिया कि कैसे होगा प्रचार। उसी गीत में आगे है-

धर्म का झण्डा फहरे फर-फर, नाम प्रभु का गूँजे घर-घर,
होवे जय जयकार, प्यारे भारत में...

क्या शब्द है, होवे धर्म प्रचार। कहाँ पर होवे धर्म प्रचार?

(श्रोतागण बोले- भारत में होवे)

अरे! प्यारे भारत में कहा गया है। हमें भारत से कितना प्यार है?

क्या सुंदर बात कही गई है, प्यारे भारत में। भारत प्यारा किसको है?

यहाँ बैठने वालों में से ऐसे कौन-कौन हैं जिन्होंने भारत के अलावा किसी दूसरे देश के सामान का उपयोग नहीं किया? विदेशी चीजों का उपयोग नहीं किया, यूज नहीं किया?

'सादो बणजा रे भारतीया, थारे घर की हो गई लूट'

कोई तो अपना हाथ खड़ा करो कि मैंने आज तक कभी विदेशी चीज का उपयोग नहीं किया।

(एक व्यक्ति ने हाथ खड़ा किया)

सिर्फ एक चैनराज जी ने हाथ खड़ा किया है। आजकल तो बीवी भी विदेश की और बच्चा भी विदेश का। गाड़ी भी विदेश की, लाडी भी विदेश की और पाड़ी भी विदेश की। गायें भी विदेश की आ गईं। आप दूध किसका पी रहे हो, कैसा पी रहे हो?

(श्रोतागण बोले- जर्सी गाय का दूध मिल रहा है)

कैसा होता है उसका दूध? तीन-चार पहर तक वह दूध रह जाए तो बास मारने लगेगा। देशी गाय का दूध तिरछे लोक में अमृत माना गया है। मृत्यु लोक में गाय के दूध को अमृत माना गया है। भारतीय देशी गायों के दूध को अमृत माना गया है। जर्सी गाय को ए.सी., पंखा चाहिए। उसका दूध पीने वाले को ए.सी. चाहिए, पंखा चाहिए। गाय का दूध शरीर को पुष्ट बनाने वाला होता है, किंतु हमारा रहन-सहन इतना बदल गया कि हम अपने ही घर में पराए बनकर जी रहे हैं। हम अपने ही घर में पराए हो गए। हमारा राष्ट्रप्रेम, हमारी राष्ट्रभक्ति कहाँ चली गई हम कुछ नहीं कह सकते। यह केवल हमारी ही बात नहीं है।

एक बार भैरोसिंह शेखावत का ऑपरेशन होना था। वे ऑपरेशन कराने के लिए विदेश गए। मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि राष्ट्रीय नेता इलाज कराने के लिए विदेश क्यों जाते हैं? क्या भारत में डॉक्टर नहीं हैं? यदि भारत के डॉक्टरों पर विश्वास नहीं है तो भारत की 140 करोड़ जनता को भारतीय डॉक्टरों के भरोसे क्यों छोड़ दिया जाता है? क्यों नहीं विदेश के डॉक्टरों को हायर कर लिया जाता? नेता तो विदेश भागें और बाकी लोग भारत के डॉक्टरों के भरोसे रहें। ऐसी बात भी नहीं है कि विदेश के सारे डॉक्टर भगवान बनकर अवतार लिए हैं। विदेश में कोई नहीं मरता क्या?

अमेरिका में रहने वाला, इंग्लैंड में रहने वाला, जर्मनी में रहने वाला कोई नहीं मरता क्या? मरने का अनुपात वहाँ भी कम नहीं है, किंतु हम दौड़ते हैं कि विदेश में इलाज बढ़िया होगा। जब तक हमारे माथे पर जूते नहीं लगते, तब तक हमारा नशा नहीं उतरता।

कई लोग फाइव-स्टार होटलों में जाते हैं। क्या मिलेगा वहाँ? वही दूध मिलेगा, वही चाय मिलेगी, पानी भी वही मिलेगा, किंतु पैसों में फर्क आएगा। फाइव-स्टार होटल में जाने पर दो-चार वेटर आकर खड़े होंगे, कहेंगे, सर! ऑर्डर कीजिए। और किसी छोटे होटल में जाने पर आपको खुद ही बोलना पड़ेगा, कोई ऑर्डर लेने वाला नहीं आएगा। यही फर्क है और इस फर्क में पैसों का बहुत फर्क हो जाता है। लोग मान-सम्मान में जीने वाले हैं, सोचते हैं कि पैसा किसलिए है! किसलिए कमा रहे हैं!

मैं रतलाम चातुर्मास (1997) के बाद निकटवर्ती क्षेत्रों में विचरण कर रहा था। विहार करते-करते दुपहरी का समय होने से एक बस स्टैण्ड पर ठहर गए। वहीं उस गाँव के गाय-भैंस चराने वाले बच्चे खड़े थे। हमने सोचा, थोड़ा इन बच्चों को उपदेश दे देते हैं, थोड़ा इनको समझा देते हैं। जब उनको समझाया कि बीड़ी मत पीओ, तम्बाकू मत खाओ, बीड़ी और माचिस मिलाकर दिनभर में दस रुपए खर्च हो जाते हैं तो एक बच्चा बोला, महाराज कमाते किसलिए हैं? मैंने सोचा यह तो मैंने भी नहीं सोचा कि कमाते किसलिए हैं।

किसलिए कमाते हैं? बोलिए तो सही कि आप किसलिए कमाते हैं?

गुरुदेव फरमाया करते थे-

'पूत सपूतं किं धनसंचय, पूत कपूतं किं धनसंचय'

पूत यदि सपूत है तो उसके लिए धन संचय करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह संचित कर सकता है और पूत यदि कपूत है तो भी धन संचित करने की जरूरत नहीं है क्योंकि वह संचित किया हुआ धन ठिकाने लगा देगा।

कौन-कौन नियम ले रहा है कि पैसा संग्रह नहीं करूंगा?

जितना पैसा है उससे ज्यादा नहीं बढ़ाना। उससे ज्यादा आए तो उसको खर्च करना। संग्रह नहीं करना। किसी का भाव है क्या? संग्रह करने से क्या होगा? आप कहेंगे, म.सा.! संग्रह किया हुआ धन बीमारी के समय काम

आएगा, विपत्ति के समय काम आएगा। कुछ काम नहीं आएगा। विपत्ति के समय पास में रही हुई गोली भी काम में नहीं आएगी। हार्ट-अटैक से बचने के लिए एक छोटी-सी गोली आती है। हृदय रोग वाले उसको एक सीसी में डालकर पॉकेट में रखते हैं ताकि हार्ट में दर्द होने पर उसे जल्दी से ले सकें, किंतु अचानक हार्ट का झटका आने पर हाथ पॉकेट में ही रह जाएगा, गोली काम नहीं आ पाएगी।

वैसे ही किसी काम नहीं आएंगे पैसे। अधिकतर लोग नकारात्मक बातें पकड़ लेते हैं। नकारात्मक बातें जम जाती हैं। आप विचार करिए कि पशु-पक्षी पहले से अपना भोजन संचय करके कितना रखते हैं और हम कितना रखते हैं!

'कीड़ी संचे तीतर खाय, पापी का धन पर ले जाय'

चींटी कण-कण इकट्ठा करती है और तीतर आकर खा जाता है। तीतर एक पक्षी होता है। इसी प्रकार-

'पापी का धन पर ले जाय'

पाप करके इकट्ठा किए गए धन का भोग व्यक्ति अपनी जिंदगी में नहीं कर पाता। उसका भोग कोई दूसरा ही करता है।

शालिभद्र की जिंदगी कैसी थी?

शालिभद्र भोग भोगने में मस्त थे। खाया-पीया और मस्त। संचय करके नहीं रखते। उन्हें संचय करने में कोई फायदा नजर नहीं आ रहा था और हमें संचय करने में फायदा नजर आ रहा है।

बहुत पैसा कमाने से, बहुत धन इकट्ठा करने से भी समस्या आ रही है। समस्या यह आ रही है कि उसकी सुरक्षा कैसे करें। चिंता सताने लगती है कि कहीं चोर लूट न ले, इनकम-टैक्स की रेड ना पड़ जाए। ये बातें आपने सुनी तो बहुत हैं, किंतु इन पर कभी सोचा क्या? बहुत कम लोग होंगे, जिन्होंने संचय करना छोड़ दिया होगा। जिन्होंने सोचा होगा कि अब से संग्रह नहीं करूंगा। इकट्ठा करके नहीं रखूंगा। जो है सो है।

मैं कई बार साड़ी के संग्रह पर, पोशाक के संग्रह पर चर्चा करते हुए कहता हूँ कि जितनी साड़ियां हैं, उससे आगे संख्या बढ़ाना नहीं। जब नई साड़ी आए तो एक पुरानी साड़ी को निकालना होगा। रोज नई साड़ी पहनने के लिए

मना नहीं है, किंतु एक नई साड़ी आने पर एक पुरानी साड़ी निकालनी होगी। एक पुरानी साड़ी हटानी होगी। वैसे ही भाई लोग कितनी भी पोशाकें पहनें, किंतु इकट्ठा नहीं करना। एक नई पोशाक आए तो एक पुरानी पोशाक को हटाना होगी।

सुनंदा के जीवन के बारे में सुन रहे हैं। सुनंदा का जीवन सात्विक था। सुनंदा की शादी हो गई। ससुराल जाने की तैयारी हो रही है।

'सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
मंगलमय हो पथ तुम्हारा, लगे ससुर घर तुमको प्यारा,
मेरा है आशीष, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा के पिता उसको सीख दे रहे हैं कि बेटी! तुम्हारा पथ मंगलमय बने। तुम्हारा पथ प्रशस्त बने। ससुराल तुम्हें अपने घर जैसा ही लगे, पराया नहीं लगे। यह मेरा मंगल आशीष है। यह मेरा आशीर्वाद है।

हम सुनते हैं कि बहुत-सी बेटियां ससुराल जाने पर बोलती हैं कि वहाँ बड़ी मुसीबत से जी रही हूँ। खानदानी होने से कुछ बोल नहीं पा रही हूँ। पीहर आकर बैठा नहीं जा सकता। ऐसा भी हो तो कुछ ठीक है, कम-से-कम खानदान का इतना विचार तो है। बहुत-सी लड़कियाँ तो पीहर में आकर बैठ जाती हैं। कई लड़कियाँ तो अग्नि स्नान कर लेती हैं।

ऐसी नौबत क्यों आती है?

क्या ससुराल वाले सारे खराब हो गए और वही सही रह गई। हो सकता है कि ससुराल वाले खराब भी हों, किंतु 'एक सती, नगर सारा' अर्थात् एक सती सारे नगर की इज्जत बचाने वाली होती है। किसी का एक गुण परिवार को बचाने वाला हो सकता है। वह गुण कौन-सा है? वह गुण है सहनशीलता का। सहनशीलता जिसके भीतर होगी उसका ससुराल कैसा भी हो उसके सामने कोई समस्या नहीं आएगी।

'सहना, सहना, सहना, सहना'

चार बार लिखा गया है- 'सहना, सहना, सहना, सहना।' चार बार बोला गया यह शब्द यदि याद रह जाए तो कोई समस्या नजर नहीं आएगी। लड़की को सोचना चाहिए कि भले ही ससुराल वाले सारे खराब हैं, किंतु मैं तो बढ़िया हूँ ना! मैं तो अच्छी हूँ ना! उसको सोचना चाहिए कि मैं अच्छी हूँ तो

मुझे घरवालों को अच्छा बनाना है किंतु यदि मैं खुद ही खराब हूँ तो किसी को अच्छा बनाने का सोच ही नहीं सकती। वह बोलेगी कि मैंने तो बहुत प्रयत्न किये, किंतु घरवाले मेरी सुनते ही नहीं हैं। ध्यान रखें, किसी को सुनाना नहीं है। सुनाने के लिए वहाँ नहीं गई हैं। सुनाने के लिए वहाँ नहीं भेजा गया है। सहने के लिए भेजा गया है, जीवन सहने से बनता है, सुनाने से नहीं।

खाली बहनों की बात नहीं है, पुरुषों में भी सहनशक्ति घटती जा रही है। बच्चों में भी सहनशक्ति घटती जा रही है। सहनशक्ति जितनी घटती जाएगी उतनी ही समस्याएँ आएंगी।

सभी समस्याओं का समाधान है सहना। न सह पाने की आदत बहुत सारी समस्याओं को पैदा करने वाली होती है।

इसका कारण क्या है?

आजकल लड़कियाँ पढ़-लिख तो लेती हैं। एम.बी.ए. आदि न जाने कौन-कौन सी डिग्रियाँ तो प्राप्त कर लेती हैं, किंतु अपने जीवन को मैनेज करना नहीं सीख पातीं। पढ़ा-लिखा काम कब आएगा? जब अपने जीवन को मैनेज करना सीख लेंगे तो पढ़ना-लिखना सार्थक होगा।

एक गाँव के किसान का लड़का कॉलेज से अंग्रेजी पढ़कर-सीखकर आया। घर में कुर्सी नहीं थी, खाट थी तो वह खाट पर बैठ गया। उसको प्यास लगी तो वाटर-वाटर करने लगा। लोगों को समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या बोल रहा है। गाँव वालों के पल्ले अंग्रेजी पड़ी नहीं। लोगों को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या बोल रहा है। उसको पानी कहने में शर्म आ रही थी। वाटर-वाटर करते हुए वह मूर्च्छित हो गया। उसके खाट के नीचे पानी पड़ा था, किंतु वह उसके काम नहीं आया। वह उठकर खाट के नीचे देखता तो पानी मिल जाता, किंतु वह वाटर-वाटर करता रह गया।

वैसे ही हमने पढ़ाई-लिखाई तो बहुत की, किंतु हमारे भीतर जीवन जीने की कला, जीवन को मैनेज करने की कला नहीं आ पाई। कोई कम पढ़ा-लिखा भले हो किंतु उसे जीवन को मैनेज करना आता हो, जीवन जीने की कला आती हो तो वह कहीं भी जाएगा अपने जीवन को सही रख लेगा।

राम के साथ लक्ष्मण भी वनवास गए। क्या कठिनाई आई राम को? उन्हें जो भी कठिनाई आई लक्ष्मण उसका हल करते गए। जहाँ भी कठिनाई

आई वे हल करते गए और राजमार्ग बनता गया। वे इस प्रकार से काम करने में समर्थ थे, क्योंकि उनको 72 कलाओं का ज्ञान था। उन्हें अहंकार नहीं था। झूठी शान नहीं थी।

खैर, आते हैं सुनंदा की बात पर। सुनंदा के पिता ने कहा, बेटी! तुम्हें अपना पथ मंगलमय बनाना है। तुम ससुराल को अपना घर समझना, पराया मत समझना। एक व्यक्ति किसी के बोलने पर काम करता है और एक अपना घर समझकर काम करता है। आदमी को चमड़ी प्रिय नहीं होती, काम प्रिय लगता है। काम प्यारा होता है, चाम नहीं।

कोई ठाठ-बाठ से बैठकर ननद को, देवर को आदेश दे कि ऐसा करो, वैसा करो तो शुरू-शुरू में चार दिन ननद-देवर काम कर देंगे, बाद में कहेंगे, भाभी जी नीचे उतर आओ। आप भी आ जाओ। ऐसी स्थिति आने पर उसको बुरा लगेगा। वह कहेगी कि मुझे ऐसा-ऐसा कह दिया। वह कहा गया उसे सहन नहीं होता। बहुत कठिन होता है सहन करना।

शिक्षा देने के क्रम में सुनंदा को आगे क्या शिक्षा मिलेगी, यह समय के साथ सुनेंगे। उसे जब सुन पाएंगे, तब सुन पाएंगे पर इतना ध्यान रखा जाए कि जीवन मंगलमय बने। अपने जीवन को मैनेज करें। यदि कोई कुछ कह रहा है तो सुनने की कला होनी चाहिए। यदि हम कुछ कह रहे हैं तो कहने की भी कला होनी चाहिए। कहने और सुनने की कला होनी चाहिए। कैसे सुनना, कैसे बोलना यह कला होनी चाहिए। यह कला होगी तो कोई कुछ भी कहे आराम से सुन लेंगे। कोई ऊहापोह नहीं होगी। जहाँ लगे कि कुछ कहना है तो शांत भाव से कहना। ऐसी बात नहीं कहना कि किसी के दिल पर चोट पड़े। प्रेम से चाँटा भी सहा जा सकता है।

सार यह है कि कुछ कहने और सुनने का तरीका होना चाहिए। यह दोनों आ गया तो जीवन मैनेजमेंट का कुछ हिस्सा सफल हो जाएगा। वैसी स्थिति में सहसा कोई भी समस्या सामने खड़ी नहीं होगी। वैसे समस्या पैदा करने वाला कौन है?

(श्रोतागण बोले- समस्या पैदा करने वाले हम ही हैं)

सारी समस्या का समाधान कहाँ है?

(श्रोतागण बोले- हमारे पास है)

अपनी समस्या के समाधान का लक्ष्य बनाएँ। इसके लिए धर्म-श्रद्धा को अपने जीवन का अंग बना लें। धर्म-श्रद्धा ही जीवन है। धर्म-श्रद्धा के बिना जीवन व्यर्थ है।

महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. की आज 26 की तपस्या है और 29 की तपस्या श्री जयति श्री जी म.सा. की है। और भी कई भाई-बहनों में तपस्या चल रही है। मासखमण और मासखमण के ऊपर की तपस्या भी चल रही है। हम प्रेरणा ले अपने जीवन को धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम।

25 जुलाई, 2023

6

एक धर्म ही जग जस पाता

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म श्रद्धा से क्या-क्या लाभ होते हैं? कई बातें हमारे सामने आ चुकी हैं। उसी कड़ी में आगे बताया जा रहा है।

'रोग-शोक सब भग-भग जाता,
एक धर्म ही जग जस पाता'

इस पर विचार करने की बात है, चिंतन करने का आवश्यकता है कि धर्म से रोग कैसे दूर हो जाते हैं!

देखा-सुना गया है, पढ़ा गया है कि धर्माराधना करने वालों को भी बीमारियाँ आई हैं। उनको भी रोग हुए हैं। छोटे-मोटे आदमियों की बात जाने दो, तीर्थंकरों को भी रोग आए। फिर यह कैसे कहा जाता है कि धर्म से रोग-शोक भग जाते हैं, दूर हो जाते हैं, हट जाते हैं?

यहाँ समीक्षा करने की गुंजाइश है। यहाँ अवकाश है और समीक्षा की जानी चाहिए।

'वादे-वादे जायते तत्त्वज्ञानम्'

विचार करेंगे तो तत्त्व ज्ञान प्रकट होगा। भगवान ने कहा-

'पण्णा समिक्खए धम्मं'

अर्थात् प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करो और तत्त्व का विनिश्चय करो। रोग आने का कारण क्या है? असातावेदनीय कर्म का उदय होने से असाता पैदा होती है। असाता विभिन्न रूप से पैदा होती है। असाता का कारण है राग।

असातावेदनीय कर्म उदय में आने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव का होना आवश्यक है, क्योंकि कोई भी कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अनुकूलता पर ही उदय में आता है। यदि तथारूप द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव नहीं है, तो उनका विपाकोदय के रूप में उदय नहीं हो पाता।

कोई बहुत प्रिय चीज हमसे अलग हो रही हो उसको सहन करने का सामर्थ्य हमारे में नहीं हो तो उससे हमारे भीतर एक रासायनिक विपरिणमन होगा। वह रासायनिक प्रक्रिया रोग उत्पन्न करने वाली होती है। बीमारी उत्पन्न करने वाली होती है। मनोवैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं। आयुर्वेद और होम्योपैथ चिकित्सा पद्धति भी इस बात को स्वीकार करती है।

अकस्मात् कोई विपत्ति आ जाने पर व्यक्ति के मन में ऐसा धक्का लगता है कि अब मेरे भविष्य का क्या होगा। वह धक्का, वह झटका भीतर जाकर अपना एक स्थान बना लेता है और धीरे-धीरे बीमारी के रूप में परिणत हो जाता है।

जब धर्माराधना करेंगे तो ये धक्के नहीं लगेंगे। जो धक्के पहले लगे हैं उनके कारण रोग तो पैदा होंगे, किंतु वे परेशान करने वाले नहीं होंगे।

भगवान महावीर को रक्तातिसार हो गया। वे दुखी नहीं हुए। उन्हें कोई परेशानी नहीं थी, पर सिंह अणगार आर्त ध्यान करने लगे, उस स्थिति में भगवान ने उपचार लिया, किंतु वे रोग से परेशान नहीं थे। हम कई बार सुनते हैं कि चमड़ी उधेड़ी गई। किसकी चमड़ी उधेड़ी गई?

(श्रोतागण बोले- खंधक ऋषि की चमड़ी उधेड़ी गई)

खंधक ऋषि की चमड़ी उधेड़ी गई, किंतु उन्हें दर्द हुआ? कष्ट हुआ? पीड़ा हुई?

शायद उन्हें कष्ट नहीं हुआ।

उन्हें कष्ट क्यों नहीं हुआ?

हम जिसमें जीते हैं उसमे कोई घटना होती है तो दुःख होता है। पीड़ा होती है, कष्ट होता है।

किसी व्यक्ति ने अच्छा-सा एक बंगला खरीदा। गृह प्रवेश के समय उसका मित्र आया हुआ था। मित्र ने कहा, भाई! यह बंगला मुझे पसंद आ रहा है। यह बंगला मैं लूंगा, तुम्हें जो भी पैसे लेना है ले लो। मित्र ने बंगला खरीद

लिया। उस बंगले की रजिस्ट्री हो गई। रजिस्ट्री होने के चार दिन बाद बंगला भूकम्प से बैठ गया। अब पीड़ा किसको होगी? किसको होगी पीड़ा?

(श्रोतागण बोले– खरीदने वाले को पीड़ा होगी)

जिसने बंगला बेचा उसने गृह प्रवेश का उपक्रम किया, किंतु अपने मित्र के आग्रह पर बंगला उसको बेच दिया। बंगला बेचने के बाद बेचनेवाले का बंगले से संबंध हट गया। उसको बंगला बैठ जाने का दुख नहीं होगा। उसे पीड़ा नहीं होगी।

हमारा जीवन तीन तलों पर चलता है। हम तीन तलों पर जीते हैं। हमारे जीवन के तीन तल हैं– एक, शरीर का स्तर। दूसरा, मन का स्तर और तीसरा आत्मा का स्तर। जब हम शरीर के स्तर पर जीएंगे तो शरीर में होने वाली वेदना पीड़ित करेगी। दुखी बनाएगी। परेशान करेगी। यदि शरीर से संबंध अलग कर लिया, शरीर से संबंध हटा लिया तो दुख नहीं होगा। पीड़ा नहीं होगी। यह भाव होगा कि यह मेरा नहीं है, मैं इसका नहीं हूँ तो पीड़ा नहीं होगी। वेदना नहीं होगी। हम पीड़ित नहीं होंगे। महत्त्वपूर्ण बात है कि ये रिलेशन कैसे हटेंगे।

किस–किसने एक बार भी प्रतिक्रमण नहीं किया? जिन्होंने एक बार भी प्रतिक्रमण नहीं किया, वे हाथ खड़े करें। वैसे सभी ने एक बार तो किया ही होगा। चाहे संवत्सरी पर भी किया होगा, किंतु किया जरूर होगा। प्रतिक्रमण में प्रायश्चित्त विशुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करने का विधान है। उसके पूर्व तस्स उत्तरी का पाठ बोला जाता है। उसमें बोलते हैं–

'ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि'

क्या अर्थ होता है इसका?

जब तक नवकार मंत्र नहीं बोलूँ, तब तक इस काया से अपना संबंध हटा रहा हूँ। यह सूत्र शरीर से आत्मा को पृथक् कराने वाला है। इस पाठ को बोलते जरूर हैं किंतु हम हटाते नहीं है क्योंकि हमने वैसा अभ्यास किया ही नहीं है। काया से संबंध नहीं हटाने से दुखी होते हैं। उसी से पीड़ा होती है। कायोत्सर्ग के समय भी कान पर मच्छर बैठ गया तो कान की तरफ ध्यान चला जाता है। कान पर मच्छर बैठेगा तो ध्यान उसकी ओर जाएगा कि कहीं काट न ले।

कायोत्सर्ग में लोगस्स का पाठ उच्चारण करते समय कान पर मच्छर

बैठ जाए पाठ उच्चारण की तो गति वही रहेगी या फर्क आएगा?

उस समय गति थोड़ी तेज जाएगी। लोगस्स का उच्चारण जल्दी-जल्दी करेंगे ताकि मच्छर के काटने से पहले ध्यान पूरा हो जाए। ऐसा नहीं भी होता होगा, किंतु ध्यान तो उस ओर चला जाता है। इसका मतलब है कि हम बोलते जरूर हैं, किंतु शरीर से संबंध तोड़ते नहीं। शरीर से संबंध टूट जाएगा तो शरीर में होने वाली पीड़ा पीड़ित नहीं करेगी।

आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. की हथेली में फोड़ा हो गया। डॉक्टरों ने कहा कि फोड़ा जहरीला है, ऑपरेशन करना जरूरी है, नहीं तो ज्यादा हो जाने पर कभी हाथ काटना भी पड़ सकता है।

सारी पूछताछ करने के बाद डॉक्टरों ने कहा- आपको बेहोश करना पड़ेगा। बेहोश करने के बाद ऑपरेशन हो पाएगा। आचार्यश्री ने कहा- मैं बेहोश नहीं होना चाहता। बिना बेहोश किए आप ऑपरेशन कर सकते हैं क्या? डॉक्टरों ने कहा, ऐसा बहुत कठिन है। थोड़ा-सा भी हाथ हिल गया, शस्त्र इधर-उधर लग गया तो रिस्क का काम हो जाएगा। आचार्यश्री ने कहा, जो कुछ भी है, मैं बेहोश नहीं होना चाहता। बिना बेहोश किए ऑपरेशन कर सकते हों तो मैं तैयार हूँ। डॉक्टरों ने बिना बेहोश किए ऑपरेशन करना स्वीकार किया। आचार्यश्री जी ने उनके सामने हाथ रखा और कहा कि जब आपको ऑपरेशन करना हो तो बोल देना। डॉक्टरों ने तैयारी की और कहा, हम ऑपरेशन करने वाले हैं। आचार्यश्री जी ने हाथ से अपना संबंध हटा लिया। जब तक ऑपरेशन चला तब तक हाथ में प्रकम्पन भी नहीं हुआ। डॉक्टर ने जब ऑपरेशन पूरा होने का संकेत किया तो उन्होंने हाथ का संचार किया। यह बात ज्यादा पुरानी नहीं है। ज्यादा से ज्यादा सौ वर्ष हुए होंगे।

इसका मतलब क्या हुआ?

हम शरीर से अपना ध्यान हटा सकते हैं। उसके लिए साधना करनी पड़ेगी। ध्यान करते समय कुछ क्षणों के लिए शरीर से कोई संबंध नहीं रहना चाहिए।

भगवान महावीर के युग की बहुत सारी बातें हैं।

भगवान महावीर ध्यान में थे। उनके कानों में कीलें ठोकी गईं। भगवान महावीर ध्यान में ही रहे। वे ध्यान से हटे नहीं। ऐसे बहुत सारे आख्यान हैं।

लगभग डेढ़-दो सौ साल पुरानी एक घटना है। एक साध्वी जी ध्यान

में लीन थीं। एक सियार आया और उनका शरीर नोचना शुरू कर दिया। वे ध्यान में अडिग रहीं। शरीर का कितना ही भाग सियार ने नोच लिया, किंतु वे हटी नहीं। यदि हमारा मन शरीर की तरफ रहेगा तो शरीर में स्थिरता रहना बहुत मुश्किल है। यदि शरीर की पीड़ा मन तक पहुँच गई तो मन विचलित हुए बिना नहीं रहेगा। वह शरीर की रक्षा करने के लिए तैयार होगा। किंतु जब शरीर से संबंध तोड़ लिए तो उससे कोई लेना-देना नहीं रहेगा।

खंधक ऋषि की खाल खींची गई। वे अपने आप में स्थित हो गए। उन्होंने मान लिया कि शरीर मेरा नहीं है। ऐसा मान लेने पर शरीर के साथ जो होगा होता रहेगा, उसकी पीड़ा नहीं सताएगी। शरीर के तल से ऊपर उठने पर शरीर की पीड़ा पीड़ित करने वाली नहीं होगी। पर यह कार्य बिना धर्म के नहीं हो सकता। बिना धर्म श्रद्धा के नहीं हो सकता। यह कार्य धर्म की श्रद्धा से होगा। धर्म पर पूरा विश्वास होगा, धर्म पर अटूट आस्था होगी तो कह सकते हैं कि तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म न जाए। अन्यथा सामायिक-पौषध में बैठे रहेंगे तो भी उन कष्टों से बचने की कोशिश करेंगे। जैसे ही पीड़ा होगी विचलित हो जाएंगे।

यह केवल आपकी बात नहीं है, हम भी इसमें शामिल हैं। केवल श्रावकों की बात नहीं है, साधु भी इसमें शामिल हैं। साधुओं का मन भी विचलित हो जाता है, साधु भी उपचार के लिए तैयार हो जाते हैं। किंतु यह निश्चित है कि मौत आ जाने पर कितने ही डॉक्टर खड़े हो जाएं, वे बचाने में समर्थ नहीं होंगे मौत नहीं आई होगी तो बात अलग है। अतः उसके लिए धैर्य परम औषध है।

सनत्कुमार चक्रवर्ती में धैर्य था। उनको 16-16 महारोग पैदा हो गए, फिर भी उन्होंने कहा, मुझे चिकित्सा नहीं करानी है।

बिना चिकित्सा के रहना आसान बात है क्या? सरल बात है क्या?

एक छोटा-सा रोग विचलित कर देता है। उसका कारण है कि हम शरीर के तल पर जीने वाले जीव हैं। शरीर के साथ तादात्म्य संबंध जोड़कर जी रहे हैं। जिन्होंने शरीर से संबंध तोड़ लिया, वे शरीर के साथ कुछ भी होने पर परेशान नहीं होते। 16-16 महारोग पैदा होने के बाद भी सनत्कुमार साधु जीवन की आराधना करते रहे। किसी से कोई शिकायत नहीं की, न ही किसी

डॉक्टर से राय-परामर्श ही ली।

देवता, डॉक्टर का रूप बनाकर आए और कहा, मुनिराज! हमें आपके शरीर की चिकित्सा करनी है। सनत्कुमार मुनि ने कहा, मुझे शरीर की चिकित्सा कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। ये रोग मेरे लिए प्रेरणास्पद हैं। इन्होंने मुझे जागृत किया। इनको हटाने की आवश्यकता नहीं है।

इतनी सहनशीलता कब होगी?

जब शरीर के साथ संबंध नहीं रहेगा तब ऐसी सहनशीलता प्रकट होगी। शरीर के साथ संबंध नहीं रखने का कार्य धर्म करवाता है। धर्माराधना करने से ऐसी दृष्टि पैदा होती है कि यह शरीर मेरा नहीं है। '**इदं न मम**' फिर कौन है मेरा?

(श्रोतागण बोले- आत्मा हमारी है)

अच्छा! बोल रहे हैं कि आत्मा हमारी है, किंतु इस पर कायम रहने की आवश्यकता होती है।

दूसरा तल होता है मन का। मन का तल भी स्वस्थ होता है तो पीड़ा नहीं होती। मन के विपरीत कोई कुछ बोल दे तो मन में ऊहापोह चालू हो जाती है कि उसने मेरे विषय में ऐसा क्यों बोला। मैं जैसा हूँ वैसा हूँ। उसको ऐसे बोलने का क्या मतलब था।

इस तरह के विचार मन में क्यों पैदा होते हैं? क्योंकि हम मन के तल पर जी रहे हैं। जो मन के तल पर नहीं जीता, उसे कोई कितना भी बोल दे वह सोचेगा कि उसके बोलने से मेरा कुछ भी नहीं जा रहा है। उसका मुँह है, बोल रहा है तो बोल रहा है, मेरा क्या जा रहा है। उसे कोई दुख नहीं होगा, पीड़ा नहीं होगी।

अर्जुन माली दीक्षित हुआ, साधु बना। बोलने वालों ने क्या-क्या नहीं बोला होगा। 'सौ-सौ चूहा खाय, बिल्ली (बिलाड़ी) हज को चली।'

लोग बोलने लगे, अरे साहब! देखो, यह साधु बन गया। यह साधु बना फिर रहा है। 1141 लोगों को मारकर साधु बन गया।

हम तो ऐसे कभी नहीं बोलते हैं न! अर्जुन माली ने उन लोगों के सारे वचन सुने। किसी ने उनको पत्थरों से मारा तो किसी ने डण्डे मारे। किसी ने कुछ, किसी ने कुछ किया। उनको चोट भी लगी, किंतु उन्होंने अपने मन को

स्वस्थ बनाए रखा। वह चोट मन को उद्विग्न नहीं कर पाई। बहुत ऊँची बात है कि ऐसे समय में हमारा मन स्थिर बना रहे, एकरूप बना रहे। कोई गाली बके उसके पहले जैसा मन रहे, गाली बकने के बाद भी वैसा ही मन रखना, उसमें कोई फर्क नहीं आने देना बहुत कठिन काम है। मन एकसमान होने का मतलब है कि हम मन के तल पर नहीं, आत्मा के तल पर जी रहे हैं। धर्म आत्मा के तल पर पहुँचाने का काम करता है। धर्म की श्रद्धा आत्मा के तल पर पहुँचाने का काम करती है। धर्म श्रद्धा बताती है कि तुम शरीर तक सीमित नहीं हो, तुम मन तक सीमित नहीं हो। तुम्हारा अस्तित्व आत्मा के रूप में है।

जब आत्मतत्त्व में दृष्टि स्थित हो जाएगी तो कोई समस्याए परेशान करने वाली नहीं होगी। वही आत्मरमण अवस्था है। उस अवस्था में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होगी।

'रोग-शोक सब भग-भग जाता'

शोक, प्रिय वस्तु के वियोग से होता है। सामान्यत: प्रिय व्यक्ति के अलग होने से मन में शोक व्याप्त हो जाता है, मन उदास हो जाता है, मन में खिन्नता आ जाती है, किंतु जो धर्म को जान लेता है, उसके मन में कभी खिन्नता नहीं आती।

श्रीकृष्ण वासुदेव धर्म तत्त्व को जानने वाले थे। रुक्मिणी जब श्रीकृष्ण के सामने साधु जीवन स्वीकार करने के लिए निवेदन करती है कि मैं दीक्षा लेना चाहती हूँ, मैं साधु जीवन स्वीकार करना चाहती हूँ तो श्रीकृष्ण वासुदेव के मन में खिन्नता पैदा नहीं हुई। उनके मन में आर्तभाव नहीं बना। मन में विषाद पैदा नहीं हुआ कि मैं रुक्मिणी के बिना कैसे रहूँगा। रुक्मिणी आदि पटरानियों को लेकर वे हर्ष के साथ भगवान के सम्मुख आए और कहा कि ये मेरी पटरानियां संसार भय से उद्विग्न हैं, ये देवानुप्रिय से दीक्षा लेना चाहती हैं, इनका नाम-गोत्र श्रवण करना भी दुर्लभ है पर ये अब प्रव्रज्या स्वीकार करने को आतुर हैं। देवानुप्रिय! आप इन्हें शिष्या के रूप में दीक्षित करें, शिक्षित करें, मुंडित करें।

श्रीकृष्ण वासुदेव स्वयं दीक्षित नहीं हुए क्योंकि उनको कर्मों का योग था। सभी वासुदेव निदानकृत होते हैं। वे साधु जीवन स्वीकार नहीं कर पाते। धर्म मन को सावधान करता है कि जो चीज तुम्हारी है ही नहीं, उस पर अधिकार जमाने की कोशिश क्यों करना। वस्तुत: ये सारे संबंध हैं। वे तुम्हारे

नहीं, तुम उनके नहीं हो। ये भाव हमारे भीतर शोक पैदा नहीं होने देते, खिन्नता पैदा नहीं होने देते। इसलिए कहा गया है–

'रोग-शोक सब भग-भग जाता, एक धर्म ही जग जस पाता'

एक धर्म ही है जिसकी जग में यशस्विता रही है।

अयोध्या में रामराज होने की बातें हो रही थी, राजतिलक की बातें हो रही थी। घर-घर गीत गूँज रहे थे–

'कल राम राज है जी, कल राम राज है'

अयोध्या में सारे लोग खुश हो रहे थे। घर-घर मिठाई बाँटी जा रही थी। सारे लोग हर्षोल्लास में झूम रहे थे किंतु राजमहल के एक कोने में बैठी मंथरा, कैकेयी के कान भरने की कोशिश कर रही थी जैसे कुछ दवा को इंजेक्ट किया जाता है, वैसे ही मंथरा ने कैकेयी के दिमाग में इंजेक्ट किया। कैकेयी के दिमाग में कुछ बात डाली तो कैकेयी ने कहा कि तुम व्यर्थ की बातें क्यों कर रही हो। पिता का बड़ा बेटा ही राजगद्दी पर बैठता है। राम का अधिकार है, इसलिए उसका राजतिलक होना ही चाहिए।

मंथरा ने कहा, 'ऐ भोली बहन! थने किकर समझाऊँ।' मंथरा ने कहा, राज कुल में जन्म लेने के बाद भी तुझे बात समझ में नहीं आ रही है। वह कहती है कि राम के राजा बनने में बहुत बड़ा राज है। भरत ननिहाल में है, भरत को क्यों नहीं बुलाया जा रहा है। मंथरा कहती है कि फिर तुम राजमाता नहीं कहलाओगी। फिर तुम्हें कौशल्या की हाजिरी में खड़ा रहना होगा।

मंथरा द्वारा कान भरने पर कैकेयी के दिमाग में ये बातें घर कर गईं। कैकेयी ने राजा दशरथ से दो वरदान माँग रखे थे। कैकेयी गई दशरथ के सामने और कहा कि मेरे दो वरदान बाकी हैं, वह मुझे चाहिए। दशरथ ने कहा, बोलो क्या चाहिए? कैकेयी ने कहा, राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए अयोध्या की राजगद्दी माँग रही हूँ।

यह सुनते ही दशरथ के तो मानो जीते जी प्राण निकल गए। दशरथ ने कभी सोचा नहीं था कि ऐसा भी कुछ होगा। उनके मन में भय जरूर था कि कैकेयी कुछ गड़बड़ी ना कर दे। दशरथ, कैकेयी से थोड़ा झेंपते भी थे। कैकेयी थोड़ी होशियार पड़ती थी। किंतु दशरथ को यह विश्वास नहीं था कि कैकेयी ऐनवक्त पर समस्या खड़ी कर देगी। दशरथ न तो हाँ कह पा रहे थे और न ही ना

कह पा रहे थे। वे जमीन पर गिर गए।

राम, पिता के दर्शन करने, वंदन-नमस्कार करने के लिए आए। उन्होंने पिता को जमीन पर पड़े हुए देखा। एक आधुनिक लेखक ने बताया है कि दशरथ जमीन पर लेटे हुए कैकेयी के पाँव पकड़ने की कोशिश कर रहे थे और कैकेयी पीछे हटती जा रही थी।

दशरथ ने कहा, आप कोई दूसरा वरदान माँग लो तो कैकेयी ने कहा, आप कह दो कि मैं यह वरदान नहीं दे सकता।

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहुँ बरु वचन न जाई।।

रघुकुल की यह रीति रही है कि प्राण जाए तो जाए, किंतु वचन नहीं जाने चाहिए। दशरथ, कैकेयी के पैर पकड़ने के लिए आगे बढ़ रहे थे और कैकेयी पीछे खिसक रही थी। राम ने यह दृश्य देख लिया।

राम ने दशरथ से पूछा कि ऐसा क्या हो रहा है तो दशरथ बोल नहीं पाए। कैकेयी ने कहा, देखो राम! मैंने दो वरदान इनके पास जमा कर रखे थे कि जब आवश्यकता होगी, तब माँग लूंगी। अभी मैंने दो वरदान माँगे, किंतु ये न तो हाँ कर रहे हैं और न ही ना कह रहे हैं। राम ने पूछा, क्या वरदान है तो कैकेयी ने कहा कि मैंने तुम्हारे लिए चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए राजगद्दी माँगी है।

राम ने कहा, यह तो बहुत बढ़िया बात है। दशरथ कहने लगे, राम! वन की तरफ मत जाना, किंतु राम कहाँ चुप रहने वाले।

इस सारी कहानी का सार है कि राम अयोध्या के लिए प्रस्थान किए तो उनके मन में दुख था क्या? राम के मन में शोक था क्या?

(श्रोतागण बोले- कोई दुख नहीं था)

राम के मन में कोई दुख नहीं था। उनको पीड़ा नहीं हुई, बल्कि वे तो हर्षित थे कि मुझे कुदरत के साथ रहने का मौका मिल रहा है। कुदरत से कुछ सीखने-समझने का मौका मिल रहा है।

ऐसे प्रसंग पर आप कितने स्वस्थ रह पाते हैं? दुखी तो नहीं हो जाते? आपके मन में खिन्नता तो पैदा नहीं होती?

हम राम के साथ अपने मन की मैचिंग करें कि ऐसा क्या था राम में

कि ऐसा वज्रपात होने के बाद भी उनके मन में द्वेष भावना नहीं आई। कोई हीन भावना नहीं आई कि पता नहीं लोग क्या-क्या व्यंग्य कसेंगे। लोग बोलेंगे बन गया राजा, बैठ गया राजगद्दी पर।

मन में ऐसे विचार आ जाते हैं, कोई शादी करने के लिए ससुराल जाए और वहाँ लड़की कह दे कि मैं शादी नहीं करूंगी तो उसके मन में क्या विचार आएगा? क्या भाव आएगा?

आचार्य पूज्य श्री उदयसागर जी म.सा. के लिए कहा जाता है कि वे शादी करने के लिए गए तो तिलक करते समय साफा सिर से नीचे गिर गया। साफा गिरने के बाद उदयसागर जी ने कह दिया कि अब बस, जो भार गिर गया, उसे वापस सिर पर नहीं रखना। परिवारवालों ने समझाने की लाख कोशिश की, ससुराल वाले भी इज्जत की बात करने लगे किंतु उदयसागर जी ने कहा कि मेरा भी अपना जीवन है। मेरा भी कोई सवाल है। जो घटना घट गई वह घट गई। जो हुआ सो हुआ। अब मैं इस पगड़ी को सिर पर रखने वाला नहीं हूँ।

वैरागी को क्या चाहिए?

'वैरागी हूँ, वैरागी को ना धन चाहिए, ना घर चाहिए,
एक वीर प्रभु की शरण चाहिए'

क्या चाहिए वैरागी को?

लोग बोलते हैं कि हमारे घर की लाज है। हमारे घर की इज्जत है। कुछ भी हो, किंतु जिसका जागरण हो जाता है उससे ये सारी बातें अलग हो जाती हैं। उसका तल बदल जाता है। शरीर का तल नहीं रहता, मन का तल नहीं रहता। वह आत्मा के तल पर पहुँच जाता है। आत्मा के तल पर पहुँच जाने के बाद संसार की बातें उसे उद्विग्न नहीं कर पातीं।

राम भी आत्मा के तल पर पहुँचे थे, इसलिए वनवास जाते समय उनके मन में कोई खिन्नता पैदा नहीं हुई। कोई दुःख पैदा नहीं हुआ। उन्होंने बड़े आराम से अयोध्या से वनवास की यात्रा की।

'रोग-शोक सब भग-भग जाता, एक धर्म ही जग जस पाता'

राम रिलेशन में हमारे क्या लगते हैं?

क्या वे दादा-पड़दादा लगते हैं? क्या वे लड़दादा-खड़दादा लगते हैं?

(श्रोतागण बोले- कुछ नहीं लगते)

उनके साथ कुछ रिलेशन नहीं होने के बाद भी हम किस कारण से उन्हें याद कर रहे हैं?

धर्म के प्रति निष्ठा के कारण उन्हें याद कर रहे हैं। उनका जीवन धर्म निष्ठा से युक्त था।

भगवान महावीर को क्यों याद कर रहे हैं?

धर्म के प्रति निष्ठा के कारण भगवान महावीर को याद कर रहे हैं। कितनी भी विकट परिस्थितियां बनीं उन्होंने धर्म को नहीं छोड़ा। हम कहते हैं- 'राम भक्त हनुमान।'

क्यों नाम लिया जा रहा है हनुमान का? किस कारण से उनका नाम लिया जा रहा है?

क्योंकि वे राम भक्त बन गए। वे भक्ति में इतना सराबोर हो गए कि अपनी चिंता ही छोड़ दी। उन्हें अपनी चिंता नहीं सता रही थी। न अपमान की परवाह, ना सम्मान की चाह। ऐसी भावना वाले अमर हो जाते हैं।

'एक धर्म ही जग जस पाता'

धर्म ही ऐसा है जिससे आदमी जग में यश को प्राप्त कर लेता है, यशस्वी बन जाता है। धर्म की आराधना, धर्म की साधना, धर्म की श्रद्धा बलवती होनी चाहिए। दृढ़ होनी चाहिए। इतनी कि शरीर और मन के तल से ऊपर उठ जाएं। यह शरीर छूटने वाला है। मन छूटने वाला है। मन और तन यहीं छूटेगा। जैसे शरीर छूटता है, वैसे ही मन भी छूटता है, किंतु हम सोचते हैं कि क्यों छूटेगा! दुनिया को मरते हुए देखकर भी यह नहीं सोचते कि हम भी मरेंगे, किंतु मरना सबको है।

'मौत की हवा का झोंका एक आएगा,
जिंदगी का वृक्ष तेरा टूट जाएगा।'

यह मौत का झोंका किसको आएगा और किसको नहीं आएगा?

(श्रोतागण बोले- सबको आएगा)

क्या तीर्थंकर भगवंतों को मौत का झोंका नहीं आया?

क्या चक्रवर्तियों को मौत का झोंका नहीं लगा? बोलो ना भाई!

(श्रोतागण बोले- सबको मौत का झोंका लगेगा)

कोई बचा क्या? क्या वासुदेव-बलदेव, बड़े-बड़े राजा-राणा और छत्रपति बच गए मौत से! मौत न अमीरी देखती है और न ही गरीबी। वह

अपना शिकार ढूँढती है। हजारों आदमियों के बीच से अपना शिकार ढूँढ लेती है। जैसे क्रेन उसको ही उठाती है, जिसको उठाना होता है, वैसे ही मौत रूपी क्रेन हजारों लोगों के बीच से उसे उठा लेगी जिसको उठाना होगा।

बंधुओ! धर्म के संस्कार मजबूत रहेंगे तो मौत के कितने ही झोंके लगने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अमरता की ओर चलेंगे।

सुनंदा चारित्र चल रहा है। सुनंदा कर्तव्य पथ पर सुदृढ़ रहने वाली साधिका थी। कर्तव्य पथ पर सुदृढ़ रहना उसने अपने परिवार से सीखा था। ससुराल जाने की उसकी तैयारी हो रही थी।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
माता कहती बिटिया राणी, बिटिया बनती है बहुराणी,
ऐसी है जगरीत, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
मात-पिता अब सास तुम्हारी, बिटिया बनकर रहना प्यारी,
घर को अपना मान, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
उन्नत जीवन है व बनेगा, देव तुम्हें यह शक्ति देगा,
रखना मन उल्लास, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

पिता ने सीख दी और अंत में कहा कि तुम्हारा पथ मंगलमय बने। सुनंदा, माता की तरफ अभिमुख होकर माता को प्रणाम करने लगी। माता से आशीष लेने लगी। माता ने कहा, बेटी! जितनी भी बेटियाँ हुई हैं वे बहुरानी बनती हैं। पीहर से ससुराल जाती हैं। इस जग की यह रीत बनी हुई है। उसी रीत का पालन हम कर रहे हैं। माता आगे कहती है कि ध्यान रखना, अब तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी सास है, तुम उनकी बेटी बनकर रहना। जैसे यहाँ बेटी बनकर जी रही हो, वैसे ही वहाँ पर बेटी बनकर रहना। वहाँ पर भी अपनत्व भाव को जगा लेना। परायेपन का भाव दिमाग में मत रखना।

जहाँ अपनत्व के भाव जुड़ जाते हैं वहाँ एकात्म भाव बन जाते हैं। एकात्म भाव का मतलब क्या हुआ?

'तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है'

भक्त और भगवान में भी एकात्म भाव जुड़ जाते हैं। हम भी परिवार में एकात्म भाव जोड़ लेंगे तो कठिनाई नहीं आएगी। एकात्म भाव का मतलब है, जिससे आपको जुड़ाव है, उसने यदि आपको कुछ बुरा भी कह दिया तो जल्दी

से वह बात चुभेगी नहीं। किसी के प्रति मन में थोड़ा अलगाव होने पर वह थोड़ी-सी भी कुछ बात कहेगा तो वह बात चुभेगी। तीक्ष्ण लगेगी। उससे मन आंदोलित होगा। मन प्रतिकार करने की चेष्टा करेगा। यदि बोल नहीं पाए तो भी मन ही मन कुछ विचार पैदा होंगे। इसलिए माता, सुनंदा को समझा रही है कि बेटी! अब से तुम्हारे मात-पिता तुम्हारी सास है। अपने ससुराल को अपना घर मान लोगी, अपनत्व संबंध जोड़ लोगी तो तुम्हारा जीवन उन्नत बनेगा। माता आगे कहती हैं कि पीहर में बिताये गए तुम्हारे समय को देखते हुए, मैं यह विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि तुम्हारा भविष्य भी उज्ज्वल है। तुम जैसा उल्लासमय जीवन यहाँ जी रही हो, वैसा ही उल्लास ससुराल में बनाए रखना। उसमें अंतर मत आने देना। ऐसे उल्लास से कठिनाइयों की बहुत सारी घाटियाँ पार की जा सकती हैं। उल्लास नहीं रहेगा तो छोटी-से-छोटी घाटी भी बड़ी ऊँची लगने लगेगी। बहुत कठिन लगने लगेगी। उसको पार पाना कठिन होगा।

इस प्रकार से सुनंदा की माँ ने उसको शिक्षा दी। सुनंदा सिर झुकाते हुए, हाथ जोड़ते हुए उन बातों को स्वीकार करती है। ये सब कहते हुए माँ का गला रूँध गया, दिल भर आया। आवाज थमने जैसी हो गई फिर भी वह हिम्मत कर कुँवर साहब के अभिमुख होकर कहने लगी, कुँवर साहब!

कुँवर साहब को भी वह कहती, आँखें उसकी अश्रु भरती,
रखे सदा खुशहाल, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
सुकोमल है बिटिया मेरी, बांहे पकड़ी उसने तेरी,
रखें आप अब ध्यान, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

इतना कहते ही माँ की आँखों में आँसू आ गए। उसने कहा, मेरी बिटिया बड़ी सुकोमल है। आप मेरी बिटिया का ध्यान रखना, यदि उससे कोई गलती हो जाए तो क्षमा कर देना। यह बड़े सुख में, कोमलता से पाली-पोसी गई है। मुझे विश्वास है कि यह आपका साथ निभाएगी, फिर भी यदि कोई ऊँची-नीची बात हो जाए तो आप इसको निभा लेना। मुझे पूरा विश्वास है कि आप इसका ध्यान रखोगे। सुनंदा की माता ने आगे कहा-

'उल्लंघे गर आन तुम्हारी, करना क्षमा यह अर्ज हमारी,
सौंप रहे तुझ हाथ, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सास ने अंतिम बात कही कि यदि आपने कुछ कहा और इसने नहीं

माना तो भी एक बार आप इसको क्षमा करना। हमने इसका हाथ, आपके हाथ में पूरे विश्वास के साथ सौंपा है। हमारी बेटी आपके साथ, आपके पास, आपके घर में खुशहाल रहे, प्रसन्नता से रहे, ऐसा आप ध्यान रखना।

अब आगे क्या स्थिति बनती है यह अपन समय के साथ सुन पाएंगे।

सुनंदा और कुँवर साहब वे शिक्षाएँ अपने जीवन में धारण करेंगे तो उनका जीवन दुखी नहीं होगा। उनका जीवन सुखमय बनेगा। वे शिक्षाएँ हमारे जीवन में भी उतनी ही काम की हैं। ऐसी सुंदर शिक्षाएं जिस किसी ने भी धारण कर लीं, उसके जीवन में कैसी भी कठिन विपदा आ जाए, वह दुखी नहीं होगा। वे शिक्षाएँ उसके जीवन में ढाल बनकर रहेंगी। उस ढाल से कठिनाइयाँ दूर रहेंगी। हम भी प्रयत्नशील बनें। हमें भी यदि वह शिक्षा अच्छी लग रही है, हमें भी पसंद आ रही है तो उन बातों को स्वीकार करना चाहिए। कौन-सी बात कब, किस समय महत्त्वपूर्ण बन जाए कुछ नहीं कह सकते।

सुनंदा के जीवन के माध्यम से सुनी गई बातों को अपने जीवन में स्वीकार करें। अपने भीतर स्टॉक करके रखें। सुनी बातें न जाने कब काम आ जाएं और विपदाओं को, कठिनाइयों को दूर करने में समर्थ बनें। इस प्रकार का लक्ष्य बनाएंगे तो धन्य बनेंगे।

आज महासती श्री जयति श्री जी म.सा. मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रही हैं। कल उनकी 29 की तपस्या थी और तीस के पच्चक्खाण ली हुई थीं। महासती चंदना श्री जी म.सा. की आज 27 की तपस्या है। जो तपस्या नहीं कर रहे हैं वे तपस्या की अनुमोदन का लाभ लें। तीनों दिन के लिए भोजन में जो भी चीज आए उसकी प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। हो सके तो मन से भी प्रतिक्रिया पैदा मत होने देना। यदि मन से हो जाए तो वचन से बाहर मत आने देना। अपने चेहरे पर प्रतिक्रिया का भाव मत आने देना।

करा दूँ पच्चक्खाण?

(श्रोतागण बोले- करा दो)

(प्राय: श्रोताओं ने पच्चक्खाण किए)

इतना ही कहते हुए विराम।

पुनश्च: धामण गाँव रेलवे। उत्साह मुनि जी ने उत्साह से संथारा और साधु जीवन स्वीकार किया। उत्साह मुनि जी, उत्साह से संथारा में गतिशील हैं।

आज उनके संथारे का 25वाँ दिन है। वे मासखमण के नजदीक हैं। हालांकि वह मासखमण नहीं कहा जा सकता। मासखमण में या तपस्या में आगे विराम है पर संथारा में आगे रास्ता बंद है। वापस मुँह खुलने वाला नहीं है। अभी उनकी तिविहार संलेखना चल रही है। शासन दीपक जयप्रभ मुनि जी म.सा., अनन्य मुनि जी म.सा. उत्साह के साथ उत्साह मुनि जी की सेवा में लगे हुए हैं।

26 जुलाई, 2023

7

गौरव गाथा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

लोग सुख की कामना करते हैं, आकांक्षा करते हैं और यह चाहते हैं कि मेरी सत्ता बनी रहे। धर्म, सुख का त्राण करने वाला है। त्राण मतलब रक्षा करने वाला। रामायण के माध्यम से हम सभी राम और भरत के संतोष रूपी सुख को जानते हैं, समझते हैं, सुनते हैं। आज भी राम और भरत की गौरव गाथा गाते मानव नहीं अघाता।

'राम भरत की गौरव गाथा, गाता मानव नहीं अघाता'

क्या खासियत थी राम और भरत में जो उनकी गौरव गाथा गाते लोग नहीं अघाते?

रामायण यह कहती है कि भरत जैसा भाई मिलना मुश्किल है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार भाई थे। चारों भाइयों का प्रेम इतिहास का पन्ना बन गया। भाई के प्रति भाई का प्रेम देखना हो तो रामायण में देख सकते हैं।

आज क्या हो गया है? आज भाई से बढ़कर कोई शत्रु नहीं होगा। शत्रु को जिस आँख से देखा जाता है उसी आँख से भाई को देखा जा रहा है। लोग कहते हैं कि युग बदल गया है, पर युग नहीं बदला है, लोग बदल गए हैं।

इसके पीछे का कारण धन और संपत्ति है। धन का बँटवारा है। धन के कारण से मन में भेद पड़ रहा है। राम जैसे भाई सहज रूप से राज्य का त्याग करके निकल जाते हैं। राम, राज्य का त्याग करके वनवास के लिए निकल गए। भरत को ननिहाल से बुलाया जाता है। कैकेयी बड़ी खुश थी कि अब

भरत आएगा, राजगद्दी संभालेगा और मैं राजमाता बनूंगी, किंतु लोग कैकेयी पर थूक रहे थे कि यह कैसी कर्कशा निकली। राजघराने में इसने जहर घोल दिया। कैकेयी खुश थी कि राजमाता का पद मुझे मिलेगा। वह मन-ही-मन पता नहीं क्या-क्या कल्पना कर रही थी।

भरत आए। भरत के आने पर कैकेयी ने उनके सामने जैसे ही राजगद्दी संभालने की बात रखी, भरत ने कहा- **'भूतो न भविष्यति'**

भरत ने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता। मैं राजगद्दी को स्वीकार नहीं कर सकता। राजगद्दी के अधिकारी राम हैं... राम हैं... और राम ही रहेंगे। भरत ने कहा कि मैं राजतख्त को स्वीकार नहीं कर सकता। यह सुनकर कैकेयी के विचारों पर सौ घड़े पानी पड़ गए। कैकेयी की हालत विचित्र हो गई। वह भरत से कहने लगी, बेटा भरत! यह क्या कर रहे हो? मैंने तुम्हारे हित का विचार किया है, तुम्हारे अधिकार की बात की है, किंतु तुम इनकार कर रहे हो। मैं लोगों में फालतू ही बदनाम हो गई। मेरी कितनी फजीहत हो रही है। अब तुम यदि राजतख्त को स्वीकार नहीं करोगे तो मैं कहीं की नहीं रहूंगी।

भरत ने कहा, माँ! तुम अन्य जो कहो मैं करने के लिए तैयार हूँ, किंतु राजतख्त को स्वीकार नहीं कर सकता। इस पर भाई राम का अधिकार है। राम के अधिकार की चीज मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

भरत के अटल चेहरे को देखकर, अटल विचारों को सुनकर कैकेयी सकपका गई। कैकेयी को लगने लगा कि मैं कितना ही समझाऊं यह समझने वाला नहीं है। यह इसके चेहरे की दृढ़ता बता रही है। यह अपने विचारों पर मक्कम है। कैकेयी के विचार भी बदले। भरत कहने लगे, राम को बुलाकर लाना है, मनाकर लाना है। उनकी जगह पर मैं वनवास जाने के लिए तैयार हूँ, मैं वनवास स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ, किंतु उन्हें अयोध्या छोड़कर जाने नहीं दूँगा।

राम को अयोध्या में रोकने के कई उपक्रम हुए, पर राम रुके नहीं। राम वन को प्रस्थान कर गए। भरत ने राम को वापस लाने का लक्ष्य बनाया। वे प्रस्थान को प्रस्तुत हुए तो कैकेयी भी साथ चली। न केवल कैकेयी अपितु अन्य अनेक जनों के साथ-साथ राजगुरु वशिष्ठ जी भी साथ चले। राम के पास भरत पहुँचे। भरत ने जैसे ही राम को देखा उनके पैरों में गिर गए। भरत, राम से

कहने लगे, भैया आप वापस चलो। आपको वापस अयोध्या चलना होगा। वापस पधारना होगा। राम, भरत को अपने सीने से लगाने के लिए उठाने लगे, किंतु भरत उनके पैरों को पकड़े रहे। पैरों को छोड़ा नहीं।

भरत ने कहा कि पहले आप स्वीकृति दीजिए कि हमारे साथ अयोध्या चलेंगे और आप कहें तो आपकी जगह मैं चौदह साल के लिए वन में रह जाऊंगा। राम ने कहा, भाई सुनो तो सही, किंतु भरत कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। भरत ने कहा, आप मेरी सुनें। यह मेरा बालहठ है, पहले आप मेरे बालहठ को पूरा कीजिए। आप हाँ कह दीजिए, बाद में आप जो कहेंगे मैं सब सुनूंगा।

ऐसा दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सारे लोग पशोपेश में पड़ गए। सोचने लगे कि क्या किया जाए! लोग जान रहे थे कि राम अपने वचनों से पीछे हटने वाले नहीं हैं और भरत भी अपनी जिद से पीछे हटने वाले नहीं हैं। काफी कशमकश की स्थिति थी। न राम मानने को तैयार हो रहे थे और न भरत ही मानने को तैयार थे। सारे लोग बुत बनकर देख रहे थे। किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी उन्हें समझाने की। समझाने के लिए थोड़ा-सा प्लस प्वाइंट चाहिए। थोड़ा-सा दिखना चाहिए कि इससे कहूंगा तो यह मान लेगा, तो दूसरे को भी मनाने की कोशिश करेंगे। किंतु वहाँ तो दोनों के विचार अटल हैं। न राम मानने की तैयारी में हैं और न भरत। किसको समझाएं, किसको मनाएं?

राम अपने स्थान पर सही हैं तो भरत अपने स्थान पर गलत नहीं हैं। कैसे कहें भरत से कि तुम मान जा और राम को कैसे कहें कि आप भरत की बात स्वीकार कर लें। सारे लोग पशोपेश में थे। यहाँ तक कि वशिष्ठ जी भी द्रष्टा बनकर खड़े थे। उनको भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वे भी कुछ बोल नहीं रहे थे। राम ने भरत को उठाकर सीने से लगाया। समझाने का प्रयास किया। पर भरत कहाँ समझने वाले थे।

ऐसे समय में सीता ने इस गुत्थी को सुलझाने का उपाय निकाला। उसने वशिष्ठ जी से कहा, आप राजगुरु हैं, क्या देख रहे हैं आप। सरयू से कलश भरकर पानी मँगाइए और राम का राज्याभिषेक कीजिए।

सीता की बात सुनकर राम परेशानी में आ गए कि सीता यह क्या बोल रही है। आदमी के सामने प्रसंग आते ही विचार चलने लगते हैं। राम

विचार करने लगे कि सीता को यदि जंगल के कष्टों से घबराहट हुई हो तो यह वापस अयोध्या जा सकती है, किंतु इसने ऐसा खेल क्यों खेला कि राम का राज्याभिषेक कीजिए। राम, सीता की तरफ प्रश्नवाचक नजर से देखने लगे।

उतने में सरयू का पानी आ गया और राम का राज्याभिषेक हो गया। सारे लोग बोलने लगे– 'अयोध्यापति राजा राम की जय हो।' राम काफी पशोपेश में थे कि यह क्या हो गया। वे कुछ कहें, इतने में सीता ने राम से कहा– आप अब अयोध्या के राजा बन गए। राम को अच्छा नहीं लग रहा था। वे विचार कर रहे थे कि राजा ही बनना चाहता तो अयोध्या से निकला ही क्यों। आगे सीता कहती हैं, आप अयोध्या के राजा बन गए, राजा की आज्ञा अपरिहार्य होती है। आप भरत को आदेश दीजिए कि जब तक वनवास से आप नहीं लौटें, तब तक वे राजगद्दी संभालें। राजा का आदेश सर्वमान्य होता है, उसको टाला नहीं जा सकता।

अब राम के चेहरे पर खुशी छा गई। सीता के प्रति धन्यवाद के भाव पैदा हुए। सीता ने इस गुत्थी को कितनी आसानी से सुलझा दिया।

राम, भरत से कहते हैं, अयोध्या के राजा राम की आज्ञा है कि जब तक मैं वनवास से लौटकर नहीं आऊँ तब तक तुम्हें राजगद्दी संभालनी है। तब तक राज्य का संचालन करना है।

क्या करना? अरे! बोलो तो सही कि क्या करना?

(श्रोतागण बोले– राम जब तक वनवास से नहीं आएं, तब तक भरत को राजगद्दी संभालनी है)

अब भरत क्या बोलें! राजाज्ञा के सामने कुछ बोलने की बात ही नहीं होती। राजाज्ञा, राजाज्ञा होती है। जब तक आज्ञा नहीं है। तब तक दस बातें हो सकती हैं, किंतु आज्ञा दे दी जाए, आज्ञा जाहिर हो जाए उसके बाद कोई तर्क नहीं, कोई वितर्क नहीं, कोई किंतु–परंतु नहीं होता।

भरत सिर झुकाकर खड़े हो गए और कहा–भगवन्! यह खड़ाऊँ मुझे दीजिए। राम ने पैरों में खड़ाऊँ पहना हुआ था। राम ने पूछा, इसका क्या करोगे? यह हम वनवासियों के लिए जरूरी है, इसका तुम क्या करोगे? भरत ने कहा, भैया! ये ही राजतख्त पर प्रतिष्ठित होंगे, इसी को राजतख्त पर रखूंगा। राम ने खड़ाऊँ दे दिये।

भरत अयोध्या लौटे और राज सिंहासन पर खड़ाऊँ को प्रतिष्ठित कर राज्य का संचालन करने लगे।

यहाँ पर जो बात विचार करने योग्य है, वह बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

राम वनवास कितने साल तक रहे?

(श्रोतागण बोले- 14 साल तक रहे)

राम 14 साल तक वनवास रहे। लगभग 14 वर्षों तक भरत ने राज्य का संचालन किया। भरत ने राजतख्त के पास बैठकर सारे कार्य सम्पन्न किए, किंतु एक बार भी उनके मन में यह विचार पैदा नहीं हुआ कि राज सिंहासन पर बैठूं तो सही! राज सिंहासन पर बैठकर देखूं तो सही कि कैसा महसूस होता है, समझ में तो आए! उनके मन में ऐसा कोई विचार नहीं आया। आज के राजनेताओं को यह बात समझ में आ जाए तो बहुत सारी दुविधाएं खत्म हो जाएं।

आप कहोगे, म.सा.! दुविधा क्या, समस्या का समाधान हो जाएगा। लोग कहेंगे, सारे लोग ऐसे ही निस्पृह हो जाएंगे तो सत्ता कौन संभालेगा? सभी कह देंगे कि मैं नहीं बैठूंगा, मैं नहीं बैठूंगा तो सत्ता कौन संभालेगा? किसी-न-किसी को तो आगे आना पड़ेगा। हकीकत यह है कि आदमी को सिंहासन से इतना लगाव होता है कि उसका आकर्षण आदमी छोड़ नहीं पाता। पता नहीं उसका आकर्षण कैसा होता है कि लोग सिंहासन की ओर दौड़े जाते हैं। चाहते हैं कि मुझे सिंहासन मिले। बहुत लोगों की आकांक्षा रहती है कि वह सिंहासन मुझे मिले।

आप विचार करें, वर्तमान में ऐसे कितने नेता होंगे जिनकी दृष्टि राज सिंहासन पर लगी हुई है! कितने लोग चाहते होंगे कि मैं प्रधानमंत्री पद पर सुशोभित होऊँ?

कितने नेता हैं ऐसे?

ऐसी बात आप नहीं बोलेंगे। कुछ लोग नम्बर एक पर हैं। कुछ लोग नम्बर दो पर हैं और कुछ लोग नम्बर तीन पर हैं। एक नम्बर वाले लोगों की श्रेणी अलग है। दो नम्बर वाले लोगों की श्रेणी अलग है और तीन नम्बर वालों की श्रेणी अलग है। तीनों की श्रेणियाँ अलग-अलग हैं। लालसा तो बहुतों की होती है, किंतु अपने कद को देखकर मान लेते हैं कि मेरा नम्बर मुश्किल है। जो आश लगाए हुए हैं वे तिकड़म लगाते हैं कि कैसे ही करके मौका लग जाए, कोई तीर लग जाए और सत्ता मेरे हाथ में आ जाए किंतु भरत ने चौदह साल में

एक बार भी, एक दिन भी राज सिंहासन का भोग नहीं किया।

यह समझ लें कि उन्होंने सन्न्यासी जैसा जीवन जीया। न आमोद-प्रमोद और न कोई खेल-तमाशा, सीधा-सादा भोजन करना, सीधी-सादी पोशाक पहनना। तड़क-भड़क से दूर सादगीपूर्ण जीवन जीते हुए उन्होंने चौदह वर्ष निकाले। राम का त्याग सबको नजर आता है, किंतु भरत का त्याग भी कम नहीं था। राजगद्दी के निकट रहकर, उससे निस्पृह रहना बहुत कठिन काम है।

मैं तुलना तो नहीं कर सकता हूँ, किंतु एक एग्जाम्पल से बात बताता हूँ। कोशा गणिका की रंगशाला में किसने चातुर्मास व्यतीत किया था?

(श्रोतागण बोले- स्थूलभद्र मुनिराज ने किया था)

स्थूलभद्र मुनिराज वहाँ का हाव-भाव देखकर हिले नहीं। वैसे ही भरत जी, सत्ता के एकदम समीप होते हुए भी विचलित नहीं हुए। अपने मन को कभी विचलित होने नहीं दिया। आज व्यक्ति दिखावे के लिए या विवशता से सत्ता का त्याग करता है, किंतु लगाम अपने हाथ में रखने की कोशिश करता है। वह मन ही मन गर्वित होता है कि मैं प्रधानमंत्री नहीं बनता, किंतु प्रधानमंत्री बनाता हूँ। उसकी मनसा रहती है कि प्रधानमंत्री मेरे कहे अनुसार काम करे। थोड़े दिन वह अपने हाथ में लगाम रखता है और मौका लगते ही उस पर हावी हो जाता है। ऐसा त्याग मन से नहीं हो रहा है। मन तो उसी के इर्द-गिर्द लगा हुआ है। 'अँगूर खट्टे हैं' वाली स्थिति रहती है।

चाहते हुए भी वह सिंहासन पर नहीं बैठ पाता। अनुकूल समय आते ही सिंहासन पर आरूढ़ हो जाता है, पर दुनिया को ऐसा बताता है कि मैं तो नहीं चाहता था, पर लाचारी में स्वीकार करना पड़ रहा है, किंतु भरत के मन में ऐसी कोई राजनीति नहीं थी। कोई दुर्नीति या कूटनीति भी नहीं थी। सहज भाव से चौदह वर्षों का समय उन्होंने साधना में निकाला। इसलिए राम ने कहा कि भाई हो तो भरत जैसा। यह राजनीति से प्रेरित बात नहीं थी। यथार्थ का दिग्दर्शन कराया गया। इसलिए गाया जाता है-

राम भरत की गौरव गाथा,
गाता मानव नहीं अघाता।

किंतु खाली गाने से काम नहीं चलेगा। यदि उस प्रकार से कदम आगे बढ़ जाएं, उस तथ्य को अपने भीतर स्वीकार कर लें तो परिवार का आनंद,

परिवार का प्रेम, परिवार का स्नेह असीम हो जाएगा। सभी के भीतर आनंद का वातावरण बना रहेगा। परिवार के सदस्यों के मन में हर्ष-हर्ष की बात हो जाएगी।

समस्या और तनाव पैदा होते हैं अपनी तरफ खिंचाव से।

किसी कपड़े को एक तरफ से पकड़ा जाए तो उसमें कोई खिंचाव नहीं होगा और यदि दूसरी तरफ से भी पकड़ा जाए तो तनाव आएगा या नहीं?

(श्रोतागण बोले- तनाव आएगा)

एक तरफ से ढीला छोड़ देंगे तो उसमें तनाव नहीं आएगा। खिंचाव पैदा नहीं होगा। ऐसे समय में अपने आपमें विचार करने की आवश्यकता है कि मैं खिंचाव की तरफ हूँ या मिलाप की तरफ! हम धीरे-धीरे भले ही बोलें, किंतु इससे हमारी परीक्षा होती है। परीक्षा हर समय नहीं होती। परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर लोग आपकी भी गौरव गाथा गाएंगे। वर्तमान में भी ऐसे भाई हैं जो भाइयों के लिए प्राण देने को तैयार हैं। ऐसा नहीं है कि सारे-के-सारे भाई शत्रु के भाव रखते हैं, किंतु बहुतायत शत्रुता की स्थिति ही नजर आती है। इसका कारण मैं जहाँ तक समझ पाया वह यह कि प्राय: सबकी दृष्टि स्वार्थ पर टिकी हुई है। सब अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए हर संभव करने को तैयार रहते हैं।

राम और भरत की गौरव गाथा असंख्येय वर्ष से गाई जा रही है। उनको हुए लाखों वर्ष नहीं, असंख्येय वर्ष हो गए, फिर भी मनुष्य उनकी गौरव गाथा गाते हुए नहीं अघाता। इससे एक बात फलित होती है कि हमारा दिल चाहता तो यही है कि वैसा ही भाई होना चाहिए।

कैसा भाई होना चाहिए? हम अपने भाई को भरत के रूप में देखना चाहते हैं या कैसा?

(श्रोतागण बोले- भरत के रूप में देखना चाहते हैं)

भरत के रूप में देखना चाहते हैं तो वैसा भाई आपको अवश्य मिलेगा, बस शर्त एक है कि खुद को राम बनना होगा। भरत के जैसा भाई चाहते हैं, तो खुद को राम जैसा बनाना होगा। राम की आँखों से देखेंगे तो भरत जैसा भाई मिलेगा और भरत की आँखों से देखेंगे तो राम जैसा भाई मिलेगा किंतु हम उन आँखों से नहीं देख पा रहे हैं। हमारी आँखें कुछ भिन्न रूप से देख रही हैं। हमें न तो राम नजर आ रहे हैं और न ही भरत।

क्यों नहीं नजर आ रहे हैं?

बहुत स्पष्ट है कि त्याग भाव प्रधान होता है। जो त्यागता है वह पाता है। त्याग की भावना विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। मेरी भावना में कहा गया है–

स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।

दुख का समूह भरपूर है, किंतु स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या कर लें तो उसका नाश हो जाएगा। यह बात हमें रामायण से ज्ञात होती है। राम–भरत के चारित्र से ज्ञात होती है। उससे ज्ञात होता है कि स्वार्थ का त्याग करने से दुखों का नाश होता है।

आज का व्यक्ति स्वार्थ का त्याग करना नहीं चाहता। वह महान बनना चाहता है, किंतु महानता के पथ को स्वीकार नहीं करना चाहता। महानता का मार्ग है अपने स्वार्थ का त्याग करना। स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या स्वीकार करना।

महासती श्री जयति श्री जी म.सा. का कल मासखमण पूरा हुआ। आज मासखमण के ऊपर शिखर लगा रही हैं। आज उनकी 31 की तपस्या होने जा रही है। उनकी दीक्षा को लगभग बीस वर्ष पूरे होने जा रहे हैं। 20 वर्षों में उन्होंने कितनी पदयात्रा कर ली? सेवा और शुश्रूषा में तत्पर रहीं। इन्होंने महासतियों का दिल जीत लिया। बड़े शांत भावों से अपनी तपस्या को संपन्न किया। हमको 31 दिन की तपस्या तो नजर आ रही है, किंतु उतने दिनों तक मन को मजबूत बनाए रखने की बात शायद भुला रहे हैं। मासखमण के घर के दिन उपवास में कई लोग खड़े हुए थे, आज पंचोले में कितने लोग खड़े होंगे? आप उस समय अपने दिल को मजबूत नहीं कर पाए। आपने सोचा कि एक उपवास करेंगे तो मासखमण की भावना का लाभ मिलेगा, इसलिए उपवास कर लिया।

आपकी भावना सदा ऐसी बनी रहे, किंतु केवल भावना में नहीं रहकर ऐसी भावना को मूर्त रूप देने का लक्ष्य बनाएं। एक उपवास से मासखमण की भावना का लाभ तो मिल गया, किंतु मासखमण करने से जो अनुभूति होती वह उपवास करने से नहीं होगी। मासखमण की अनुमोदना का लाभ तो मिल गया, किंतु मासखमण की अनुभूति नहीं हुई। हमने पैसे देकर डिग्री प्राप्त कर ली। दसवीं पास का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लिया। बारहवीं पास या आगे का प्रमाण

पत्र प्राप्त कर लिया। किंतु क्या योग्यता आई? योग्यता बड़ी या डिग्री बड़ी? डिग्री केवल कागज है। अनुभव के समक्ष डिग्री धूल चाटेगी।

ऐसी स्थिति में योग्यता नहीं बढ़ेगी, अनुभव नहीं बढ़ेगा, मात्र डिग्री प्राप्त होगी। उसी प्रकार मासखमण की भावना का लाभ तो मिल जाएगा, किंतु उसकी अनुभूति नहीं होगी।

महासती जयति श्री जी म.सा. ने हिम्मत की। उन्हें भी अनुभूति हुई। उनकी उम्र ज्यादा नहीं है, फिर भी मासखमण के रथ पर आरूढ़ हुईं और आज कलश चढ़ाया।

राम और भरत के चारित्र से कुछ सीखने के लक्ष्य से हम भी अपने आपको प्रेरित करें। सुनंदा के चारित्र से सीखें।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
घर पर आवे सास बधावे, सब मिल मंगल गीत गुंजावे,
जोड़ी सदा बहार, भविकजन, सुंदर हो...
दिन बीते अरु बीती रातें, आए जो मेहमान जाते,
रहते प्राणी चार, भविकजन, सुंदर हो...
खाना बनाना साफ-सफाई, सासू करती उसे मनाई,
नवीन बहू का मान, भविकजन, सुंदर हो...
मैं हूँ घर की नहीं पराई, ना मैं मेहमान बनकर आई,
आप तो दें आशीष, भविकजन, सुंदर हो...

सुनंदा पीहर से रवाना होकर, पीहर से विदा होकर ससुराल पहुँची। सास के हर्ष का कथन करना बहुत कठिन है। बड़ा कठिन है। सास, हर्ष में बावली हो रही है। सुनंदा के आते ही उसने बधावा किया, आरती उतारी और गृह प्रवेश करवाया। प्राय: पूरा दिन मेहमानों के साथ बीत गया।

दूसरे दिन सुनंदा जल्दी उठकर झाड़ू-बुहारी आदि घर के काम करने के लिए तत्पर हुई, उसकी सास दौड़ी-दौड़ी आई और सुनंदा के हाथ से बुहारी छीन ली। सास ने कहा, बेटी यह क्या कर रही हो? तुम कल घर में आई और आज झाड़ू-बुहारी कर रही हो! नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा।

सुनंदा ने कहा माँजी! मैं कोई मेहमान बनकर नहीं आई हूँ। मैं इसी घर की सदस्य बनकर आई हूँ। मेहमान कुछ समय के लिए होते हैं, किंतु मैं कुछ

समय के लिए नहीं आई हूँ। मैं जीवनपर्यंत के लिए आई हूँ।

बहुरानी की बातें सुनकर सास का दिल गदगद हो गया। सोचने लगी कि ओहो! कैसी लक्ष्मी आई है। मैं तो विचार कर रही थी कि पता नहीं कैसी बहू आएगी, क्या होगा! सुनंदा की सास ऐसा सोच रही है, फिर भी मन में डाउट हो रहा है कि आज तो पहला दिन है। आगे कैसे ढलेगी, क्या होगा। वह भयभीत जरूर है, किंतु मन बड़ा प्रसन्न हो रहा है। हर्ष से गदगद हो रहा है।

सुनंदा सारे काम करने लगी। झाड़ू लगाना, खाना बनाना। सास कहने लगी कि अभी रुक जाओ, सारा काम तुम्हीं कर लोगी तो मैं किस काम आऊँगी। सास कह रही है कि तुम अभी नई-नई आई हो, लोग तुम्हें देखने के लिए आ रहे हैं, लोगों से बातें करो।

सुनंदा ने कहा, लोग आते रहेंगे, देखते रहेंगे, किंतु मुझे अपना कर्तव्य निभाना है। सुनंदा ने सभी कार्य अपने हाथ में ले लिए। उसने ऐसा नहीं सोचा कि आज मेरा पहला दिन है, आते ही काम करना पड़ रहा है। कार्य करने में लाज-शर्म की कोई बात नहीं होनी चाहिए।

बांग्ला में एक कहावत है-

''मिली मिसी करी काज, हारी जीती नहीं लाप''

मिल-जुलकर काम करो, हार-जीत की कोई बात नहीं है। हार-जीत की बात तब होती है जब प्रतिस्पर्धा होती है। प्रतिस्पर्धा में हार-जीत होती है। घर का कार्य हार-जीत का नहीं होता। मिल-जुलकर करना होता है। स्वार्थ का त्याग करके करना चाहिए।

थकूं नहीं मैं सेवा करते, छूटे कभी ना जीवन रहते,
ऐसा दें आशीष, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा ने स्वार्थ का पूरा त्याग किया और कहा, माँजी! आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दें कि मैं काम करते हुए कभी थकूँ नहीं। जीवनपर्यंत मुझे सेवा का अवसर प्राप्त होता रहे।

यह सुनकर सास की आँखें सजल हो गईं। सास सोचने लगी कि कैसी लक्ष्मी आई है। कितने सुंदर विचार हैं। कोई अहंकार नहीं, कोई इगो नहीं। दिखावे की बातें नहीं कर रही हैं। बोलने की शैली से झलक जाता है कि दिखावा हो रहा है या यथार्थ है। बोलने-बोलने में फर्क होता है।

एक बोलना माधुर्य युक्त नहीं होता और एक शब्द मधुरता लिए होता है। माधुर्य लिया हुआ शब्द आसानी से गले उतर जाता है और बिना माधुर्य का शब्द गले में उतरता नहीं है। उसे उतारना पड़ता है। मुलायम रोटी, घी चुपड़ी रोटी झट से गले में उतर जाएगी, किंतु सूखी रोटी को गले में उतारने के लिए मेहनत करनी पड़ेगी। पानी या दूध के साथ गले में उतारना होगा। एक तो गले उतर रही है और एक गले उतारना पड़ रहा है, दोनों में फर्क है।

आपका शिविर कौन-सा चल रहा है?

(श्रोतागण बोले- 'ऐसी वाणी बोलिए' शिविर चल रहा है)

आप बोलेंगे, म.सा.! हम तो सीखे हुए हैं और क्या सीखना। कहेंगे कि सारी बातें सीखने की नहीं होतीं। हम गृहस्थी वाले हैं। आप घर चलाओ तो मालूम पड़े कि कैसे-कैसे प्रसंग आते हैं। कैसे-कैसे कष्ट सहने पड़ते हैं।

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।

इस दोहा को अपने जीवन में ठीक तरह से उतार लें। इसे जीवन में उतारने का मतलब है कि जो वाणी हमें अच्छी लग रही है, वैसी ही वाणी का व्यवहार करना है। जो वाणी हमें नहीं सुहाती, जो शब्द हमें नहीं सुहाते, वैसे शब्दों का प्रयोग भूलकर भी नहीं करना। यदि शांति-समाधि का जीवन जीना चाहते हैं, घर में, समाज में अच्छी तरह से रहना चाहते हैं तो केवल बोलना ही नहीं जानें, सुनना और समझना भी जानें। सामने वाले के भावों को समझने की कोशिश करेंगे तो बहुत समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

जो अपने अहंकार का पोषण करने की भावना रखेगा, अन्य सबको नकारता जाएगा, वह अकेला हो जाएगा। उसके साथ कोई खड़ा नहीं रहेगा। एक तो वह अकेला रहेगा, दूसरा उसका इगो रहेगा और तीसरा वह चाहेगा कि मुझे मान-सम्मान मिले तो कैसे मिलेगा। सबको स्वीकार करते हुए चलें। कितने भी लोग आए तो हाँ भाई ठीक है, हाँ भाई ठीक है। सबको स्वीकारेंगे तो सब साथ खड़े रहेंगे।

अकेले खड़ा रहना है या सबके साथ?

(श्रोतागण बोले- हमें सबके साथ खड़ा रहना है)

सबके साथ रहना है तो क्या करना पड़ेगा?

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय।।

इसे ध्यान में लेंगे तो भीतर बड़ा रूपांतरण होगा। बीमार होने पर दवाई लेते हैं तो बीमारी ठीक हो जाती है। वैसे ही घर में यदि इगो की बीमारी है तो 'ऐसी वाणी बोलिए' दवा का उपयोग करना होगा। ऐसी वाणी का उपयोग नहीं करेंगे तो बीमारी दूर नहीं होगी। ऐसी वाणी बोलें, जिससे भीतर बदलाव आए। भीतर बदलाव होना चाहिए। अपने मन को तौलकर देखना कि मेरा बोलना किसी को बुरा तो नहीं लग रहा है। जो बोलने से किसी को दुख होता हो, वैसी बात नहीं बोलना।

पहले अपने दिल में तौलो कि बोलना सही हो रहा है या नहीं। आदमी थोड़ा-सा संभलकर चले तो बहुत-सी समस्याओं का समाधान अपने आप ही हो जाता है।

मैंने एक दिन कहा था कि हम ही समस्या खड़ी करते हैं और हम ही समस्या का समाधान हैं। लक्ष्य रहे कि हम समाधान का अंग बनें। धर्म श्रद्धा समाधान देती है। मोक्ष तो बहुत दूर की बात है। मोक्ष मिलेगा तब मिलेगा, सबसे पहले श्रद्धा से समाधान मिलना चाहिए। जीवन का समाधान मिलेगा तो समस्याओं से परे होंगे। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो धन्य बनेंगे।

महासती मल्लिका श्री जी म.सा. की आज 18 की तपस्या है। महासती श्री कर्णिका श्री जी म.सा. की आज 12 की तपस्या है। श्रावकों में जुबिन जी मुणोत की आज 28 की तपस्या है। केसुंदा की विनीता जी गांधी की आज 28 की तपस्या है। वीर भ्राता पुलकित जी गुलगुलिया की आज 35 की तपस्या है। और भी कई भाई-बहनों की तपस्याएं चल रही हैं। मासखमण के नजदीक की तपस्याएं भी हैं। कषायों का शमन करने की दिशा में आगे बढ़ें। मन की समाधि की दिशा में आगे बढ़ें और अपना पुरुषार्थ जगाने का प्रयत्न करें। ऐसा करेंगे तो निश्चित ही धन्य बनेंगे। इतना कहते हुए विराम।

27 जुलाई, 2023

8

राजमती मन धर्म सुहाया

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

धर्म की छाया तले जो प्राणी आ जाता है उसकी रक्षा होती है। सूर्य का ताप प्रखर रूप से हो तो छतरी तान लेने से उसके ताप से बचाव हो जाता है। बारिश हो रही हो तो बरसाती पहन लेने से पानी से बचाव हो जाता है। वैसे ही धर्म रूपी बरसाती पहन लेने से आदमी की रक्षा हो जाती है।

राग-द्वेष, क्रोध, मान-माया, लोभ के प्रहार चारों तरफ से होते रहते हैं। इनके प्रहार से बचाव धर्म ही कर सकता है। धर्म से मन पवित्र रहता है, पावन रहता है, पावन और पवित्र मन आत्मा को तृप्त करनेवाला होता है। आत्मा को संतुष्टि देनेवाला होता है।

श्रीमद् दशवैकालिक सूत्र में बताया गया है-

कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए,
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ।।

'**कहं नु कुज्जा**' यानी कि जो काम को नहीं निवारता, जो कामनाओं से उपरत नहीं हो सकता, वह श्रमण धर्म की आराधना कैसे कर पाएगा!

'**पए पए विसीयंतो**' अर्थात् ऐसा साधक, ऐसा व्यक्ति पग-पग पर खेदित होगा। संकल्पों और विकल्पों में चलता जाएगा। वैसे तो यह बात मुनि को संबोधित करते हुए कही गई है, किंतु केवल मुनि के लिए ही नहीं है। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए है।

कार्य की सफलता के लिए मन में अटूट विश्वास होना जरूरी है। मन

कंफ्यूज रहता है, मन में डाउट रहता है तो व्यक्ति की गति अवरुद्ध हो जाती है। वह सक्रिय रूप से आगे नहीं बढ़ सकता। वह ऊहापोह में रहता है। संकल्प-विकल्प में रहता है। संकल्प-विकल्प में पड़ा आदमी सोचता है कि यह करूँ तो पता नहीं क्या होगा? ऐसा कर लूँ तो कहीं नुकसान न हो जाए? वह सोचता रहता है कि ऐसा करने से कौन-कौन-सी समस्या खड़ी हो सकती है?

प्राणियों का विभाग तीन प्रकार से किया गया है। यथा उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम प्राणी तत्काल निर्णय लेता है और उसके अनुसार काम करने में तत्पर होता है। कार्य को पूर्ण करता है, सफल होता है। मध्यम व्यक्ति कार्य को उत्साह से चालू तो करता है, किंतु उसके भीतर धीरे-धीरे मंदता आ जाती है। कार्य प्रारंभ करते समय रहा उत्साह मंद पड़ जाता है। अधम व्यक्ति के बारे में कहा गया है कि वह भय के मारे कार्य प्रारंभ ही नहीं कर पाता। वह निर्णय ही नहीं कर पाता। वह कंफ्यूज रहता है। उसके सामने समस्याएँ खड़ी रहती हैं।

उसको लगता है कि ऐसा करूंगा तो यह समस्या खड़ी हो जाएगी। वैसा करूंगा तो वह समस्या हो जाएगी। उन समस्याओं से घिरकर वह किसी कार्य को प्रारंभ ही नहीं कर पाता। कार्य करने को यह तो मानकर चलना पड़ेगा कि वह कभी भी फिसल सकता है, गिर सकता है। कभी भी उसका एक्सीडेंट हो सकता है, किंतु ऐसा नहीं होता कि एक्सीडेंट के भय से व्यक्ति चलना ही छोड़ दे। जो व्यक्ति एक्सीडेंट के भय से चलना छोड़ दे वह अपने जीवन में क्या विकास कर पाएगा! जीवन में चुनौतियाँ आती हैं। उनको स्वीकार करना पड़ेगा। चुनौतियों को स्वीकार करके जो निराकरण कर सकता है, वह सफलता को प्राप्त कर सकता है। जो उनसे घबराकर पीछे हट जाता है, वह मंजिल प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो पाता।

साधु जीवन स्वीकार करने पर भी कर्मों का उदय उसके जीवन में आना संभव है। आ जाता है। आता है। बहुत सारी समस्याएँ भी उसके जीवन में आ सकती हैं, किंतु वह समाधान में जीता है। जो समाधान में जीना सीख लेता है, समस्या उस पर हावी नहीं हो पाती। समाधान का मार्ग, धर्म श्रद्धा से प्रारंभ होता है। धर्म श्रद्धा जीवन का समाधान है। सही रास्ता धर्म श्रद्धा से नजर आता है। कहाँ जाना है, किस मार्ग पर चलना है उसके लिए धर्म श्रद्धा से स्पष्टता हो जाती है। इसलिए वहाँ समाधान में जीना हो जाता है। समाधान में जीने से धर्म

श्रद्धा प्रखर होती चली जाती है तो वह साधु बनने का लक्ष्य बनाता है।

साधु बनने के बहुत सारे कारण बताए गए हैं, किंतु धर्म श्रद्धा एक मुख्य कारण बताया गया है। धर्म श्रद्धा से बोध जग जाता है कि मैं कौन हूँ और मेरा स्वरूप क्या है!

रथनेमि, अरिष्टनेमि भगवान के लघु भ्राता थे। राजीमति के दर्द को रथनेमि ने समझा। राजीमति को जब मालूम पड़ा कि अरिष्टनेमि वापस लौट गए, शादी-विवाह करने के लिए नहीं आ रहे हैं तो वह बेहोश हो जाती है। होश आने पर तो वह रुदन करने लगती है कि अरिष्टनेमि ने मेरे में क्या कमी देखी? क्या कारण हुआ कि वे वापस लौट गए? ऐसे समय में रथनेमि, राजीमति के पास पहुँचे और उससे कहा कि तुम घबराओ मत, मैं तुम्हें स्वीकार करने को तैयार हूँ। मैं तुमसे विवाह करने के लिए तैयार हूँ।

कहानी में ऐसा बताया गया है कि राजीमति ने रथनेमि से कहा कि क्या आप मुझे स्वीकार करना चाहते हैं? क्या आप तैयार हैं मुझे अपनाने के लिए? रथनेमि ने उमंग से कहा- तुम निश्चिंत रहो, मैं तुझे स्वीकार करने को तत्पर हूँ। इस पर राजीमति ने कहा- कुमार अपनी पसंद का पेय आप मुझे पिलाएं। पहले मैं आपके हाथ से पेय पीना चाहूंगी।

रथनेमि कटोरा भरकर पेय लाया। राजीमति ने उसे पीकर वमन की पुड़ियां मुँह में रखती हैं। उसने तत्काल उसी कटोरे में वमन किया और कटोरे को रथनेमि की ओर आगे बढ़ाते हुए कहा कि राजकुमार! आप इस वमन का सेवन कीजिए। ग्रहण कीजिए। पी लीजिए। रथनेमि कहने लगे, तुम राजकुमारी हो, खानदान में जन्मी हो, तुममें अच्छे संस्कार हैं फिर तुम ऐसी बात कैसे कर रही हो? वमन किया हुआ तो कुत्ते-कौए भी नहीं खाते होंगे तो इनसान कैसे खाएगा! इनसान उसका सेवन नहीं कर सकता, उसको पी नहीं सकता।

राजीमति यह बात रथनेमि से सुनना चाहती थी। वह यही बात रथनेमि के मुँह से कहलाना चाह रही थी। राजीमति ने कहा कि राजकुमार! आपको जब इतना ज्ञात है कि वमन की हुई चीज, वमन किया हुआ पदार्थ इनसान के लिए, खानदानी व्यक्ति के लिए सेवन योग्य नहीं होता, ग्राह्य नहीं होता तो आप विचार कीजिए कि मैं आपके लिए ग्राह्य कैसे हो सकती हूँ! आप विचार कीजिए कि मैं अरिष्टनेमि द्वारा वमन की हुई हूँ। उनके साथ मेरा

संबंध जुड़ा था पर वे छोड़कर चले गए। मैं उनके द्वारा त्यागी हुई हो गई। वमन की हुई हो गई। ऐसी परित्यक्ता को आप कैसे स्वीकार कर सकते हैं?

रथनेमि को बोध होता है। रथनेमि जागृत हो गए कि वस्तुत: मैं भटक गया था। रथनेमि को पश्चात्ताप हुआ कि मैंने यह क्या कर दिया! मेरे मन में यह विचार कैसे आ गए! यह विचार करते-करते रथनेमि आत्मचिंतन में लीन हुए। उनको लगा कि मुझे साधु जीवन स्वीकार कर लेना चाहिए। उन्होंने साधु जीवन स्वीकार कर लिया और साधना में लीन हो गए। एक समय ऐसा आया कि राजीमति भी दीक्षा ले लेती है।

'राजीमति मन धर्म सुहाया, रथनेमि मन दृढ़ हो पाया'

दीक्षा के बाद एक बार राजीमति भगवान के दर्शन करने जा रही थी या दर्शन करके लौट रही थी कि अकस्मात् वर्षा होने लगी। वर्षा से साथ वाली साध्वियाँ इधर-उधर हो गईं। राजीमति को एक गुफा नजर आई। उसे निर्जन समझ वह उसमें प्रविष्ट हुई। रथनेमि पहले से वहाँ पर मुनि अवस्था में मौजूद थे। राजीमति को यह ज्ञात नहीं था। उसने जैसे ही वस्त्र सुखाने के लिए वस्त्रों को फैलाया वैसे ही रथनेमि का मन विचलित हो गया। रथनेमि, राजीमति को पहचान गए और कहने लगे, हे सुभगे! यह मनुष्य जीवन बहुत दुर्लभता से प्राप्त हुआ है इसलिए अच्छा है कि हम पहले कामभोग भोग लें। कामभोग को भोगकर साधु बन जाएंगे।

एक बात ध्यान में लेना, भोगी और योगी दोनों कहते हैं कि मनुष्य जन्म दुर्लभता से प्राप्त होता है। दोनों स्वीकार करते हैं कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है।

''दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं''

सभी प्राणियों के लिए मनुष्य जन्म बड़ा दुर्लभ है। ऐसी दुर्लभ वस्तु प्राप्त हो जाए तो उसका उपयोग क्या करना चाहिए? भोगी के मन में भोग की भावना रहेगी और योगी के मन में योग की। भोगी कहता है, इस जीवन को भोग लेना चाहिए और योगी कहता है, योग करके परमात्मा से संबंध जोड़ लेना चाहिए। कोई कुछ भी कहे, बस एक बात को ध्यान में लेने की आवश्यकता है कि परमात्मा से संबंध जोड़ने के लिए चार गतियों में कोई मार्ग है तो मनुष्य भव है। मनुष्य ही आत्मा का संधान कर सकता है। मनुष्य ही आत्मा का परमात्मा से संबंध जोड़ सकता है और आत्मा से परमात्मा बनने का

सामर्थ्य मनुष्य में ही है।

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं।।

प्राणियों के लिए चार परम अंग बड़े दुर्लभ हैं। बड़े कठिन हैं। यहाँ विचार करना है कि किसके चार अंग दुर्लभ हैं? मोक्ष प्राप्ति के लिए चार अंगों की आवश्यकता होती है। उसमें सबसे पहली आवश्यकता होती है मनुष्य जन्म की। यदि मनुष्य जन्म की ही प्राप्ति नहीं हुई तो आगे के तीन अंग कोई मायने नहीं रखते। शून्य अपने आप में मूल्यवान नहीं होता, किंतु उसके पीछे कोई एक अंक आ जाए तो वह मूल्यवान हो जाता है। पशु भी सुनते हैं और देवता भी सुनते हैं।

भगवान महावीर को जिस समय केवलज्ञान हुआ, उस समय सुनने वाले बहुत थे, किंतु ग्रहण करने वाला कोई नहीं था। स्वीकार करने वाले नहीं थे। देवता सुन सकते हैं किंतु सुनने के बाद जीवन में जो रूपांतरण होना चाहिए, वैसा करना देवता के वश की बात नहीं है। इसलिए कहा जाता है कि भगवान महावीर की प्रथम देशना खाली चली गई। रिक्त चली गई।

सामान्यत: तीर्थंकरों की देशना खाली नहीं जाती। त्याग-पच्चक्खाण स्वीकार करने के लिए ही नहीं साधु बनने के लिए भी लोग खड़े हो जाते हैं। उसी प्रकार साध्वी व श्रावक-श्राविका के व्रत भी स्वीकार होते हैं तभी चार तीर्थ की स्थापना हो पाती है। वर्तमान में भी देख सकते हैं कि व्याख्यान में उपस्थित लोगों में से कोई-न-कोई त्याग-पच्चक्खाण लेने के लिए तैयार हो ही जाता हैं। त्याग-पच्चक्खाण होते हैं या नहीं?

(श्रोतागण बोले- त्याग-पच्चक्खाण होते हैं)

त्याग-पच्चक्खाण करने वाले लोग मौजूद रहते हैं। भगवान महावीर के केवलज्ञान के समय भी देवताओं की मौजूदगी रही, उन्होंने श्रद्धा से सुना, किंतु सुनकर उसे सार्थक करने का, प्रैक्टिकल करने का सामर्थ्य नहीं होने से उनका सुना हुआ क्रियान्वित नहीं हो पाया। उस प्रकार से वह सुनने का सामर्थ्य किसमें है? योग्यता किसमें है?

(श्रोतागण बोले- मनुष्य में है)

हम मनुष्य हैं। हममें सुनने का सामर्थ्य है या नहीं है?

(श्रोतागण बोले- हममें सुनने का सामर्थ्य है)

हमारे भीतर सुनने का सामर्थ्य है। हमारे भीतर वह शक्ति है जिससे सुन सकते हैं, सुन रहे हैं, किंतु सुनना किस काम आएगा?

हम निरंतर देख रहे हैं कि बचपन से जवानी आई और जवानी भी ढल रही है। हम स्वयं को भी देख रहे हैं और दुनिया को भी देख रहे हैं। कोई व्यक्ति दस-पंद्रह साल बाद मिलता है तो उसे देखने में क्या अंतर लगता है? पंद्रह वर्ष बाद उस व्यक्ति से आप मिलोगे तो क्या अंतर लगेगा?

पहले शरीर से सुदृढ़ था, बाल काले थे। हाथ-पाँव सशक्त थे। 15 साल बाद जब वही आदमी मिला तो उसके बाल सफेद हो गए। शरीर में कंपन चालू हो गया, सुदृढ़ता कम हो गई। हाथ-पाँव की शक्ति कम पड़ गई। कानों से सुनाई कम देने लगा। घुटने में दर्द होने लगा। ऐसी बहुत सारी समस्याएँ उसमें दिखती हैं। देखकर मन में संवेदना होती है कि पंद्रह साल में इतना अंतर आ गया। उसमें जो अंतर आया वह तो दिख रहा है, किंतु हमारे भीतर, स्वयं के शरीर में जो अंतर आया उसकी अनुभूति नहीं कर पाते हैं। जब तक उसकी अनुभूति नहीं कर पाते, तब तक भीतर जागरण भी पैदा नहीं हो पाता।

व्यक्ति को जान लेना चाहिए कि यह शरीर ढलनेवाला है, सदा अमर रहने वाला नहीं है, घटने ही वाला है। घटते-घटते क्या हो जाएगा?

'घटते घटते घट जाएगी, तेरी ये उमरिया'

क्या घटता और क्या बढ़ता है?

हमारी तृष्णा रोज बढ़ती जा रही है। भोग-पिपासा रोज बढ़ती जा रही है। जितना है उसमें संतोष नहीं है। और की प्यास लगी रहती है। गंगाशहर के चंपालाल जी डागा, सभा में मौजूद हैं। वे कहते हैं कि अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ में जितने भी पद हैं उनमें से किसी पद को मैंने नहीं छोड़ा। यह बात अलग है कि बाद में एक और नया पद हो गया।

कौन-सा नया पद हो गया?

'नियामक परिषद' का सदस्य नया पद हो गया। ये नियामक परिषद के सदस्य नहीं बन पाए। 40 वर्ष तक इन्होंने संघ की सक्रिय सेवा की। उस समय शरीर कैसा था और अब कैसा है? अब इनको चेयर पर बैठना पड़ रहा है। अध्यक्ष-मंत्री की चेयर नहीं है, अब इनके हाथ में दूसरी चेयर आ गई। यह प्राय: सबके साथ घटित होता है, किसी एक व्यक्ति की बात नहीं है। हमारे

साथ भी निरंतर घट रहा है। हमारी उम्र निरंतर कम होती जा रही है।

जयचंद के उदाहरण में बताया गया है कि शाखा और टहनियों को चूहे निरंतर कुतरते जा रहे हैं। चूहे के रूप में रात-दिन हमारी उम्र कुतर रहे हैं। एक दिन ऐसा आएगा जब टहनी कटकर नीचे गिर जाएगी। इसके बावजूद हमारे भीतर बोध जागृत नहीं होगा। यह होश नहीं आता कि क्या करना चाहिए?

आदमी की उम्र ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसका लोभ-लालच ज्यादा बढ़ने लगता है। छोड़ने का समय आ गया, किंतु छूट नहीं पाता है। पकड़ और ज्यादा गहरी होती जा रही है। वही पकड़ समस्या पैदा करने वाली बन जाती है।

बच्चे चाहते हैं कि पापा अब व्यापार में हस्तक्षेप नहीं करें और पिता सोचता है कि यह तो बच्चा है। यह क्या समझेगा व्यापार को! यह क्या जानेगा व्यापार को! यह क्या चलाएगा व्यापार को! इसको क्या पता व्यापार कैसे चलाना!

माता-पिता के सामने संतान सदा बालक ही होती है। वे समझेंगे कि यह तो बच्चा है, यह क्या समझेगा।

भोग, तृष्णा और वासना बढ़ती जाती है। यही कारण है कि हम संसार के जन्म-मरण के चक्कर में चलते रहते हैं। उससे ऊपर नहीं उठ पाते। जिस दिन यह तृष्णा घट जाएगी, समाप्त हो जाएगी, दूर हो जाएगी, उस दिन हमारी धर्म श्रद्धा हमें आगे बढ़ाने वाली बनेगी।

रथनेमि गुफा में मौजूद हैं। राजीमति को देखकर वे कहते हैं, हे सुभगे! मनुष्य जन्म दुर्लभता से प्राप्त हुआ है, पहले इसका उपभोग कर लें। रथनेमि की दृष्टि में जीवन का सही उपयोग कामभोग सेवन करना है। राजीमति ने रथनेमि की आवाज पहचान ली। रथनेमि की आवाज सुनकर राजीमति ने अपने को सुरक्षित किया। अपने शरीर को वस्त्रों से ढककर कहने लगी-

धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे।।

हे यशस्विन! हे यश के कामी! पहले हम बोलते थे अपयश के कामी, किंतु कोई अपयश का कामी नहीं है। कोई नहीं चाहता कि मेरा अपयश हो। हम यश चाहते या अपयश?

(श्रोतागण बोले- हम यश चाहते हैं)

कौन चाहता है कि चारों तरफ मेरा अपयश हो? कोई अपयश नहीं चाहता।

राजीमति कहती है, हे यशकामी! धिक्कार है तुझे कि तुमने विषय-वासना का त्याग कर साधु जीवन स्वीकार किया और फिर उसी की कामना कर रहे हो। धिक्कार है तुम्हारी आत्मा को।

'राजीमति मन धर्म सुहाया, रथनेमि मन दृढ़ हो पाया'

राजीमति के मन में धर्म श्रद्धा मजबूत थी, बलवान थी। धर्म श्रद्धा के बल पर उसने रथनेमि को खरी-खरी बात सुना दी। लाग-लपेट जैसी कोई बात नहीं रखी। उसने यह नहीं सोचा कि मैं असुरक्षित हूँ। वह जान रही थी कि रथनेमि खानदानी व्यक्ति है और मेरा कुछ भी बिगाड़ करने में समर्थ नहीं है। राजीमति यह भी जान रही थी कि चलता हुआ व्यक्ति ठोकर खाता है तो उसको संभलने का मौका दिया जाना चाहिए। राजीमति ने उसको समझने का मौका दिया।

राजीमति के बाण जैसे वचनों से रथनेमि संभल गया और वापस अपने संयम में दृढ़ हो गया।

'एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा से पुरिसोत्तिमो।।'

हमारे यहाँ पर कहावत है- 'सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहा जाता।' चलने वाला ठोकर खाकर संभल जाए तो बुरा नहीं है। जैसे लाखिणा घोड़ा दौड़ता-दौड़ता ठोकर खाकर गिरते-गिरते संभल जाता है, वैसे ही रथनेमि संभल गया और अपने मन को सुदृढ़ बना लिया। उसी दृढ़ता के आधार पर मोक्ष के रास्ते पर आगे बढ़कर उसी भव में मोक्ष को प्राप्त किया।

सुनंदा की कहानी चल रही है। कुछ उसकी चर्चा कर लेते हैं। सुनंदा ससुराल पहुँच गई। ससुराल में सारा काम संभाल लिया। खाना बनाना, साफ-सफाई, झाड़ू-बुहारी आदि सारे काम बड़े तरीके से, बड़े सलीके से करने लगी।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
करके भोजन सासु विश्रामे, लगी दौड़ वह पाँव दबाने,
सासु दीर्घ उच्छवास, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

एक समय था जब बड़े-बुजुर्गों के पाँव दबाने का सिस्टम था। सुनंदा

की सास भोजन करके विश्राम करने लगी। सुनंदा दौड़ी-दौड़ी गई और सास के पैर दबाने लगी।

उधर सास का मन व्यथित था। उसका कारण मैंने पहले बता दिया। मैंने पहले बताया था सुरेश के बारे में। वह बोलता नहीं, सुनता नहीं। ऐसी हालत पर वह (माता) चिंतित रहती थी। व्यथित रहती थी। उसकी व्यथा भीतर-ही-भीतर दबी रहती थी। ऊपर से सब ठीक दिख रहा था, किंतु भीतर दर्द समाया हुआ था। अनुकूल वातावरण पाकर वह दर्द छलक गया।

पुत्रवधू जैसे ही पाँव दबाने आई, सास का दर्द दीर्घ उच्छवास के रूप में दिखा। ऐसा माना जाता है कि जिसके भीतर कोई दर्द होता है वह दीर्घ उच्छवास छोड़ता है। दीर्घ उच्छवास का मतलब है कि भीतर कोई दर्द है। कोई दुख है। कोई गम है। उस गम को हटाने के लिए वह दीर्घ उच्छवास छोड़ती है या छूटती है।

मुख मण्डल को पढ़ने लगती, हो गई है क्या मुझसे गलती,
पूछे नम्रता धार, भविकजन, सुंदर हो...

दीर्घ उच्छवास देखकर सुनंदा, सास के चेहरे को देखने लगी। सास का गंभीर चेहरा देखकर सुनंदा को लगा कि सास के मन में बहुत बड़ी पीड़ा है। सुनंदा विचार करने लगी कि ऐसा क्या कारण बन गया जिससे उनके मन में इतनी बड़ी चिंता है। कहीं मुझसे तो कोई गलती नहीं हो गई! मैं अभी नई-नई हूँ, मैं उनके इशारे को समझ नहीं पाई?

हालांकि सास को सुनंदा की तरफ से कोई चिंता नहीं थी।

साधुओं के लिए बताया गया है कि वह इंगित आकार-चेष्टा को जानने वाला होता है। वैसे यह कथन केवल साधु के लिए ही नहीं है। समझदार आदमी, प्रज्ञा संपन्न व्यक्ति सामने वाले को देखकर जान लेता है कि अभी ये क्या चाहते हैं। इनकी क्या अपेक्षा है। यह जानकर वह उन अपेक्षाओं को पूरा करने की कोशिश करता है।

सास के मन की पीड़ा का अनुमान लगाकर सुनंदा सोचने लगी कि मुझसे कोई गलती हो गई होगी। जब उसको अपनी गलती नजर नहीं आई तो उसने तय किया कि यदि मन में यह बात जमा लूंगी कि सास मेरे से खुश नहीं तो यह बात मेरे मन में घुलती रहेगी। घुलते-घुलते वह विषमता पैदा करेगी। फिर

संवाद टूट जाएगा। विवाद का रूप खड़ा हो जाएगा।

सुनंदा ने विचार किया कि मुझे विवाद खड़ा नहीं करना है। उसने हाथ जोड़कर विनम्र भाव से पूछा पूजनीया! मुझसे कोई गलती हो गई क्या? आपका उच्छवास छूटा है इसका मतलब है आपके भीतर कोई-न-कोई दर्द है। यदि मुझसे कोई अकार्य हो गया हो, नहीं करने जैसा कोई कार्य हो गया हो तो आप मुझे बताइए, मैं सुधार करूंगी, संशोधन करूंगी।

सुनंदा की बात सुनकर सास चुप नहीं रह पाई। वह अपने दर्द को व्यक्त करते हुए कहने लगी-

बहुराणी मैं कहूं क्या वाणी, कर्म बांधता कैसे प्राणी,
बनते ऐसे भाव, भविकजन, सुंदर हो...

बेटी! क्या बताऊं तुझे। व्यक्ति किस प्रकार कर्म बाँध लेता है, किस प्रकार से कर्म बँध जाते हैं उसे मालूम नहीं पड़ता। उसे मालूम नहीं पड़ता कि मैंने कैसे-कैसे कर्म बाँधे और कैसे कर्म बाँधने का कार्य कर रहा हूँ। जब कर्मों का उदय होता है तो उनका भोग भोगते समय व्यक्ति को ऐसा लगता है कि मैंने ऐसा क्या कर दिया।

घर में धन की कमी नहीं है, फिर भी घर में खुशी नहीं है
पाऊं नहि मैं चैन, भविकजन, सुंदर हो...

सास सुनंदा से कहती है घर में धन-वैभव की कोई कमी नहीं है। धन-वैभव बिखरा पड़ा है, पसरा हुआ है, फिर भी घर में जो खुशहाली और प्रसन्नता होनी चाहिए, वह नजर नहीं आ रही है। विजय अपने काम में मस्त रहता है। जब मैं सुरेश को देखती हूँ तो मेरा मन चैन नहीं पाता। मेरे मन में पीड़ा होती है। कसक होती है।

सुनंदा की सास कहती है कि तुम्हारे देवर को कर्मों का उदय है। कर्मों का मारा सुरेश न बोल पा रहा है न सुन ही पा रहा है। किंतु आखिर है तो यह भी प्राणी। है तो यह भी इनसान। है तो यह भी मानव। इसकी रक्षा भी होनी चाहिए। यही मेरे मन में पीड़ा है, दर्द है। यह विजय से भय खाता रहता है। जैसे चूहा, बिल्ली को देखकर भय खाता है, वैसे ही विजय को देखकर इसको भय लगता है, डर लगता है। ऐसा देखकर मुझे विचार आता है कि आज तो मैं हूँ, किंतु कल मैं नहीं रही तो क्या होगा! इसी बात की मुझे बड़ी बेचैनी रहती है।

सबकुछ होते हुए भी मन में शांति नहीं है, समाधि नहीं है।

हालांकि सास जान रही है कि यह कर्मों का उदय है। कर्मों का योग है। इसे रोक पाना किसी के वश की बात नहीं है। न वह कुछ कर सकता है और न ही कोई दूसरा कुछ कर सकता है।

डॉक्टर और वैद्य भी इलाज उसी का कर पाते हैं जिसका सातावेदनीय कर्म का उदय होने वाला हो। नहीं तो डॉक्टर-वैद्य भी इलाज करते हुए थक जाते हैं और सही इलाज कर नहीं पाते।

सास की बात सुनकर सुनंदा विचार करती है, सास जी को इतनी पीड़ा हो रही है, इतनी बेचैनी हो रही है, फिर वह धन किस काम का, जो मन में समाधि और शांति पैदा नहीं कर सके।

लोग धन के पीछे दौड़ते हैं और समाधि को छोड़ देते हैं। वे समाधि को महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। लोग समझते हैं कि धन हो गया तो बस सुख हो गया, किंतु धनवान व्यक्ति का एक्सरे किया जाए, उसके भीतर का फोटो लिया जाए तो मालूम पड़ेगा कि वह कितनी समाधि में है। कितनी शांति में है। मैं यह नहीं कहता कि सभी लोग दुखी होंगे, किंतु ज्यादातर लोग दुखी ही मिलते हैं।

एक प्रश्न खड़ा होता है कि लोग क्यों दुखी हैं? दुख का कारण क्या है?

भगवान ने फरमाया कि जब तक भीतर मोह-ममत्व का भाव बना रहता है, लगाव का भाव बना रहता है, तब तक आदमी दुखी होता रहता है। जिसका मोह क्षीण हो गया, जिसका मोह कम हो गया उसको कोई दुख नहीं सताएगा। उसे दुख नहीं होगा। मोह जितना बढ़ेगा, जितना हाथ-पैर पसारेगा, उतना ही दुख होगा।

सुनंदा और सास के बीच आगे क्या वार्तालाप होता है, उस पर समय के साथ विचार कर सकते हैं।

महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. मासखमण के बहुत नजदीक हैं। कल दिन उगते ही मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो जाएंगी।

हम कौन-से रथ पर आरूढ़ हैं? दो-चार दिन पहले मैंने क्या पच्चक्खाण कराया?

(एक व्यक्ति ने कहा- पंद्रह लोगस्स की माला का पच्चक्खाण कराया)

और क्या कराया? भूल गए क्या?

खाने-पीने के समय कोई प्रतिक्रिया नहीं करना। आपको यह पच्चक्खाण याद नहीं रहा फिर इसकी पालना कैसे होगी! इसके साथ में यह भी पच्चक्खाण कराया था कि बिना माँगे काम चले तो चलाना, माँगना नहीं। महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. कल मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो जाएंगी। उनका मासखमण पूर्ण होने को है।

कल हम क्या करेंगे? ज्यादा नहीं तो कितनी सामायिक होनी चाहिए?

(शौकीन जी मुणोत बोले- पाँच-पाँच सामायिक करेंगे)

सुबह, दोपहर, शाम या रात को कभी भी करें, किंतु पाँच सामायिक करनी है। भाई-भाई ही करेंगे या बहनें भी करेंगी? बहनें कम नजर आ रही हैं। महासती श्री मल्लिका श्री जी की आज 19 की तपस्या है। महासती श्री कर्णिका श्री जी म.सा. की आज 13 की तपस्या है। महासती जयति श्री जी की आज पारणे की संभावना थी।

डागा परिवार भी आज उपस्थित है। धूड़चंद जी डागा ने गुरुदेव के समय में काफी सेवाएं दी थीं। गंगाशहर-भीनासर के अध्यक्ष भी रहे। इनके पोते का स्वर्गवास हुआ। क्या नाम था पोते का?

उन्होंने कहा- जिनेंद्र।

जिनेंद्र इनके पोते का नाम था। उसका स्वर्गवास हो गया। मैंने पहले भी बोला है और आप जान भी रहे हैं कि आयुष्य को रोकना किसी के वश की बात नहीं है। जितना आयुष्य होता है जीव उतना ही भोग पाता है।

डागा परिवार धर्मनिष्ठ परिवार है। शोक-संताप नहीं रखना, धर्म कार्यों में अंतराय नहीं देना और भगवान की वाणी को ध्यान में रखते हुए स्वाध्याय की तरफ ध्यान लगाना। स्वाध्याय, शोक से उपरत कराने की महान औषध है। स्वाध्याय से रोग-शोक सब भग जाते हैं। उसका आलबंन लें। स्वाध्याय को अपना आधार बनाएं। ऐसा लक्ष्य रहेगा तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

28 जुलाई, 2023

9

सदा अखण्ड रहे मन श्रद्धा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।।

सुख की रक्षा धर्म से होगी। स्वयं की पहचान भी धर्म से होगी। यदि हमने अपनी पहचान कर ली कि मैं कौन हूँ, तो धर्म की पहचान हो जाएगी। जब तक हमने अपने आपको नहीं पहचाना, तब तक धर्म की पहचान नहीं होगी। धर्म की पहचान किए बिना जब तक धार्मिक क्रियाएँ करते रहेंगे, तब तक वे क्रियाएँ विशेष लाभप्रद नहीं होंगी। धर्म की पहचान होने के बाद जो भी धर्म क्रियाएँ होंगी वे विशेष फलदायी होंगी। लाभदायी होंगी।

जय-जय भद्दा, जय-जय नंदा।
सदा अखण्ड रहे मन श्रद्धा।।

जय-जय भद्दा का अर्थ हुआ, जय हो, कल्याण हो। कल्याण की जय हो। सदा जय हो विजय हो।

कल्याण किसको कहा गया है?

आनंद को कल्याण कहा गया है। कल्य का अर्थ होता है मोक्ष और कल्याण का अर्थ होता है मोक्ष प्रदान कराने वाले। आनंद देने वाले। भद्दा का अर्थ भी कल्याण होता है।

महावीर भगवान के युग में दीक्षा होते समय 'जय-जय भद्दा, जय-जय नंदा का' उद्घोष किया जाता था। उस उद्घोष का तात्पर्य है कि तुम कल्याण पथ पर आगे बढ़ रहे हो। आनंद के पथ पर आगे बढ़ रहे हो। तुम्हारा मंगल हो। कल्याण हो। किंतु एक बात ध्यान में ले लेना, कल्याण तभी हो

पाएगा जब श्रद्धा का खूँटा मजबूत रहेगा।

'सदा अखण्ड रहे मन श्रद्धा'

श्रद्धा सदा अखण्डित रहती है, उसकी जय होती है। उसका कल्याण होता है, वह आनन्दित होता है। अर्थात् उसका आनन्द सदाबहार होता है।

एक-दो दिन नहीं, सदा सर्वदा। एक सामायिक या दो सामायिक के समय तक नहीं। अखण्ड श्रद्धा मन में रहेगी तो ही कल्याण होगा, तो ही भद्र होगा। ऐसी धर्म श्रद्धा मंगलदायी है। मंगलकारी है। धर्म श्रद्धा को स्वीकार कर उस पर अडिग रहना चाहिए।

अभी सुमित मुनि जी म.सा. आपको सुना रहे थे कि धर्म क्या है और कहाँ है। आपको इनकी बात समझ में आ गयी होगी।

धर्म कहाँ है?

मैंने एक बार कहा कि स्व में स्थित हो जाना यानी अपने आपमें स्थित हो जाना धर्म है। अपने आपमें मौजूदगी धर्म है। स्वयं में अपनी मौजूदगी का अहसास होना, विश्वास होना धर्म श्रद्धा है।

आपको अपनी मौजूदगी का अहसास हो रहा है या नहीं हो रहा है? अपनी आत्मा का अनुभव हो रहा है या नहीं हो रहा है?

जब तक इस तरह की अनुभूति नहीं होगी, तब तक धर्म का जागरण नहीं हो पाएगा। तब तक धर्म श्रद्धा सुदृढ़ नहीं हो पाएगी। धर्म श्रद्धा के अभाव में कितनी भी क्रियाएँ कर ली जाएं, कितने भी धर्मानुष्ठान कर लिए जाएं वे आध्यात्मिक क्षेत्र में लाभदायी नहीं होंगे। अर्थात् मोक्ष की दिशा में, आनंद की दिशा में आगे बढ़ाने वाले नहीं होंगे। कोई भी धार्मिक क्रिया तब सफल होगी जब धर्म की अनुभूति होगी। जब आत्मा का बोध होगा और धर्म पर श्रद्धा होगी। जब अपने पर श्रद्धा होगी, अपने पर विश्वास होगा।

तपस्याएं निरंतर चल रही हैं। तपस्या किसी कामना से नहीं होनी चाहिए। धर्म की आराधना किसी भौतिक सत्ता-संपत्ति की चाह से नहीं होनी चाहिए। कोई भी धर्मानुष्ठान इस भावना से नहीं होना चाहिए कि लोक में मेरा नाम हो जाएगा। मैं सुख से रहूंगा। मुझे देवलोक मिलेगा। स्वर्गलोक में जाऊंगा। मेरा यश होगा, नाम होगा, मेरी कीर्ति बढ़ेगी। इस कामना से धर्मानुष्ठान होगा तो बहुत हलके में निपट जाएगा।

एक व्यक्ति जंगल में गया। उसके हाथ एक रत्न लग गया। रत्न बड़ा चिकना था। उसको बड़ा अच्छा लगा। वह रत्न को अपने हाथ में उछालता हुआ जा रहा था। रास्ते में उसको दूसरा व्यक्ति मिला। उसने कहा कि यह पत्थर तो बहुत बढ़िया है भाई! यह मुझे दे दो। जिसके हाथ में रत्न था, उसने कहा कि ऐसे कैसे दे दूँ। दूसरे व्यक्ति ने कहा, बोलो क्या कीमत लोगे? उस व्यक्ति ने कहा, दस रुपए लूंगा। दूसरे व्यक्ति ने दस का नोट थमाकर उसके हाथ से रत्न ले लिया। वह रत्न बेशकीमती था।

मान लीजिए कि उसकी कीमत एक लाख रुपये थी और उस भाई ने दस रुपए में बेच दिया तो उसने समझदारी का काम किया या नासमझी का?

(श्रोतागण बोले– नासमझी का काम किया)

नासमझी का काम क्यों किया?

उसने अपने मुँह से उस रत्न की कीमत दस रुपए आँक ली। वह यह भी कह सकता था कि भाई! मुझे इसकी कीमत मालूम नहीं है, आपको जो कीमत देनी है दे दो, तो मेरे खयाल से दस रुपए से ज्यादा ही मिलता। यदि वह कह देता कि मुझे इसकी कीमत मालूम नहीं है, आपको जितनी कीमत देना है दे दो, तो देने वाले की जिम्मेदारी बन जाती कि वह कितनी कीमत दे। मेरे खयाल से वह जितनी भी कीमत देता, दस रुपए से तो ज्यादा ही देता, किंतु उसने अपने मुँह से कहा कि दस रुपए दे दीजिए और रत्न को दस रुपए में बेच दिया।

उसी तरह यदि हमने यश, कीर्ति, नाम, संपत्ति, वैभव, सुख-शांति के लिए धर्मानुष्ठान किया तो उसका फल वहीं तक सीमित हो जाएगा। हमने अपने मुँह से जितने में सौदा किया, उतने में पक्का हो गया। जितना माँगा, वह मिल गया। अपने मुँह से नहीं माँगें। आत्मशुद्धि के लिए करें यानी जो मूल्य होगा वह मिलेगा। अर्थात् उसका महान लाभ होगा।

एक सम्यक् दृष्टि जीव उपवास करता है और एक मिथ्या दृष्टि उपवास करता है। दोनों की निर्जरा में असंख्येय गुणा तारतम्यता होती है। मिथ्या दृष्टि वाले के उपवास का ज्यादा लाभ नहीं मिलेगा और सम्यक् दृष्टि वाले के उपवास का करोड़ों से भी ज्यादा लाभ मिलेगा। करोड़ तो फिर भी संख्या है। असंख्येय गुणा लाभ मिलेगा। इसी प्रकार एक सम्यक् दृष्टि का उपवास और श्रावक का उपवास असंख्येय गुणा अधिक निर्जरा करानेवाला होगा।

पाँचवें गुणस्थान में रहने वाले और एक साधु के गुणस्थान में रहने वाले के उपवास की निर्जरा में क्या अंतर रहेगा?

उसमें भी असंख्येय गुणा अंतर रहेगा। भावना की विशुद्धि, परिणाम की विशुद्धि, लेश्याओं की विशुद्धि, अध्यवसायों की विशुद्धि के कारण यह अंतर होता है। जितनी-जितनी लेश्याएं शुद्ध होंगी, भावनाएं पवित्र होंगी, उतना-उतना महान लाभ होता जाएगा। छठे-सातवें गुणस्थान वाला जो कर्म निर्जरा करता है, उससे असंख्येय गुणा कर्म निर्जरा उपसम और क्षपक श्रेणीवाला करता है।

व्यक्ति जितना ऊपर जाएगा, उतना ही हलका होता जाएगा। आत्मा जितनी ऊँचाइयों पर बढ़ेगी, उतनी ही हलकी होती जाएगी। हवाई जहाज आकाश में उड़ता है। ऊपर जाने पर उसको हलकेपन की अनुभूति होगी।

हलकापन क्यों हो जाता है?

क्योंकि वहाँ गुरुत्वाकर्षण का उतना संबंध नहीं रहता। वैसे ही आत्मा जितनी ऊँचाइयों पर जाएगी, हलकी होती जाएगी। साथ ही कर्मों की निर्जरा और ज्यादा विशेष रूप से करती रहेगी। इसलिए चाहे नवकारसी कर रहे हों या पोरसी, एकासना, उपवास, बेला-तेला कर रहे हों, किसी प्रकार की कामना की दृष्टि नहीं होनी चाहिए।

यहाँ शुद्ध क्रिया विधि शिविर भी लगा था। शिविर में भाग लेने वालों ने समझा भी होगा कि शुद्ध भावों से, विधि के अनुसार क्रियाओं का, अनुष्ठानों का परिपालन होता है तो वह बहुत लाभ देनेवाला होता है। विधि से किए गए कार्य और अविधि से किए गए कार्य में फर्क होगा। विधि से सम्पन्न कार्य में सौंदर्य होगा। अविधि से किया गया कार्य संपन्न तो हो सकता है किंतु उसमें वह सौंदर्य नहीं आ पाएगा।

आज कई लोगों के मासखमण संपन्न हो रहे हैं। महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. के बारे में आप सुन गए। सतियां जी ने सोचा कि दस, ग्यारह, पंद्रह में पारणा हो जाएगा, किंतु उन्होंने विचार कर लिया कि मुझे मासखमण करना है। जो सोच लेता है और दृढ़ता से विचार कर लेता है वह सफलता प्राप्त करता है। सफल होने वालों की घटनाएं हमने सुनी, पढ़ी और जानी हैं। एक पाँव से लाचार व्यक्ति भी हिमालय की चोटी पर चढ़ गया। हिमालय के शिखर पर चढ़ गया।

किसके बलबूते चढ़ा?

भावना के बलबूते चढ़ा। मन मजबूत बना लिया कि मुझे हिमालय पर चढ़ना है। धीरे-धीरे चढ़ा या कैसे भी चढ़ा, चढ़ गया। वैसे ही यदि हम संकल्प कर लें तो कार्य पूरा कर सकते हैं।

कौन-सा संकल्प कर लें?

(श्रोतागण बोले- मासखमण का संकल्प कर लें)

मासखमण तो सामान्य बात है। यदि संकल्प कर लें, भावना बना लें कि मुझे साधु बनना है, तो क्या बड़ी बात होगी। साधु बनना बड़ी बात है या मासखमण करना?

(श्रोतागण बोले- साधु बनना बड़ी बात है)

जब हम भावना ही भा रहे हैं, संकल्प ही कर रहे हैं कि फिर किसका करना?

(श्रोतागण बोले- साधु बनने का संकल्प मजबूत करना)

'हे प्रभु! मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार।'

मेरी बात ध्यान में लेना। अभी आप सामायिक में बैठे हैं। मन में थोड़ा सा भी विचार हो कि साधु बनना है, साधु बनने की थोड़ी सी भी भावना हो, एक प्रतिशत भी भावना हो तो बोलना... नहीं तो झूठी पुकार नहीं करनी। एक प्रतिशत को सौ प्रतिशत बनाया जा सकता है। एक प्रतिशत भावना का सिंचन करते हुए उसे सौ प्रतिशत तक पहुँचाया जा सकता है। बीज ही नहीं हो तो कितना ही खाद-पानी डाल दें, क्या मिलेगा? यदि बीज है, भूमि सहज और ऊर्वर है तो पानी और खाद डालेंगे तो फसल आएगी। वैसे ही हमारे भीतर बीज मौजूद है तो हमें बोलना है।

हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार।
छोड़ के सारे पाप अठार, मैं भी बन जाऊँ अणगार।। हे प्रभु...

हमारी भावना होना लाभ का कारण है। हमारे निमित्त से यदि किसी दूसरे की भावना बनती है तो यह लाभ का कारण है। हमारे निमित्त से दूसरे का मन बने तो भी हमें लाभ है। यदि आपके पड़ोसी को भी आपकी आवाज सुनाई न दे तो उसकी भावना कैसे जगेगी! यदि बीज ही नहीं डाला जाएगा तो फसल कहाँ से पैदा होगी! इसलिए लक्ष्य होना चाहिए कि हमारी आवाज पड़ोसी तक पहुँचे।

'हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊँ अणगार।'

मान लो आप व्याख्यान से उठे और वर्षा होने लगी। आपको किसी गाड़ी में नहीं, पैदल जाना है। आप जूता या चप्पल पहने हुए हैं। बहुत प्रयत्न करने के बावजूद आपके पाँव कीचड़ से भर गए। कीचड़ भरे पैरों से आप घर चले गए। घर जाने के बाद पैरों को साफ करके भोजन करेंगे या बिना साफ किए?

(श्रोतागण बोले- पैरों को साफ करके भोजन करेंगे)

मेरे खयाल से पहले पैर साफ करेंगे, चाहे कितनी भी भूख लगी हो। अठारह पाप कीचड़ के समान है। अठारह पापों में मिथ्यात्व सबसे बड़ा पाप है। मिथ्यात्व की तुलना में सारे पाप हलके हैं। वह संसार का खूँटा है। मिथ्यात्व का खूँटा जब तक मजबूत बना रहेगा, तब तक आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

हाथी को साँकल लगाकर खंभे से बाँध दिया जाए तो उसे उखाड़ना हाथी के वश की बात नहीं होगी। वह खंभे के आस-पास घूमेगा, किंतु उसके आगे उसकी भी गति बंद हो जाएगी। कोई प्राणी कितना ही सशक्त क्यों न हो, वह जब तक बंधन युक्त होगा, तब तक उसकी गति सीमित ही रहेगी। इसलिए सबसे पहले बंधन को तोड़ें। मिथ्यात्व के बंधन को तोड़ना जरूरी है। मिथ्यात्व का बंधन टूटेगा तो गति तेज हो पाएगी।

मैंने सम्यक् दृष्टि श्रावक और साधु की निर्जरा की बात बताई। सम्यक् दृष्टि की गति मंदतर होती है। श्रावक की गति तीव्र होती है। साधु की गति श्रावक से भी तीव्र होती है। इसलिए इन तीनों के कर्मों की निर्जरा में भी अंतर होता है। भावों की तीव्रता के अनुपात से कर्मों की निर्जरा होगी। भावों में तीव्रता तब आएगी जब परिणाम शुद्ध होंगे। जब क्रोध हावी नहीं होगा। जब अहंकार के शिकंजे में नहीं फँसे होंगे। जब माया और लोभ हावी नहीं होंगे।

क्रोध, हीन भाव पैदा करता है। हीन भावनाओं से अहंकार पैदा होता है। अपनी कमजोरी दूसरों को नहीं झलके, इसलिए अपना स्टेटस बचाने के लिए व्यक्ति अहंकार करता है। व्यक्ति सोचता है कि मेरी कमजोरी किसी को दिखनी नहीं चाहिए। झलकनी नहीं चाहिए। दरअसल अहंकारी व्यक्ति बहुत कमजोर होता है। यदि वह सशक्त होता तो उसको बीच में अहंकार लाने की आवश्यकता नहीं होती।

सुशीलाकँवर जी म.सा. आज यहाँ पधारी हुई हैं। उनके पास आपने

एक छड़ी देखी होगी, उन्हें वह छड़ी साथ क्यों लानी पड़ रही है? जय श्री जी म.सा. धीरे चलती होंगी, किंतु वे छड़ी नहीं लाई होंगी।

साधु को लाठी हाथ में कब लेनी पड़ती है? साधु हो या कोई भी, उसे डण्डा क्यों लेना पड़ता है?

जब पाँव कमजोर हो जाते हैं, घुटने दुखने लगते हैं तो डण्डे का सहारा लेना पड़ता है। वैसे ही अहंकार का सहारा लेने का मतलब है कि आत्मा कमजोर है। अभी हमारे भीतर जो स्पंदन होना चाहिए वह नहीं हो पाया है।

अपनी गलती को छुपाने के लिए अपनाए गए तरीकों को, अपनाए गए उपायों को माया कहा जाता है। लोभ अभाव का सूचक है। मेरे पास चाहे कितना भी धन हो, किंतु मेरी दृष्टि में कम है, इसलिए और चाहिए। यह अभाव का सूचक है। संतोष सद्भाव तृप्ति का सूचक है। जिस दिन यह दृष्टि हो जाएगी कि जो है वह पर्याप्त है, और नहीं चाहिए, उस दिन भीतर पूर्णता झलकने लगेगी। उस दिन भरे-भरे नजर आएंगे। खाली-खाली नजर नहीं आएंगे। लगेगा कि तृप्त हो गए।

तपस्या तृप्ति देने वाली होनी चाहिए। मन को संतोष देने वाली होनी चाहिए। तपस्या करते समय मन में गम नहीं रहे। विषाद नहीं रहे कि क्या करूँ तपस्या का पच्चक्खाण हो गया। मन में यह न रहे कि आज बड़ी अच्छी गोचरी आई है, मन करता है कि गोचरी कर लूं।

हजारों-लाखों बार खा चुके हैं। जन्मों-जन्मों में खाया है। एक से बढ़कर एक पदार्थ खाए हैं, किंतु किस काम आया? क्या-क्या नहीं खाया होगा, किंतु खाने के बाद क्या हो गया। सुबह खाया और शाम को फिर भूख लग जाती है। इसलिए खाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। मन का संतोष, मन की तृप्ति बहुत महत्त्वपूर्ण है।

महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. ने मासखमण करने का मन बनाया और आज वे मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रही हैं। इसी शृंखला में आज कई भाई-बहनों के मासखमण पूरे हो रहे हैं। आगे उनका जैसा मनोबल होगा वैसा करेंगे। सुशीला जी कटारिया ने सुबह पच्चक्खाण ले लिया, आज मासखमण के रथ पर हैं। सरिता जी का कल मासखमण हुआ और आज उन्होंने 31 का पच्चक्खाण ले लिया। रिभिता जी गांधी की आज मासखमण

की तपस्या है। संजय जी चौधरी आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रहे हैं। जुबिन जी मुणोत भी आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रहे हैं। अभिषेक जी कांठेड़ मासखमण से दो कदम पीछे हैं। आज उनकी 28 की तपस्या है।

तपस्या में शांत भाव रहना चाहिए। समाधि रहनी चाहिए। अधिकांशतया तपस्या में आदमी को उत्तेजना ज्यादा आती है। थोड़ा-सा भी मन के अनुकूल काम नहीं हुआ तो गुस्सा आ जाएगा। समय पर पानी नहीं पिलाएंगे तो गुस्सा आ जाएगा। समय पर किसी ने काम नहीं किया तो उत्तेजित होंगे। उत्तेजित नहीं होना है। ऐसे समय में लक्ष्य होना चाहिए कि अपने आपको शांत रखूँ, समाधि में रहूँ।

तपस्या गुस्सा या उत्तेजना बढ़ाने के लिए नहीं की जाती, बल्कि उसे शांत करने की लिए की जाती है। जितनी शांति बढ़ेगी, जितनी समाधि बढ़ेगी तपस्या का उतना ही विशेष लाभ होगा। तपस्या करने के साथ क्रोध कर लिया तो उसका परिणाम क्या होगा?

ऋषि विश्वामित्र बहुत तपस्या करते थे किंतु ब्रह्मर्षि नहीं बन पाए। उन्हें ऋषि कहा जाता, ब्रह्मर्षि नहीं। इस पर उनको बहुत गुस्सा आता कि मैं इतनी तपस्या करता हूँ, फिर भी ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त नहीं हुआ। उस समय वशिष्ठ जी ब्रह्मर्षि कहलाते थे। दूसरे ऋषियों का मंतव्य था कि वशिष्ठ जी जिसको ब्रह्मर्षि कहेंगे वही ब्रह्मर्षि माना जाएगा। विश्वामित्र, वशिष्ठ जी पर गुस्सा होते कि ये मुझे ब्रह्मर्षि क्यों नहीं बोल रहे हैं? मैं इतनी तपस्या कर रहा हूँ फिर भी मुझे ब्रह्मर्षि नहीं कहते।

विश्वामित्र एक बार वशिष्ठ जी की घात करने के लिए चले गए। रात्रि का समय था। उस सयम वशिष्ठ जी अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे, वाचना दे रहे थे। विश्वामित्र जी ने देखा कि अभी तो वशिष्ठ जी जगे हुए हैं, वाचना दे रहे हैं। वे एक कोने में छुपकर बैठ गए।

वशिष्ठ जी कह रहे थे, देखो! विश्वामित्र ऋषि बहुत तपस्वी हैं, बहुत महान हैं। ऐसा सुनकर विश्वामित्र जी के कान खड़े हो गए कि मैं जिनकी घात करने के लिए आया हूँ उनके मन में मेरे प्रति कैसे विचार हैं। धीरे-धीरे विश्वामित्र का पारा ठण्डा हो गया। वे शांत हुए और वशिष्ठ जी के सामने प्रकट होकर उनके चरणों में गिर गए और कहने लगे, धिक्कार है मेरी आत्मा को! मैं

केवल तपस्या कर रहा हूँ, मेरा क्रोध शांत नहीं हुआ। मुझे बात-बात पर उत्तेजना आ जाती है। आज मैंने आपके विचार सुने तो मुझे बहुत ग्लानि हुई। विश्वामित्र जी ने कहा कि मैं अधम हूँ, मेरी तपस्या व्यर्थ है। वशिष्ठ जी ने उनको उठाते हुए कहा कि उठो ब्रह्मर्षि।

क्या बोले वशिष्ठ जी?

जो कार्य तलवार के बल पर नहीं हो सका, वह अहंकार गलाने से हो गया। विश्वामित्र का अहंकार गला तो उनको ज्ञात हुआ कि मैं कहाँ खड़ा हूँ। वशिष्ठ जी किसी के भी अवगुण नहीं देखते, वे सद्गुण देखते हैं और मैं अवगुण देखता हूँ। जब तक विश्वामित्र का गर्व नहीं गला तब तक वशिष्ठ जी उनको ब्रह्मर्षि नहीं बोल पाए। जैसे ही उनका गर्व गला, वैसे ही वशिष्ठ जी के मुँह से निकल गया, उठो ब्रह्मर्षि।

वशिष्ठ जी के संबोधन से विश्वामित्र का गर्व गल गया। उनका अभिमान गल गया। अहंकार गल गया और वे ब्रह्मर्षि बन गए। यह महिमा है अहंकार हटने की। तपस्या के माध्यम से अपना अहंकार गलाने की कोशिश करनी चाहिए। अहंकार गलेगा, उत्तेजना शांत होगी तो तपस्या का बड़ा आनंद आएगा। खाली भूखे मरने से कोई आनंद प्राप्त नहीं हो सकता। भावना जितनी विशुद्ध होगी, कर्मों की निर्जरा उतनी ही विशेष रूप से हो पाएगी।

सुनंदा का चारित्र भी हम सुन रहे हैं।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
मैं हूँ घर की नहीं पराई, ना मैं मेहमान बनकर आई,
आप तो दें आशीष, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा ने सास का उदास चेहरा देखा। दिल में दर्द नजर आया तो बोली, ऐसा क्यों है?

सास ने जवाब दिया, बेटी मैं क्या बताऊँ। तुम देख रही हो सुरेश को। सुरेश पशुवत है। न बोल पाता है न सुन पाता है। हम पशुओं की भी रक्षा करते हैं। पशुओं को बचाने की कोशिश करते हैं, यह तो मानव है, इनसान है। इसके कारण से मुझे बहुत पीड़ा होती रहती है। विजय इससे नफरत करता है। बहन उर्मिला उसको फूटी आँख देखना नहीं चाहती। यह भी उनसे भय खाता रहता है। जब तक मैं हूँ, तब तक ठीक है, किंतु एक दिन सबकी मौत आती है। कोई

अमर नहीं रहता। मुझे मन में यही पीड़ा होती रहती है कि मेरे बाद सुरेश का क्या होगा?

सुनंदा बोली, माँजी! मैं जिस दिन आई उस दिन भी बोली थी कि मैं घर की हूँ पराई नहीं हूँ। आप निश्चिंत रहें।

वचन आपको है यह मेरा, बेटा देवर जो है मेरा,
ध्यान रखूं हर बार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा ने कहा, माँजी! जिस दिन मैं घर में आई, उस दिन आपसे बोली थी कि मैं घर की हूँ पराई नहीं हूँ। जब मैं घर की हूँ तो घर के दायित्व को पूरा करना मेरा कर्तव्य बनता है। उसने कहा, मैं आपको वचन देती हूँ कि सुरेश मेरा देवर है पर मैं उसे अपने बेटे से भी बढ़कर रखूंगी। मैं उसका पूरा ध्यान रखूंगी। आप निश्चिंत हो जाइए। आपको चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

सुनंदा की बात सुनकर उसकी सास की आँखों में चमक आ गई। वह सोच नहीं सकती थी कि एक तरफ एक ही माता के गर्भ से जन्मे हुए भाई-बहन सुरेश की उपेक्षा करते हैं, उसको देखना तक नहीं चाहते हैं दूसरी तरफ पराए घर से आई सुनंदा ऐसा बोल रही है। इसके मन में कोई लाग-लपेट नहीं है। छल-कपट नहीं है। यह बोल रही है कि मैं अपने बेटे से भी बढ़कर उसका ध्यान रखूंगी।

सास की आँखों से अश्रुधार बहने लगी। वह सुनंदा के सिर पर हाथ फेरती हुई, उसे सीने से लगाकर कहती है, बेटी! मुझे यही आशा थी। मुझे पूरा विश्वास था कि तुम इस पशुवत इनसान की रक्षा करोगी। आज मेरा दिल हलका हो गया। आज मुझे अपार खुशी हो रही है। अब मैं मरूंगी तो भी अच्छी तरह से मरूंगी। तुमने मेरे सिर का बहुत बड़ा बोझ हलका कर दिया।

आशीष कहाँ से मिलती है?

आप कहते हैं म.सा. मेरे सिर पर हाथ रख दें। हाथ रखने से आशीष मिल जाएगी क्या? सुनंदा को आशीर्वाद मिला या नहीं?

(श्रोतागण बोले- आशीर्वाद मिला)

जो आशीर्वाद विजय को प्राप्त नहीं हुआ, वह सुनंदा को प्राप्त हुआ।

सुनंदा को किस कारण से आशीर्वाद प्राप्त हुआ?

उसका कारण है कि उसने सास के दिल की बात निरंतर जानी-समझी। उनके दर्द को दूर करने का प्रयत्न किया तो सास के भीतर से अपने आप आशीर्वाद बहने लगा। बहकर सुनंदा पर बरसने लगा।

बंधुओ! क्या कहें, क्या सोचें और क्या विचार करें। जन्म देने वाली माता यदि हमारे कारण से दुखी हो जाती है, उसका दर्द दूर करने में हम समर्थ नहीं हो रहे हैं तो समझ लीजिए कि हमारा स्थान कहाँ रहेगा। हम एक चींटी की रक्षा के लिए हाथ में पूंजनी लेते हैं। वायुकाय की विराधना न हो, इसलिए मुँहपत्ती बाँधते हैं। किन्तु यदि किसी व्यक्ति पर तीक्ष्ण शब्दों का प्रहार करते हैं और वह किसी के कलेजे में चुभ जाता है तो उससे कर्मों का बंध करने वाले बन जाएंगे।

एक तो हमने चींटी की रक्षा करने के लिए पूंजनी हाथ में ली और एक किसी को कर्कश शब्द सुना रहे हैं। कर्कश शब्दों से कलेजा छेद रहे हैं। लाभ किस में हुआ? चींटी की रक्षा करके जितना लाभ पाया उससे ज्यादा कर्कश शब्द सुनाकर खो दिया। कलुषित भावों से कहे गए शब्द बड़े तीखे होते हैं। ऐसे शब्द भयंकर कर्मों का बंधन कराने वाले होते हैं।

एक छोटी सी घटना के कारण महाभारत की रचना हो गई। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम भी महाभारत रचने जा रहे हैं। हम धर्म स्थान में आए हैं। यहाँ कर्मों को बढ़ाने के लिए आए या घटाने के लिए?

(श्रोतागण बोले- कर्मों को घटाने के लिए आए हैं)

सोचने की आवश्यकता है, विचार करने की आवश्यकता है। जो तपस्वी आत्माएं आज मासखमण के रथ पर आरूढ़ होने जा रही हैं, उनसे प्रेरणा लें। अपना मन सुदृढ़ बनाएं कि अपने क्रोध पर विजय प्राप्त करें। मान को जीतने का लक्ष्य रहे। माया की लपेट में नहीं आएं। आँखों में लोभ नहीं दिखेगा। सदा तृप्ति का आनंद लेने वाले बनेंगे। धर्म श्रद्धा को सदा अखण्डित रखने का प्रयत्न करेंगे, ऐसा लक्ष्य बनता है तो अपने आपमें धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

29 जुलाई, 2023

10

धर्म करे जो अंतर्मन से

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।
'श्रद्धा उसकी दिन-दिन विकसे, धर्म करे जो अन्तर्मन से।'

जो व्यक्ति जहाँ पर है वहीं रहना चाहता है या आगे बढ़ना चाहता है?

(श्रोतागण बोले- आगे बढ़ना चाहता है)

बहुत सी बातों में हम आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं। आगे-से-आगे पढ़ाई करना चाहते हैं। कोशिश करते हैं कि धन आगे-से-आगे बढ़ता रहे, किंतु धर्माराधना की सोच कम लगती है।

चूल्हे में अग्नि है किंतु उसमें और ईंधन नहीं डाला जाएगा तो अग्नि बुझ जाएगी। अग्नि को थोड़ा-थोड़ा ईंधन निरंतर मिलता रहेगा तो वह बढ़ती जाएगी। दीपक में तेल भरा हुआ हो, बाती लगी हो और दीपक जलता रहे तो जलते-जलते तेल खत्म हो जाएगा। यदि दीपक की लौ अखंड रखनी हो तो उसमें समय-समय पर तेल डालना होगा। तेल डालते जाने पर दीपक नहीं बुझेगा।

धर्म की श्रद्धा दिन-दिन विकसित होती रहनी चाहिए। दिन-दिन बढ़ती रहनी चाहिए, वृद्धि को प्राप्त होती रहनी चाहिए। धर्म की श्रद्धा घटनी नहीं चाहिए।

सवाल है कि कैसे बढ़ेगी धर्म की श्रद्धा?

इसके जवाब में कहा गया कि 'करे धर्म जो अन्तर्मन से।' अर्थात् अन्तर्मन से धर्म की आराधना करते रहने पर श्रद्धा विकसित होती रहेगी।

आचार्य गुरुदेव एक आख्यान फरमाया करते थे। एक बहन अपने ननिहाल पहुँची। ननिहाल सर्वोदयी था। सर्वोदयी अपना काम खुद करते हैं। चरखा कातना, घट्टी चलाना जैसे कार्य परिवार के लोग ही करते हैं। परिवार के सारे सदस्य भले ही दस-पंद्रह मिनट घट्टी चलाएं, किंतु रोज चलाते थे। आटा पीसने का काम रोज करते थे।

वह बहन ननिहाल गई तो उसको भी कहा गया कि तुम भी घट्टी चलाओ। उसको यह काम कम पसंद था। उसके नाना जी बोले, बेटी! इसे केवल शारीरिक मेहनत के लिए नहीं करते। इसके पीछे बहुत बड़ा रीजन है। इसके पीछे गंभीर समाधान है। इससे मन की एकाग्रता सधती है। धैर्य व सहनशीलता का विकास होता है। इस प्रकार जिन्होंने घट्टी पीसने के काम को केवल शारीरिक मेहनत नहीं समझकर, उसके महत्त्व को जान लिया वे उसमें तन्मय हो जाते हैं।

वर्तमान में बहुत कम घरों में घट्टियाँ चल रही होंगी। दो दिन पहले रात्रि के समय ऐसा ही कोई प्रवाह चल गया और उपाध्यायश्री जी ने कई लोगों को पच्चक्खाण करवाए कि एक महीने तक चक्की के आटे से बनी रोटी उपयोग में नहीं लेंगे।

कौन-सा आटा नहीं खाना?

जो आटा मशीन की चक्की में पीसा जाता है, वह नहीं खाना। यहाँ दो उपाय हो सकते हैं या तो घट्टी चलाकर आटा पीसें या चावल-खिचड़ी आदि खाकर काम चलाएं, क्योंकि मशीन का आटा खाना नहीं है।

हमारे ईश्वरचंद जी म.सा. ने प्रतिज्ञा थी कि कल (चक्की) के आटे की रोटी नहीं खाना। दूसरे संतों के लिए कल (चक्की) की रोटी गोचरी में लाते थे, किंतु स्वयं नहीं खाते थे। उनका यह नियम जीवन-पर्यंत निभा।

आज कोई साधु नियम ले ले, तो उसका निर्वाह कैसे होगा? लोगों ने एक महीने का पच्चक्खाण लिया हुआ है। हो सकता है एक महीने तक वहाँ गोचरी मिल जाए, उसके आगे क्या होगा? यद्यपि लोगों के मन में तो विचार होता है, किंतु अनाज पीसे कौन? अनाज पीसने की फुरसत घर में किसके पास है? पहले जो बहनें घट्टियाँ चलाती थीं उनको ध्यान होता था कि कितना गाला भरना है। एकदम मुट्ठी भरकर, धोबा भरकर अनाज नहीं डाला जाता था।

थोड़ा-थोड़ा डाला जाता था। यदि एकसाथ ज्यादा अनाज भर दे तो घट्टी भारी हो जाएगी पाट चलेगा नहीं और यदि अनाज नहीं ऊरा गया तो पत्थर घिसने लगेंगे, घट्टी बराबर चलेगी नहीं। यह ज्ञान, घट्टी चलाने वाली बहनों को था। वे जानती थीं कि कितना मोटा या कितना बारीक आटा पीसना है।

उस बहन के नाना जी ने कहा, बेटी! इसके पीछे बहुत बड़ा रीजन है। मन को एकाग्र करने का यह बहुत बड़ा साधन है। घट्टी चलाना मतलब मन को साधना। यह केवल शारीरिक मेहनत नहीं है। मन थोड़ा ऊक-चूक होगा तो घट्टी चलेगी नहीं। थोड़ा-थोड़ा अनाज घट्टी में ऊरने पर घट्टी बराबर चलती है, आटा निकलता रहता है। जैसे थोड़ा-थोड़ा अनाज घट्टी में डालने पर घट्टी बराबर चलती है, वैसे ही कुछ-न-कुछ अच्छी शिक्षा ग्रहण करते रहने से मन पवित्र होता रहेगा। मन को अच्छी शिक्षा नहीं मिलेगी तो वह जाम हो जाएगा, फँस जाएगा, आगे बढ़ नहीं पाएगा।

क्षयोपशम के लिए भी यही बात कही जाती है। कर्मों का क्षयोपशम करना है तो प्रतिदन कुछ-न-कुछ नया ज्ञान करते जाओ।

आचार्य पूज्य श्री लाल जी म.सा. ने प्रतिज्ञा की थी कि 45 वर्ष की उम्र तक प्रतिदिन कोई-न-कोई गाथा, श्लोक, भजन, थोकड़ा या कुछ भी कम-से-कम एक लाइन याद करना। ज्यादा कितना भी हो जाए।

ऐसा कब तक करना था?

(श्रोतागण बोले- 45 साल की उम्र तक)

45 वर्ष की उम्र होने तक याद करना था। आगे भी हो जाए तो ठीक है, किंतु 45 वर्ष तक का नियम था। हमें भी यह नियम अपनाना चाहिए। चाहे एक गाथा, एक भजन या कुछ भी हो, रोज नया ज्ञान अर्जित करेंगे।

तीर्थंकर नामकर्म उपार्जन के बीस बोल किस-किसको याद है? हाथ खड़ा करें। किसी का भी हाथ खड़ा नहीं हो रहा है।

(एक बहन ने हाथ खड़ा किया)

(मंत्री जी बोले- एक बहन का हाथ खड़ा है)

मेरा ध्यान उस तरफ नहीं गया, आपका चला गया।

इतनी बड़ी सभा में सिर्फ एक बहन ने हाथ खड़ा किया।

किस-किसने पढ़ा है?

बहुतों ने पढ़ा होगा, किंतु याद किस-किसको है? चार-पाँच बोल भी किसी को याद है क्या? उसमें एक बोल यह है कि-

'प्रतिदिन नया ज्ञान सीखें तो कर्मों री क्रोड़ खपावें'

उत्कृष्ट रसायन आए तीर्थंकर नाम का बन्ध करें।

क्या सुंदर उपाय है। प्रतिदिन नया बोल सीखें। ऐसा नहीं बताया कि प्रतिदिन, पूरे दिन ज्ञान में लगे रहें। थोड़ा-थोड़ा याद करने की बात कही गई। निरंतरता की बात कही गई। निरंतरता से भावों में संवेग होता है। आगे-से-आगे भाव बढ़ते रहते हैं।

प्रतिदिन कुछ नया सीखने वाला कोड़ा-कोड़ी कर्मों का क्षय करने वाला होता है। कितना सरल उपाय है। एक गाथा भी याद करें, किंतु तन्मयता से करें। निरंतर नया ज्ञान प्राप्त करने से बहुत से कर्मों की निर्जरा हो जाएगी। ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा होगी तो ज्ञान चढ़ने लगेगा।

आचार्य पूज्य गुरुदेव को शुरू में एक घण्टे में पाँच-सात गाथा याद हो पाती थी। निरंतर अभ्यास करते रहने से एक घण्टे में चालीस-चालीस गाथाएँ याद होने लगीं। कितने गुना याद होने लगा?

(श्रोतागण बोले- आठ गुना याद होने लगा)

कर्म निर्जरा कितने गुना हुई?

कर्म निर्जरा का कोई माप-तौल नहीं है। नया ज्ञान करते हुए बहुत ज्यादा उल्लास हो गया, भाव ऊँचे हो गए, तो तीर्थंकर नामकर्म का भी उपार्जन हो सकता है। हमें तीर्थंकर नामकर्म की मेहनत नहीं करनी है क्योंकि उसके लिए तीसरा भव लेना जरूरी होगा। हम तो कर्मों की क्रोड़ खपाते जाएं। कर्मों के इतने क्रोड़ खपा दें कि एक झटका लगे और सारे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय हो जाए। सारे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय होगा तो केवलज्ञान प्रकट हो जाएगा।

आप कह सकते हैं कि म.सा.! इस पंचम आरे में केवलज्ञान प्रकट नहीं होता। पंचम आरे में कोई मोक्ष नहीं जाता, तो यह मेहनत किसलिए करना!

नीमच में आईआईटी/इंफार्मेशन टेक्नालॉजी कॉलेज है क्या?

(श्रोतागण बोले- नहीं है)

नीमच में उक्त कॉलेज नहीं है। यहाँ का कोई बच्चा उस प्रकार का ज्ञान पढ़ना चाहे तो उसे क्या करना होगा? उसके पहले कितना अध्ययन होना

चाहिए? आप लोग बोल रहे हो- पहले कक्षा बारह उत्तीर्ण होना जरूरी है। उसके बाद कोई उक्त कॉलेजों में जा सकता है। 12वीं तक नीमच में पढ़ाई हो सकती है या नहीं? यदि आईआईटी आदि पढ़ने वाला यह सोचे कि नीमच में आईआईटी होगी तभी पढ़ूंगा तो क्या ऐसा सोचना उचित है? यदि वह 12वीं तक पढ़ा हुआ होगा तो दूसरी जगह से भी आईआईटी कर सकता है, दूसरे कॉलेज में भी पढ़ सकता है और उत्तीर्ण हो सकता है। यदि उसका भाग्य होगा तो बारहवीं पढ़ते-पढ़ते नीमच में भी आईआईटी कॉलेज हो जाए तो 12वीं पास करने के बाद उसको बाहर नहीं जाना पड़ेगा।

जैसे नीमच में 12वीं तक की पढ़ाई की जा सकती है, वैसे ही इस भव में इतनी तैयारी कर सकते हैं कि बीच में देव भव करके, पुन: मनुष्य जन्म में केवलज्ञान प्रकट किया जा सकता है, मोक्ष में जाया जा सकता है। इसको एकाभवतारी कहा गया है।

जब इतनी तैयारी यहाँ पर वर्तमान में भी हो सकती है तो हमें करनी चाहिए या नहीं?

(श्रोतागण बोले- तैयारी करनी चाहिए)

इतनी तैयारी करेंगे तो आने वाले समय में मोक्ष मिलेगा। किंतु यह तब होगा, जब धर्म-ध्यान करेंगे। धर्म-ध्यान नहीं करें और सोचें कि मोक्ष मिल जाएगा तो नहीं मिलेगा। ऐसा सोचना वही बात होगी कि

'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी।'

निरंतर नया ज्ञानार्जन का लक्ष्य होना चाहिए। चाहे एक शब्द सीखें या पाँच शब्द। चाहे आधी लाइन सीखें या एक लाइन, सीखें जरूर। यदि पाँच शब्द भी सीखना चालू कर दिया तो एक दिन बहुत सारा ज्ञान हो जाएगा। बूँद-बूँद से घड़ा भरता है। एक-एक अक्षर यदि याद करने लगे तो एक महीने में 30-32 अक्षर याद हो जाएंगे। 32 अक्षर यानी एक गाथा हो जाएगी। एक महीने में एक गाथा भी याद हुई तो कोई बात नहीं है। हुई तो सही। इस तरह भी जिंदगी में बहुत-सी गाथाएं याद कर लेंगे।

गाथाएं याद होंगी तो उस पर विचार कर पाएंगे, चिंतन हो पाएगा। उनसे ज्ञान प्रखर बनेगा, ज्ञान जितना प्रखर बनेगा श्रद्धा उतनी ही विकसित होती चली जाएगी। ठोस होती चली जाएगी। दृढ़ होती चली जाएगी।

'श्रद्धा उसकी दिन-दिन विकसे, धर्म करे जो अन्तर्मन से।'

कई लोग कहते हैं, म.सा.! याद नहीं होता? हमें भी पता है, नहीं होता। हम भी समझते हैं, नहीं होता। क्यों नहीं होता?

मा रूष, मा तुष मुनि की एक कहानी है। एक बहुत भद्रिक संत थे। सरल संत थे। वे रोज अपने गुरु महाराज से गाथा लेते थे। गाथा लेकर जाते और फिर भूल जाते थे कि क्या पाठ लिया। वे अगले दिन वापस आते और कहते गुरु महाराज! आपने क्या गाथा दी, मैं भूल गया। गुरु महाराज फिर पाठ देते। अगले दिन फिर आकर कहते कि मैं भूल गया। गुरु महाराज फिर देते। वह बार-बार आते और हर बार गुरु महाराज पाठ देते थे।

तब आज की तरह किताबें नहीं थीं कि उससे पढ़ लेते। तब मुँह से वाचनी लेनी होती थी। कई संत बोलते थे कि ऐसा क्या ठोठीराम है। याद करने के लिए बार-बार गुरु महाराज को परेशान करता है। कई संत कहते थे, देखो कितनी मेहनत कर रहा है। कितना पुरुषार्थ करता है। एक-एक शब्द को रटने की कोशिश कर रहा है। इतनी मेहनत यदि हम लोग करें तो सारे शास्त्र याद कर सकते हैं। इसकी मेहनत की दाद देनी पड़ेगी।

उनके मुँह से प्रशंसा सुनकर उसका मन पुलकित होता और ठोठीराम सुनता तो मन में खिन्नता आती।

वह गुरु महाराज के पास गया और कहा, गुरुदेव! संत भगवान ऐसा-ऐसा फरमाते हैं। कोई मेरी प्रशंसा करता है तो मुझे हर्ष होता है और कोई मुझे ठोठीराम बोलता है तो मेरे मन में खिन्नता पैदा होती है। उसने कहा कि ऐसा क्या करूँ, जिससे मेरे मन में ऊहापोह पैदा नहीं हो?

गुरु महाराज ने कहा, मा रूष, मा तुष।

क्या अर्थ होता है इसका?

इसका अर्थ होता है कि कोई तुम्हारी निंदा करे तो रूठना नहीं और यदि कोई तुम्हारी प्रशंसा करे तो हर्षित नहीं होना। दो बातों को याद रख लेना। न तो रूठना और न ही तुष्ट होना कि आहा! लोग मेरी कितनी प्रशंसा कर रहे हैं।

ऐसा विचार कभी नहीं आना चाहिए कि लोग मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। कोई ठोठीराम कहे तो भी मन में रुष्ट नहीं होना, खिन्न नहीं होना।

खैर, वह गाथा याद करना छोड़कर चार शब्दों को रटने लगा।

मा रूष, मा तुष... मा रूष, मा तुष...

याद करते उसे हाजत (लैट्रिन) हो गई। वह जंगल गया। वापस आने लगा तो उस सूत्र को भूल गया। याद करने की कोशिश करने लगा तो याद नहीं आ रहा था। दिमाग पर बहुत जोर देने के बाद भी याद नहीं आ रहा था।

रास्ते में एक खेत के खलिहान पर खला निकाला जा रहा था। उड़द को अलग किया जा रहा था और उनके छिलकों को अलग। उसने देखा कि एक तरफ उड़द को रखा जा रहा है और एक तरफ उसके छिलके को।

उसने इशारा कर किसान से पूछा कि यह क्या है?

किसान ने कहा, यह मास है और यह तुस है। उड़द का दूसरा नाम मास है और उसके छिलके को तुस कहा जाता है। सुनते ही उसने विचार किया कि गुरु महाराज ने यही तो बताया था। वह मा रूष, मा तुष भूल गया और मास-तुस, मास-तुस, मास-तुस रटने लगा। रटते-रटते उस पर विचार करने लगा कि गुरु महाराज ने कितनी सुंदर बात बताई कि मास अलग है और तुस अलग है। उड़द अलग है और उसका भूसा अलग है। वैसे ही शरीर अलग है और आत्मा अलग है।

वह आत्मा और शरीर के चिन्तन पर चला गया। उसमें इतना डूब गया कि उसके सारे ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय हुआ और केवलज्ञान हो गया। केवलज्ञान होना बहुत आसान काम है, पर उसके लिए कच्चा मैटेरियल होना चाहिए। वह होगा तो प्रोडक्शन किया जा सकता है। आटा होगा तो रोटी बनाई जा सकती है। आटा ही नहीं होगा तो रोटी कैसे बनेगी! अग्नि होगी तो खाना पकाया जा सकता है। अग्नि ही नहीं होगी तो खाना कहाँ से पकेगा! मूल द्रव्य होना जरूरी है।

श्रद्धा, मूल द्रव्य है। उसको निरंतर विकसित करने की आवश्यकता है। प्रयत्न होना चाहिए कि श्रद्धा कमजोर न हो। वह बढ़ती रहे। उसको बढ़ाने का उपाय है निरंतन ज्ञानार्जन। निरंतन ज्ञानार्जन होगा, निरंतर धर्माराधना होगी तो श्रद्धा विकसित होती रहेगी। मास-तुस मुनि की ज्ञानाराधना ने उन्हें केवलज्ञानी बना दिया।

मास-तुस मुनि ने गुरु महाराज के एक सूत्र को धारण लिया, स्वीकार किया कि कोई तुम्हारी निंदा करे, बुराई करते तो खिन्न नहीं होना और कोई

तुम्हारी प्रशंसा करे तो हर्ष नहीं मनाना। खुश नहीं होना।

ये दो सूत्र जीवन में धारण कर लेने पर खेवा पार है। बेड़ा पार है। ज्यादा ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान में डूबने की आवश्यकता है। उसकी गहराई में उतरने की आवश्यकता है।

कुएं की चौड़ाई कितनी होती है?

मेरे खयाल से पाँच-सात हाथ या तीन-चार मीटर चौड़ा होता है। कुएं की चौड़ाई बहुत ज्यादा नहीं होती। उसकी गहराई ज्यादा होती है। ज्यादा गहराई होने से पानी मिलता है। ट्यूबवेल का पाइप कितना चौड़ा होता है? मेरे खयाल से चार-पाँच इंच से ज्यादा चौड़ा नहीं होता होगा किंतु गहराई में जाने से पानी आ जाता है। वैसे ही ज्ञान भले थोड़ा हो, किंतु उसकी गहराई में उतरें। जितना गहरा जाएंगे, उतना ही फल पाएंगे।

कबीरदास जी ने क्या कहा?

कहा कि **'जिन खोजा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ...'**

समुद्र में गहराई में उतरने पर मोती मिलेंगे। गहराई में नहीं उतरने पर हाथ में मोती नहीं आ पाएंगे, पानी के झाग आ जाएंगे। मोती पाने के लिए गहराई में उतरना जरूरी है। हम किसी बात को याद कर लेते हैं। रट लेते हैं। उसकी गहराई में नहीं उतरते। गहराई में उतरने से बात स्पष्ट होती है। भगवान महावीर ने कहा-

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे।।

यह एक गाथा है। यह मूल मैटेरियल हो गया। कच्चा माल हो गया। अब उसमें उतरना होगा।

संयोग का अर्थ क्या होता है?

जिसका निश्चित रूप से वियोग होता है उसको संयोग कहते हैं। माता-पिता, पुत्र-पुत्री का वियोग होता है या ये सदा बने रहते हैं?

(श्रोतागण बोले- सबका वियोग होता है)

इन सबका वियोग होता है। हमारे शरीर का भी वियोग होता है और होगा। ये सारे संयोगजन्य हैं। संयोग से मुक्त होने के लिए शास्त्रकारों ने दो उपसर्ग लगाए हैं, 'वि' और 'प्र।' 'वि' का मतलब विशेष रूप से यानी बाह्य

संयोगों का विशेष रूप से त्याग। प्र-प्रकर्षेण-आभ्यन्तर संयोगों को गहराई से हटाना।

केंचुली उतर जाने के बाद साँप पीछे मुड़कर नहीं देखता कि केंचुली का क्या हुआ, क्योंकि वह जानता है कि मैं इससे छूट गया। वैसे ही हम संयोगों से मुक्त हो जाएं। ऐसे मुक्त हो जाएं कि वापस उधर आँख भी नहीं उठे। संयोगों से इस प्रकार मुक्त हो जाना मुनित्व है।

संयोग क्या है?

माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, बहू, परिजन, धन-वैभव, मकान, गाड़ी आदि द्रव्य संयोग हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, राग-द्वेष भाव संयोग हैं। द्रव्य संयोग और भाव संयोग को छोड़ने पर मुनि सुखी होगा। उसका मन शांत होगा। उसके मन में समाधि आ जाएगी। वह सम्यक् प्रकार से सदाचार का चालक होता है।

कल रात्रि को एक भाई ने प्रश्न पूछा कि म.सा.! मन को शांत करने के लिए क्या करना चाहिए? उस भाई के भाव थे कि मन को शांत करने की कोशिश करता हूँ, किंतु वह शांत नहीं होता। ज्ञान-ध्यान, धर्म-ध्यान करना चाहता हूँ तो भी मन शांत नहीं होता। मन में संसार की बातें चलती रहती हैं।

एक सूत्र स्वीकार कर लें कि संग्रह नहीं करना।

क्या नहीं करना? जोर से बोलें ताकि मेरी आवाज पीछे तक न जा पा रही हो तो आपकी आवाज चली जाए और पीछे वालों को भी सुनाई दे।

(श्रोतागण बोले- संग्रह नहीं करना)

पर आदत क्या है?

(श्रोतागण बोले- संग्रह करने की है)

संग्रह क्या करेगा? बोलो संग्रह क्या करेगा?

संग्रह, विग्रह करेगा। जहाँ संग्रह होगा, वहाँ विग्रह होगा। विग्रह मतलब, अलगाव। एक-दूसरे से भेद, एक दूसरे से भिन्नता। जहाँ भी संग्रह होगा, वहाँ विग्रह होगा। जंजाल खड़े होंगे। क्लेश होंगे। केवल बाहर का ही संग्रह नहीं होता, भावों में भी संग्रह होता जाता है।

अभय जी मुणत (रतलाम)! यह बताओ, आज से दस वर्ष पहले या दस वर्षों के बीच में किसी के साथ आपका झगड़ा हुआ या नहीं, कोई झमेला

हुआ या नहीं?

(अभय जी बोले– याद नहीं है)

अच्छी बात है, याद नहीं आ रहा है। संग्रह नहीं है, इसलिए याद नहीं आ रहा है। किसी के प्रति मन में ऊहापोह नहीं है। किसी के प्रति मन में द्वेष नहीं है।

(अभय जी बोले– याद नहीं आ रहा है)

यह केवल इनकी बात नहीं है। किसी की भी बात ले लें। ये बातें हमें याद रहती हैं कि इसने मुझे धोखा दे दिया, उसने मेरे साथ ऐसा कर दिया। उसने मेरे साथ दुर्व्यवहार किया। ऐसी बातें याद होने का मतलब है कि संग्रह बना हुआ है। जब तक संग्रह बना रहेगा, तब तक शांति नहीं मिलेगी, समाधि नहीं मिलेगी। थोड़ी देर के लिए सारा संग्रह हटाकर देखो मन में समाधि आती है या नहीं, शांति मिलती है या नहीं!

वैसे आप लोगों को धर्म स्थान में आने का नियम मालूम होगा। पर मेरे खयाल से उसका पालन कम होता होगा। सामायिक ली, कैसे ली? क्या पूरी विधि की? घर से निकलते हुए निस्सिही बोला गया। यह पद संसार के कार्यों से निवृत्ति का सूचक है। अर्थात् अब अमुक समय तक मैं सांसारिक कार्य से मुक्त हूँ। यह मन को संकेत देना होता है ताकि मन उसमें उलझा हुआ न रहे। किंतु आपको जल्दी रहती है, इतना समय कहाँ जो यहाँ आने से पहले मन में धैर्य धारण कराएं। भागते–भागते नहीं आएं। पहले चित्त को स्थिर कर लें कि मुझे धर्म स्थान में जाना है। प्रवचन में जाना है। समय निर्धारित करें कि इतने बजे तक पहुँचना है।

कितने बजे तक पहुँचना है?

(श्रोतागण बोले– साढ़े आठ बजे तक पहुँचना है)

कोई भी समय हो, निर्धारित कर लें कि इतने बजे धर्मस्थान में पहुँचना है। साढ़े आठ बजे आने वाले कितने लोग हैं?

(लोगों ने हाथ खड़े किए)

आज की बात नहीं है, रोजाना साढ़े आठ बजे आने की बात बता रहा हूँ। समय निर्धारित नहीं करते हैं तो भागते–भागते आते हैं। इसलिए समय निर्धारित करें। घर की दूरी के अनुसार समय तय करें ताकि भाग–दौड़ करने की

आवश्यकता नहीं रहे। हड़बड़ी नहीं रहे। जहाँ हड़बड़ी होती है, वहाँ गड़बड़ी होती है। धर्मस्थान में कोई हड़बड़ी नहीं होनी चाहिए। एकदम शांत भाव से आराधना कीजिए।

अधिकतर होता है कि घर से निकलने का समय होने पर आप देखते हैं कि जूते कहाँ हैं, चोलपट्टा कहाँ है, मुँहपत्ती किधर है, पूंजनी और चादर कहाँ है?

अरे भाई! पहले से समय निर्धारित होता तो अब हड़बड़ी नहीं करनी पड़ती। सारा सामान पहले से ही नियत स्थान पर होता तो भाग-दौड़ करने की जरूरत नहीं पड़ती।

एक सेठ के घर एक मेहमान पहुँचा। उसको निमंत्रित किया गया था। कहा गया था कि आपको आना ही पड़ेगा। रात को जैसे ही भोजन परोसा गया वैसे ही लाइट चली गई। लाइट जाने से अफरा-तफरी मच गई, खाना कैसे खाएं। मालिक ने अपनी पत्नी से कहा, मोमबत्ती जला दो। पत्नी इधर-उधर मोमबत्ती ढूँढने लगी, किंतु वह मिल नहीं पा रही थी। इतने में घर के मालिक ने उपदेश देना शुरू कर दिया कि क्या सरकार है। 100-200 यूनिट फ्री बिजली देने की बात कर रही है और भोजन करने के समय लाइट जाती है। सरकार घोषणा करती रहती है, किंतु कार्यों को पूरा नहीं करती। वह कहने लगा कि सरकार ऐसा करती है, वैसा करती है।

सुनते-सुनते मेहमान के कान पक गए। उसने कहा, भाई साहब! सरकार तो जिम्मेदार नहीं है, किंतु तुम्हारे घर में कोई जिम्मेदार है या नहीं? एक मोमबत्ती ढूँढने में इतना समय निकल गया और सरकार की खामियां ढूँढ रहे हो।

आपके घर में तो चीजें समय पर मिल ही जाती होंगी? वर्तमान में घरों का रख-रखाव किराए पर आदमी बुलाकर करवाया जाता है। वह सारी चीजें सेट कर देगा, वह तय कर देगा कि जूते कहाँ रखने, कार कहाँ खड़ी करनी, स्कूटर कहाँ पर खड़ा करना, किचन के सामान कहाँ पर रखने, कपड़े कहाँ पर रखने।

उसने सारा कुछ सेट कर दिया, सारे समानों को रखने की जगह निर्धारित कर दी, किंतु किसी ने उस जगह से चीज उठाकर दूसरी जगह रख दी

तो उसका कहा किस काम का। जहाँ से चीज उठायी गई, वापस उसी जगह रखने का काम तो घर वालों को ही करना होगा। किसी ने कोई चीज उठाकर दूसरी जगह रख दे और वह नहीं मिल रही हो तो किसको दोष देंगे? क्या दोष उस व्यक्ति को देंगे कि कैसे-कैसे आदमी हैं, पैसे ले लेते हैं, किंतु काम सही नहीं करते, काम बराबर नहीं करते!

काम करने वाले ने कमी नहीं रखी। कमी किसकी रही? एक बात ध्यान रखना, मन अस्त-व्यस्त होगा तो सारे कार्य अस्त-व्यस्त होंगे। किसी के आस-पास की चीजों को देखकर मालूम हो जाएगा कि उसका मन कितना सधा हुआ है।

योग पद्धति में इसके लिए भी सूत्र बताया गया है। माथा और ललाट के बीच में मिलने वाले भाग पर ध्यान केंद्रित करने से अस्त-व्यस्त मन को साधा जा सकता है। जिसमें वस्तुओं को रखने का तरीका सही हो जाता है।

भगवान ने चौथी समिति में साधुओं के लिए बताया है कि सामान बिखरा हुआ नहीं रखें। यह भी साधना का एक अंग है।

खैर, उस सेठ की पत्नी को मोमबत्ती ढूँढने में बहुत समय लगा। मोमबत्ती मिलने से पहले लाइट आ गई। यदि मोमबत्ती सही जगह रखी होती तो ज्यादा ढूँढनी नहीं पड़ती। हाथ फेरते ही हाथ में आ जाती।

हम अपना मैनेजमेंट नहीं करते। दूसरों की गलती निकालने के लिए हमारे पास टाइम है। सरकार की गलती निकालने के लिए हमारे पास समय ही समय है। किसी की गलती निकालना आसान काम है, किंतु सुधार कराना बहुत कठिन है। लोगों में गलती निकालने का काम नहीं करना, अपितु गलती को सुधारने का लक्ष्य रखना।

आप जानते हो तो बता दो कि ऐसे नहीं ऐसे करना। अमुक काम ऐसे करो। उसको एक बार में समझ नहीं आए तो चार बार समझाएं।

मा तुष, मा रुष मुनि को गुरु महाराज एक बार नहीं, बीसों बार गाथा देते हुए भी खिन्न नहीं हुए। हम एक-दूसरे को समझकर काम करेंगे तो समस्या खड़ी होने की संभावना कम है।

किसी की गलती निकालना आसान है, किंतु उसका संशोधन कराना बहुत कठिन है। जो सुधार कराने के लक्ष्य से बात बोलेगा उसकी बोली में फर्क

होगा। उसकी बुद्धि टोकने की नहीं होगी, जबकि जिसको गलती निकालनी होगी, वह कहेगा, ऐसा कर दिया, वैसा कर दिया। उसके टोन और सुधार कराने वाले की टोन में अंतर रहेगा। टोन से मालूम पड़ जाता है कि कौन गलती निकालने वाला है और कौन सुधार कराने वाला है।

यदि कोई आपकी गलती निकालता है तो आपको कैसा लगता है? आप कह सकते हैं कि इनकी तो आदत ही पड़ी हुई है। ये तो रोज गलती निकालते रहते हैं।

रिटर्न भरते समय आप सी.ए. को जानकारी देते हैं। उसमें कोई खामी रहने पर सी.ए. बताएगा तो आप उस पर गुस्सा होंगे या गलती का सुधार करेंगे?

(श्रोतागण बोले– सुधार करेंगे)

सी. ए. ने आपको दो खामी बताई तो आप उससे कहेंगे क्या कि मैं यहाँ आपकी बात सुनने के लिए नहीं आया। आप उसे कहेंगे क्या कि आगे से मैं तुम्हारे पास नहीं आऊंगा। आप कहेंगे क्या कि तुम्हारी तो आदत ही है गलती निकालने की।

उसकी फीस देनी पड़ेगी या नहीं? उसको कितनी फीस देनी पड़ेगी?

मेरे खयाल से उसकी फीस जितनी होगी उतना देना पड़ेगा। जो जितना सीनियर सी.ए. होता है, जितना तथ्य को पकड़ने वाला होता है, उसकी फीस उतनी ही ज्यादा होती है। उसकी फीस सामान्य सी.ए. से ज्यादा होगी, पर वह तो देनी पड़ेगी।

किसी डॉक्टर ने किसी व्यक्ति की नाड़ी देखकर कहा कि तुम्हारी बी.पी. बढ़ी हुई है। ऐसी स्थिति आपके साथ हो तो क्या करेंगे? उस डॉक्टर से खुश होंगे या उस पर खफा होंगे?

(श्रोतागण बोले– खुश होंगे)

एडवोकेट को फीस देनी पड़ेगी या नहीं? डॉक्टर को फीस देनी पड़ेगी या नहीं? सी.ए. को फीस देनी पड़ेगी या नहीं?

(श्रोतागण बोले– फीस देनी पड़ेगी)

वैसे ही कोई हमारी गलती निकाल रहा है और फीस भी नहीं ले रहा...

(लोग हँसने लगे)

क्यों भाई? आप तो हँस रहे हो। मैंने गलत बोल दिया क्या?

जो गलती बता रहा है, वह फीस नहीं ले रहा है, इसलिए अच्छा नहीं लग रहा है क्या। वह फीस लेता तो अच्छा होता, क्योंकि जब तक माथे पर जूते नहीं पड़ते, तब तक बुद्धि ठिकाने नहीं आती। जूते पड़ेंगे तो बुद्धि ठिकाने आ जाएगी। जब फीस दी जाने लगेगी तो बात समझ में आएगी कि यह ठीक कह रहा है। फोकट में ही गलती निकाल रहा है जो अच्छा नहीं लग रहा है। गलती निकालने वाले को क्या करना चाहिए? ऐसे ही गलती निकालते रहना चाहिए या फीस लेनी चाहिए?

आज का एक पच्चक्खाण। आज दिनभर बिना फीस के किसी की गलती नहीं निकालना। यदि कोई फीस दे तो ही गलती निकालना। बेटा-बेटी, बहू, पति गलती करे तो फीस लेकर गलती बताना। कौन-कौन पच्चक्खाण ले रहे हैं?

(कुछ हाथ खड़े हुए)

बहनें गलतियाँ ज्यादा बताती हैं या भाई? जो भी हो, आज बिना फीस के गलती नहीं बताना।

'श्रद्धा उसकी दिन-दिन विकसे, धर्म करे जो अन्तर्मन से।'

कौन-कौन पच्चक्खाण करने के लिए तैयार हैं कि फ्री में गलती नहीं निकालेंगे। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो फिर श्रद्धा और भक्ति कैसे बढ़ेगी! ऐसी स्थिति में श्रद्धा को कैसे विकसित करेंगे! आज के दिन बिना फीस लिए गलती नहीं बताना। क्या बात है? फीस मिल रही है फिर भी आप तैयार नहीं हो रहे हो। कितने घण्टे तक के लिए पच्चक्खाण करा दूं?

(बहनों ने कहा- दिनभर के लिए करा दो)

बहनें दिनभर के लिए कह रही हैं और भाई दो-चार घण्टों के लिए करेंगे क्या? इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यही हुआ कि भाई लोग गलतियाँ ज्यादा निकालते हैं। तीन घण्टे के लिए बिना फीस लिए किसी की गलती नहीं बताना। हाथ खड़े करो।

(श्रोताओं ने पच्चक्खाण लिया)

संत-सतियों को भी पच्चक्खाण करा दूँ क्या?

(सतियां जी बोली- करा दें)

कितने समय के लिए कराऊं?

(सतियां जी बोली- एक सप्ताह के लिए करा दें)

(सतियां जी म.सा. बोली– फीस कितनी है?)

वह तो आपकी हैसियत के अनुसार है। सबकी फीस एकसमान नहीं होगी। हैसियत के हिसाब से फीस होती है। आप अपने आप देख लो कि मेरी फीस क्या है?

सामायिक कर लेना बहुत आसान है। उपवास कर लेना बहुत आसान है, किंतु मन को समझाना बहुत कठिन है। बिना फीस के गलती नहीं बताना। आप सामायिक में बैठे हो, कोई आपके पीछे बैठा था वह आगे खिसक आया। आप बोलेंगे, तुम ध्यान नहीं रखते हो, आगे आ गए, पीछे खिसको। आज के दिन तो आप बिना फीस के नहीं बोल पाएंगे। कोई कितना ही आगे आ जाए, बिना फीस के नहीं बोलेंगे।

ये फार्मूले आपको छोटे लग रहे होंगे, किंतु मन को साधने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। औरतें घट्टी में थोड़ा-थोड़ा अनाज डालती हैं तो घट्टी जाम नहीं होती। वैसे ही यदि हम अपने मन में थोड़ा-थोड़ा नित्य ज्ञान देते हुए उसकी अनुप्रेक्षा करते रहेंगे तो मन ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होगा। श्रद्धा मजबूत होने में समर्थ होगी। श्रद्धा का निरंतर विकास होगा। इसके लिए मेहनत करनी पड़ेगी, पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

अभी एक बहन की बात हुई थी, जो अपने ननिहाल गई थी। उस बहन ने ननिहाल में घट्टी चलाई तो उसका मन शांत रहा। तब उसने अपने नानाजी से कहा, नाना! अब तो मैं रोज 15 मिनट घट्टी चलाऊंगी। नानाजी ने कहा, बहुत अच्छा बेटी! इससे 'एक पंथ दो काज' होगा। मेहनत करने से शरीर बीमार नहीं होगा और मन स्वस्थ रहेगा।

ये सुंदर फार्मूले हैं, किंतु हमने इनको भुला दिया है। हमें तो टाटा का आटा चाहिए। घर की चक्की का आटा कितने घरों में मिलेगा मुझे पता नहीं है, किंतु मेरे खयाल से नीमच में घर पर आटा पीसने वाले कम ही मिलेंगे।

सुनंदा का चारित्र चल रहा है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
उसे खिलाकर मैं खाऊंगी, उसे सुलाकर मैं सोऊंगी,
पूर्ण रखूंगी ध्यान, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

सुनंदा, सास के पैर दबा रही थी कि सास का उच्छवास निकला था।

उसे सास का चेहरा बुझा-बुझा नजर आया। सुनंदा ने सोचा कि मुझसे क्या गलती हो गई, सास से पूछ लूँ। उसने यह बात मन में नहीं जमाई कि सास मुझसे नाराज हैं। उसने संग्रह नहीं किया। तुरंत पूछ लिया।

पूछने पर सास ने सुरेश के विषय में बताया और कहा कि मैं तुमसे वचन चाहती हूँ। तुम मुझे वचन दो कि सुरेश का ध्यान रखोगी।

सुनंदा ने कहा, माँजी! आप निश्चिंत हो जाइए। आप टेंशन मत लें। मेरा पूरा लक्ष्य रहेगा कि मैं देवर की देख-रेख करूँ। उसे खिलाकर ही मैं खाऊंगी। उसे सुलाकर सोऊंगी। सुनंदा ने कहा कि मैं ध्यान रखने का पूरा प्रयत्न करूंगी, आप निश्चिंत हो जाइए।

सास को बड़ी खुशी हुई। उनकी आँखों से खुशी के आँसू बहने लगे। वह सुनंदा को सौ-सौ आशीर्वाद देने लगी। कहा, बेटी! मैं, तुम्हें आयु देने में समर्थ नहीं हूँ, यदि देना शक्य होता तो दे देती।

हर किसी पर आदमी विश्वास नहीं करता। जो सत्यनिष्ठ होता है, उस पर विश्वास करता है। सुनंदा के व्यवहार से माँजी को मालूम हो गया कि बहू अपनी जुबान हारेगी नहीं। सास ने जान लिया कि सुनंदा विश्वास लायक है, इसलिए उसने अपने मन की बात कही। सुनंदा ने माँजी को वचन दिया है, यह बात विजय के कानों तक पहुँची।

भनक लगी तब विजय बोला, क्यों लटकाया भारी झोला,
व्यर्थ न पाल जंजाल, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

विजय को इस बात की भनक लगी तो उसको बड़ा अटपटा लगा। उसने सुनंदा से पूछा कि मेरे कानों में ऐसा सुनने में आया, क्या यह सही है?

सुनंदा ने कहा, नाथ! यह बात एकदम सही है।

विजय ने कहा, तुमने यह फालतू में जंजाल क्यों माथे लिया, इतना भारी बोझ क्यों उठाया। कौन इसकी देख-रेख करेगा, इसी के लिए जीवन थोड़ी है। विजय कहता है, तुम मुझसे राय तो ले लेती। मुझसे पूछ तो लेती। माता ने तुमको फाँस लिया। तुमसे जुबान ले ली, किंतु मैं चाहूंगा कि तुम ऐसी बातों में मत पड़ो। दो-चार दिन की बात नहीं है। इसी के लिए अपना जीवन नहीं है। इसके कारण से कहीं बाहर आना-जाना नहीं हो पाएगा। किसी सभा सोसायटी में जाना नहीं हो पाएगा।

सुनंदा, विजय की बात सुनती रही। अब आगे विजय और सुनंदा की क्या चर्चा होती है, किस प्रकार की बात होती है इस पर समय के साथ विचार करेंगे, किंतु इतना अवश्य है कि जिसमें सुंदर संस्कार होते हैं वे सुधार का लक्ष्य रखते हैं। गलती निकालना एक बात है और गलती का सुधार करवाना दूसरी बात है। किसी की गलती बुरी लगे तो लक्ष्य उस गलती को सुधारने का रहे, सुधार करवाने का रहे। और लक्ष्य रहे स्वयं को संस्कारित बनाने का। प्रतिदिन 15 मिनट समय धर्माराधना के लिए निकालें। ज्यादा समय लगाएं तो अच्छी बात है, किंतु 15 मिनट का लक्ष्य अवश्य रहना चाहिए। पिछले रविवार को मैंने 15 मिनट धर्माराधना करने का पच्चक्खाण कराया था। इस बार नए लोग आए हों तो उनका भी लक्ष्य रहे कि वे 15 मिनट रोजाना धर्माराधना करेंगे। हाथ खड़े करो।

(श्रोताओं ने पच्चक्खाण लिए)

तपस्या के क्रम में महासती श्री मल्लिका श्री जी म.सा. की आज 21 की, महासती श्री कर्णिका श्री जी म.सा. की आज 15 की तपस्या है। महासती श्री चंदना श्री जी म.सा. की आज पारणे की संभावना है। इनसे प्रेरणा लें। इतना ही कहते हुए विराम।

30 जुलाई, 2023

11

धर्म जीतता हारे दानव

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।

धर्म श्रद्धा को हृदय में धारण करना चाहिए। धर्म श्रद्धा हृदय में धारण कर ली गई तो सारी क्रियाएँ अपने आप सही होती चली जाएंगी। धर्म क्रियाओं को स्वीकार करने और धर्म श्रद्धा को गौण कर देने से काम नहीं चलेगा।

'करे धर्म रक्षा जो मानव, धर्म जीतता हारे दानव'

धर्म श्रद्धा के सामने केवल मनुष्य ही नहीं हारता, देव भी हार जाता है। देव, दानव, यक्ष, पिशाच, किन्नर सारे हार जाते हैं। धर्म के क्षेत्र में इनका वश नहीं चल पाता। लोगों को भूत, यक्ष, पिशाच, किन्नर का भय लगता है। लोग डरते हैं कि भूत-प्रेत लग जाएगा। देव कठिनाई में डाल देगा। माता जी रूठ जाएंगी। भैरू जी नाराज हो जाएंगे। ऐसा कुछ नहीं होता। धर्म को ग्रहण कर लेने पर, धर्म को हृदय में उतार लेने पर, धर्म श्रद्धा गहरी जग जाने पर दानव, यक्ष, किन्नर, पिशाच कुछ नहीं बिगाड़ सकते। कठिनाइयाँ आ सकती हैं, परीक्षा हो सकती है, पर कुछ बिगड़ेगा नहीं। परीक्षा यह पता लगाने के लिए होती है कि धर्म श्रद्धा कितनी मजबूत है।

लोग पूछते हैं कि लोच क्यों कराना चाहिए। गृहस्थ को लोच कराने की बात अलग है और मुनि की अलग। मुनि के लिए माना जाता है कि लोच से पता चलता है कि शरीर के प्रति उसका ममत्व का भाव कितना मंद पड़ा। शरीर के प्रति ममत्व भाव रहेगा तो लोच से वेदना होगी। शरीर के प्रति निर्ममत्व भाव होगा तो लोच की वेदना सताएगी नहीं।

लोच सहनशीलता बढ़ाने के लिए किया जाता है। लोच से पता चलता है कि सहन करने की क्षमता कितनी विकसित हो पाई है। साधना के क्षणों में कई बार उपसर्ग भी आ सकते हैं, कष्ट आ सकते हैं। समस्याएं आ सकती हैं। परेशानियाँ आ सकती हैं। उस समय अपने आपको सहनशील बने रहने के लिए लोच एक उपक्रम है।

'करे धर्म रक्षा जो मानव...'

धर्म की रक्षा कैसे की जाएगी? धर्म श्रद्धा को कैसे सुरक्षित रखा जाएगा?

धर्म श्रद्धा को सुरक्षित रखने के लिए निरंतर उसका अनुचिन्तन होते रहना चाहिए। धर्म श्रद्धा को मजबूत बनाए रखने के लिए, दृढ़ बनाए रखने के लिए तीर्थंकर भगवान आदि महापुरुषों का गुणानुवाद करना चाहिए। उनकी स्तुति करनी चाहिए। उनका स्तवन करना चाहिए।

भगवान से पूछा गया, भगवन्! स्तुति-स्तवन करने से क्या लाभ होता है? **थव-थुइमंगलेणं भंते! जीवे किं जणयइ?**

उत्तर में भगवान कहते हैं, **'थव-थुइमंगलेणं नाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभं जणयइ'** अर्थात् तीर्थंकर आदि महापुरुषों की स्तुति करने से, उनका स्तवन करने से ज्ञान, दर्शन और चारित्र का बोधि लाभ होता है। व्यक्ति ज्ञान और दर्शन की आराधना करने में समर्थ होता है। अपने चारित्र को पवित्र बनाए रखने के लिए उसके भीतर सामर्थ्य पैदा होता है।

ध्यान देने की बात है कि तीर्थंकर देवों की स्तुति, उनका स्तवन गाकर नहीं होता। उनके गुणों को हृदयंगम करना ही उनका स्तवन है। उनकी स्तुति है। गाना तो निमित्त है। उनमें तन्मय होने का एक माध्यम है।

भगवान महावीर पर बहुत उपसर्ग आए। बहुत कठिनाइयाँ आईं। कभी संगम देव ने परेशान किया तो कभी जंगली कुत्तों ने। कभी महिलाओं ने भी परेशान किया। कभी अनुकूल परिस्थितियाँ आईं तो कभी प्रतिकूल परिस्थितियाँ। भगवान महावीर ने कभी किसी का प्रतिकार नहीं किया। वे अपनी साधना करते रहे। अपने आपमें स्थित रहे। उन्होंने एक बात अपने हृदय में धार ली कि **'जहाँ देह अपनी नहीं, वहाँ न अपना कोय।'**

उन्होंने धार लिया कि यह शरीर मेरा नहीं है। शरीर पर कोई कितना भी आक्रमण करे मेरा कुछ नहीं बिगड़ रहा है। मेरा कुछ भी अहित नहीं हो रहा

है, क्योंकि मेरी आत्मा शाश्वत है। मेरी आत्मा पर आक्रमण करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

लोग भयभीत इसलिए हो जाते हैं, क्योंकि शरीर के साथ संबंध जाड़े हुए हैं कि यह मेरा है। सच यह है कि यहाँ कोई भी चीज हमारी नहीं है। किसी भी चीज पर अपना अधिकार नहीं है। उक्त पर अधिकार जमाना अनधिकार चेष्टा ही है। यदि शरीर मेरा है तो मेरे कहे अनुसार चले। मैं जैसा चाहूंगा वैसा रहे। आप शरीर के लिए चिंतित होते हैं या आत्मा के लिए? शरीर की चिंता तो नहीं करते हैं? जब शरीर अपना है ही नहीं तो उसकी चिंता क्यों की जाए!

अनाथी मुनि की कहानी आपने बहुत बार सुनी होगी। अनाथी मुनि की आँखों में भयंकर वेदना हो रही थी। हजारों-हजार सूइयां और भाले चुभाने से उत्पन्न होने वाली वेदना के बराबर वेदना उनको हो रही थी। इलाज के लिए डॉक्टरों की लाइन लग गई। एक से बढ़कर एक चिकित्सक आए, सभी ने बहुतेरे उपाय किए, किंतु कोई भी उपाय कारगर नहीं हो पाया। डॉक्टर हार गए। डॉक्टरों ने बोल दिया कि हमारे वश की बात नहीं है। पारिवारिकजन बोल रहे थे, डॉक्टर साहब! जो भी उपाय हो आप कीजिए। पैसों की कोई चिंता नहीं है। जहाँ भी बहुकीमती औषधि मिलेगी हम लाने का प्रयत्न करेंगे, किंतु आप इन्हें स्वस्थ कर दीजिए। डॉक्टरों ने कहा, ''हम लाचार हैं, विवश हैं। हमारे हाथ में कुछ भी उपाय नहीं है। हमारे पास कुछ भी उपाय नहीं है।'' बीमारी लाइलाज हो गई। कोई त्राण देने वाला नहीं, कोई शरण देने वाला नहीं।

अनाथी मुनि के माता-पिता, भाई-बहन दुखी हो रहे थे। सब मन मसोसकर रह गए। पत्नी उनके सीने पर सिर रखकर रो रही थी। आँसू बहा रही थी। खाना-पीना सब छूट गया था। न खाना अच्छा लग रहा था न पीना। मन में बस एक ही बात थी कि मेरे पति ठीक हो जाएं।

अनाथी मुनि को किसी का स्नेह काम नहीं आया। धन काम नहीं आया। परिजनों ने बहुत उपाय किए, किंतु कोई भी उपाय कारगर नहीं हो पाया। अनाथी मुनि के भीतर एक लहर पैदा हुई कि मेरा रोग ठीक हो गया तो मैं क्षमा धारण करने वाला बनूंगा। इंद्रियों का दमन करने वाला बनूंगा। आरंभ-परिग्रह का त्याग करने वाला बनूंगा। किसी भी जीव को नहीं सताऊंगा अर्थात् निर्ग्रंथ प्रव्रज्या को स्वीकार करूंगा।

'खंतो दंतो निरारंभो, पव्वइओ अणगारियं'

किस कारण से स्वीकार करेंगे प्रव्रज्या? ताकि उनका रोग चला जाए। आप कल्पना कीजिए कि उनको कितनी भयंकर वेदना हो रही होगी। अज्ञान में जीने वाले बहुत से लोग ऐसे समय में रोते हैं, झींकते हैं और आत्महत्या का विचार कर लेते हैं। लोग सोचते हैं कि मर जाएं तो रोग दूर हो जाएगा, किंतु मरना, आत्महत्या करना किसी बीमारी का इलाज नहीं है। कोई उपाय नहीं है। शरीर भले छोड़ देंगे, किंतु बँधा हुआ कर्म साथ नहीं छोड़ेगा। वह आत्मा के साथ जाएगा क्योंकि वह उसी के साथ बँधा हुआ है। वह यहाँ नहीं तो आगे परेशान करेगा। बाँधे हुए कर्मों को भोगना तो पड़ेगा।

अनाथी मुनि ने यह विचार नहीं किया कि हे भगवान! मुझे उठा लो, मैं मर जाऊं। मरना आसान हो सकता है, किंतु कर्मों से छुटकारा पाना आसान नहीं है। व्यक्ति मर सकता है, आत्महत्या कर सकता है, किंतु क्या आत्महत्या करने से कर्मों से छुटकारा हो जाएगा? इस शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करना पड़ेगा, कर्म वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ने वाले हैं। आत्मा जहाँ भी जाएगी कर्म पीछे-पीछे चलेंगे। साथ-साथ चलेंगे। अनाथी मुनि के मन में एक लहर उठी, एक संकल्प पैदा हुआ कि यदि मेरी बीमारी ठीक हो गई तो मैं साधु बन जाऊंगा। साधु जीवन स्वीकार कर लूंगा।

जहाँ सारे उपाय निरर्थक हो गए वहाँ यह उपाय सार्थक हो गया। उनकी आँखों की वेदना खत्म हो गई। शरीर की वेदना खत्म हो गई। थोड़ी देर में ही उन्हें बढ़िया नींद आ गई। इतनी आराम की नींद आई कि सुबह उठे तो एकदम स्वस्थ। शरीर में पीड़ा नहीं, आँख में पीड़ा नहीं। घरवाले खुश हो गए। प्रसन्न हो गए। किसी ने कहा कि मैंने यह बोलमा की है तो किसी ने कहा कि मैंने भैरू जी से मनौती माँगी। कोई कहता है कि मैंने माता जी की बोलमा की।

लोग सोचते हैं कि शायद माता जी, भैरू जी राजी हो जाएं और हमारी बीमारी दूर हो जाए, सारे संकट दूर हो जाएं। न भैरू जी संकट दूर कर सकते हैं और न ही माता जी संकट दूर कर सकती हैं। बाँधे हुए शुभाशुभ कर्म भोगने ही पड़ेंगे।

धर्म की रक्षा कैसे करनी चाहिए?

अनाथी मुनि जैसे। जैसे अनाथी मुनि के मन में संकल्प जगा, वैसे ही

संकल्प जगना चाहिए। अनाथी मुनि सुबह उठकर कहते हैं कि मैंने भी एक मनौती की है कि यदि मेरी बीमारी ठीक हो जाएगी तो मैं साधु जीवन स्वीकार कर लूंगा।

अब किसी के पास कोई उत्तर नहीं था। अब कोई रोकने में समर्थ नहीं था। कोई किस मुँह से रोके, किस हाथ से रोके, किस वचन से रोके।

सभी सोचने लगे कि भयंकर बीमारी से इसको बचा नहीं पाए, वेदना से बचा नहीं पाए, बचा पाते तो बोल सकते थे कि रुक जाओ। संकल्प कमजोर होता तो शायद अनाथी मुनि भी विचार कर सकते थे कि भैरू जी की मनौती से ठीक हो गया होऊँ, माता जी की मनौती से ठीक हुआ होऊँगा, अब मुझे साधु बनने की कहाँ आवश्यकता है!

''काम सर्या दुख विसर्या, वैरी हो गया वैद्य''

काम निकल जाने पर व्यक्ति उपकारी को भूल जाता है। किंतु अनाथी मुनि ने वैसा नहीं किया। उनके मन में संकल्प जगा था, इसलिए वे साधु जीवन स्वीकार कर लेते हैं। अपने वचन की रक्षा करना भी एक धर्म है। जो अपने वचनों की रक्षा नहीं कर सका वह धर्म की रक्षा क्या कर पाएगा।

एक जमाने में धर्म को प्राणों से बढ़कर माना जाता था। माना जाता था कि धर्म मेरे प्राण हैं। कहा जाता था कि 'तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म न जाए।' तब व्यक्ति सोचता था कि शरीर छोड़ सकता हूँ, किंतु अपना धर्म नहीं छोड़ सकता। ऐसी दृढ़ता जहाँ होती है, वहाँ पर देव-दानव भी हार जाते हैं। पीछे हट जाते हैं। ऐसा ही हुआ अनाथी मुनि के साथ। अनाथी मुनि का जो रोग उपाय से शांत नहीं हो पाया था, जिसको डॉक्टरों ने लाइलाज बता दिया था, वह एक संकल्प से, धर्म की भावना से दूर हो गया।

हमारे प्रशम मुनि जी म.सा. को दीक्षा से पहले गठिया वात हो गई थी। उनका खाट से उठना भी मुश्किल हो गया था। अपने शरीर के कार्य करने भी मुश्किल हो गए थे। परिवारवालों ने दर्शन की बात कही। शासन प्रभावक श्री धर्मेश मुनि जी म.सा. दर्शन देने के लिए पधारे और दर्शन दिए। उस समय उनका नाम ताराचंद था। धर्मेश मुनि जी ने कहा, तारू! अपने मन में एक संकल्प कर ले कि यदि मेरी बीमारी ठीक हो गई तो दीक्षा ले लूंगा। उन्होंने कहा, ठीक है म.सा.! मेरा रोग ठीक होगा तो मैं दीक्षा ले लूंगा। उनकी माता

जी से भी म.सा. ने कहा, देखो! यह ठीक हो जाए तो इसकी दीक्षा में अंतराय मत डालना। माता ने कहा, बावजी! यह स्वस्थ हो जाएगा तो हम कोई अंतराय नहीं डालेंगे। कम-से-कम इसको पीड़ा तो नहीं होगी। हम दर्शन करने के लिए कहीं भी चले जाएंगे।

छह महीने बाद उनका गठिया वात दूर हो गया। किसकी मनौती करनी चाहिए? क्या भैरू जी की, माता जी की मनौती करनी चाहिए?

मैं स्वयं भी भुक्तभोगी हूँ। छोटी उम्र में मुझे एक्जिमा था। कोई बोलता, रामदेव जी के नाम पर 'राम' नाम रख लो और वह नाम रख दिया गया। इसके बाद भी ठीक नहीं हुआ तो कहा, रूणेचा चलो, रूणेचा गए। वहाँ चाँदी का छत्र चढ़ाकर आए। गुड़-खोपरे का त्याग कर दिया और देवता का एक कड़ा भी हाथ में पहन लिया। कई वर्षों तक हाथ में कड़ा पड़ा रहा।

एक दिन मन में विचार पैदा हुआ कि मैंने छत्र चढ़ाया, गुड़-खोपरा खाना छोड़ दिया, हाथ में कड़ा पहन लिया फिर भी रामदेव जी का ध्यान मेरी तरफ नहीं आता तो क्या मतलब। मैंने वह कड़ा हाथ से निकालकर एक डिब्बे में रख दिया। डिब्बे में इसलिए रखा ताकि रामदेव जी नाराज हो जाएंगे तो फिर से पहन लूंगा। नाराज का मतलब था कि बीमारी ज्यादा बढ़ जाएगी तो वापस पहन लूंगा। गुड़-खोपरा खाना भी चालू कर दिया।

एक बार बीमारी ने उग्र रूप धारण किया। आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. की किताब 'अनाथ-सनाथ निर्णय' पढ़ रहा था। मेरे मन में विचार हुआ कि यदि मेरा रोग दूर हुआ तो मैं भी साधु जीवन स्वीकार कर लूंगा। कोई दवा नहीं, कोई इलाज नहीं लिया।

बीमारी ठीक हो गई किंतु मैं अपनी बात को भूल गया। दो साल बाद बीमारी ने इतना भयंकर रूप लिया कि खाट पर पड़ गया। दोनों पैर पूरे सीधे नहीं हो पाते थे। पैरों को टिकाए रखने के लिए दोनों तरफ तकिये लगाने पड़ते थे।

संयोग से जयपुर में आचार्य पूज्य गुरुदेव के दर्शनों का मौका मिला और भावना दृढ़ हो गई कि मुझे साधु बनना है। धर्माराधना करनी है।

धर्म श्रद्धा से सारी कठिनाइयाँ दूर होती हैं। बस दृढ़ता होनी चाहिए। झांसापट्टी नहीं होनी चाहिए। धर्म पर दृढ़ रहने से हर संकट और कठिनाई दूर होगी। संकट सबके जीवन में आते हैं। सुनंदा के सामने भी धर्म संकट आया।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
नाथ अभी तो मौजूद मांजी, उनका मन भी रखना राजी,
होगा यह श्रेयकार, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

सुनंदा के सामने धर्म संकट आ गया। अपनी सास की उदासी देखकर उसने उदासी का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि सुरेश को कौन संभालेगा? सुनंदा ने कहा, माँजी! आप निश्चिंत हो जाइए। मैं आपको आश्वासन देती हूँ, आपको वचन दे रही हूँ कि मैं अपने देवर की पूरी देखभाल करूंगी। मुझ पर आप भरोसा कीजिए।

यह सुनकर सास का मन खुश हो गया। यह बात विजय के कानों तक भी पहुँची। आप जानते हैं कि विजय, सुनंदा का पति है। विजय ने सुनंदा से कहा, तुमने कैसा झमेला मोल ले लिया? तुमने यह झमेला मोल क्यों लिया? तुम्हें क्या जरूरत थी आश्वासन देने की? तुम कैसे इसको पालोगी-पोसोगी? दिनभर उसी के पीछे लगना पड़ेगा। वह अपने कर्मों को भोग रहा है, तुमने फालतू का झमेला मोल ले लिया।

सुनंदा कहती है, नाथ! अभी माता जी मौजूद हैं। प्राय: पूरी देख-भाल माता जी कर ही रही हैं और मैंने माँजी को जुबान दी है ताकि उनका वार्धक्य खुशहाल रहे। उनका मन राजी रहे तो इसमें कौन-सी बुराई है। विजय ने भी सोचा कि बात बढ़ाने में कोई फायदा नहीं है। जब आगे बात होगी तब देखा जाएगा और यह कह रही है कि माँजी का मन राजी रहे तो शायद माँजी के बाद बात बदल जाएगी। सुनंदा ने भी विचार किया कि बात को खींचने में फायदा नहीं लगता, पर विजय को बात सुहाई नहीं, अच्छी नहीं लगी। सुरेश के प्रति विजय के मन में शुरू से दुराव था।

कर्म योग की बात है। एक तरफ राम और भरत भी भाई थे, दूसरी तरफ विजय और सुरेश भी भाई हैं। विजय, सुरेश से एकदम एंटी है। विजय, सुरेश को फूटी आँखों से भी नहीं सुहाता। जब देखो तब उसको डाँटता रहता था। सुरेश बेचारा लाचार था। कर्मों का मारा जीव था। कुछ बातें वश की हो सकती हैं, किंतु कुछ बातों पर किसी का वश नहीं होता। कर्मों के सामने सभी बेवश हो जाते हैं।

कर्मों के खेल निराले हैं, ऋषि-मुनि भी इनसे हारे हैं।

कर्मों के खेल बड़े विचित्र हैं। कर्म बाँधते समय लोग विचार नहीं करते। यह नहीं सोचते कि मैं ऐसा व्यवहार कर रहा हूँ उससे कितने क्लिष्ट कर्मों का बंध हो रहा होगा। मन में आए सोच से भी कर्मों का बंध होता है। वचन से भी कर्मों का बंध होता है। गुरु और शिष्य की एक छोटी सी बात समीचीन है।

गुरु और शिष्य कहीं जाते हुए न्यायालय के सामने से निकले। उनके कानों में आवाज आई कि दो चोरों में से एक को दंड दिया गया कि उसके हाथ काट दो और दूसरे को दंड दिया गया कि उसके पैर काट दो। शिष्य ने गुरु से पूछा; गुरुदेव! दोनों का अपराध समान है, दोनों ने चोरी की, किंतु दोनों को अलग-अलग सजा क्यों मिल रही है। एक के हाथ काटे जा रहे हैं और दूसरे के पैर, जबकि दोनों का अपराध एकसमान है, ऐसा क्यों?

गुरु ने कहा, हम वर्तमान को देख रहे हैं। इसका कारण भूत में रहा हुआ है। एक जन्म में इन्होंने ऐसे ही कुछ वचनों का प्रयोग किया, उसी का परिणाम आज दण्ड के रूप में आ रहा है। उस जन्म में दोनों, माँ-बेटे थे। बेटा थका हुआ घर आया और माँ से कहा, मुझे रोटी परोस दे भूख लगी है। माता ने कहा, बेटा! छींका से रोटी उतारकर खा ले। बेटा थका हुआ था, उसको गुस्सा आ गया कि मैं धंधा करके आया हूँ, पूरे दिन काम करते-करते थक जाता हूँ पर टाइम से रोटी नहीं मिलती। गुस्से में उसके मुँह से निकल गया कि तुम्हारे पाँव टूट गए क्या, जो उठकर रोटी नहीं दे रही हो। माँ को उसकी बात सुन गुस्सा आ गया उसने भी कह दिया कि तुम्हारे हाथ टूटे हुए हैं क्या जो रोटी नहीं उतार सकते।

यह सामान्य बात है या विशेष बात? ऐसा बोलना सामान्य है या विशेष?

(श्रोतागण बोले- सामान्य बात है)

ऐसी बातें हमसे भी कई बार हो जाती हैं, किंतु ये बातें भी कर्मों का बंध कराने वाली होती हैं। मन, वचन और काया से होने वाली हर क्रिया से कर्म बंधन निश्चित है। जैसा बीज बोएंगे वैसा फल आएगा। बबूल का बीज बोएंगे तो बबूल मिलेगा और आम का पौधा लगाएंगे तो आम का फल आएगा। अच्छे विचार रहेंगे, अच्छी भाषा रहेगी, अच्छे कर्म रहेंगे तो पुण्य का उपार्जन होगा।

तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वामी 'शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्य'

के माध्यम से कहते हैं, हमारे मन, वचन और काया की शुभ प्रवृत्ति पुण्य का बंध कराने वाली होती है और अशुभ प्रवृत्ति, पाप कर्म कराती है।

वहाँ माँ और बेटे का अशुभ कर्म हुआ, तो माता के जीव को सजा मिली कि इसके हाथ काट लिए जाएं और बेटे ने कहा था कि तुम्हारे पैर टूट गए क्या तो उसको पाँव काटने की सजा मिली।

यह तो एक स्थूल उदाहरण है। बारीक-से-बारीक कर्मों का भी भोग करना पड़ता है, इसलिए कभी-कभी कहा जाता है-

जरा कर्म देखकर करिए, इन कर्मों की बहुत बुरी मार है,
नहीं बचा सकेगा परमात्मा, फिर औरों का क्या एतबार है।

(श्रोतागण साथ-साथ गाने लगे)

आप जिस लय से गा रहे हैं उससे मालूम पड़ रहा है कि आप जानते हैं कि परमात्मा भी कर्मों से नहीं बचा पाएंगे। देवी-देवता की बात तो दूर की है, माता-पिता की बात भी दूर की है। कहाँ जाएंगे हम? क्या होगा हमारा? क्या करेंगे? कितना भी रोना रो लें, किंतु कर्म पीछा छोड़ने वाले नहीं हैं। कर्म बंधन से पीछा छुड़ाने का एक ही उपाय है कि बुरा कर्म नहीं करें। अशुभ कर्म नहीं करें। अच्छे कार्यों में लगें। दिन-रात अच्छे विचारों में, अच्छे कार्यों में लगेंगे तो कल्याण पथ पर अग्रसर होंगे। बुरी प्रवृत्ति में लगे रहे, बुरे कार्यों में लगे रहे तो पता नहीं कितनी ठोकरें खानी पड़ेंगी। पता नहीं कैसे-कैसे दुखद परिणाम भोगने पड़ेंगे। ठोकर न खाना पड़े, इसलिए सावधान हो जाना चाहिए। बुरे कर्मों का भोग नहीं भोगना चाहते हैं तो बुरे कर्म नहीं करें। इसके लिए मन पर नियंत्रण हो, अपनी भाषा पर नियंत्रण हो। कोई ऐसी-वैसी भाषा मुँह से नहीं निकले। जो जितना कठोर भाव से वचन निकालेगा उतना ही संक्लेश में जाएगा। जितना संक्लेश में जाएगा उतना ही क्लिष्ट कर्मों का बंध होगा।

विजय इस बात को नहीं समझ रहा था, किंतु उसने व्यवहारिकता को थोड़ा समझा और विचार किया कि अभी यह बात खींचने से कोई मतलब नहीं है। बात खींचने से माँजी का मन भी दुखेगा और सुनंदा के मन में भी बात पकड़ में जाएगी। बात पकड़ में आ गई, इगो हो गया तो छूटना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए हलके-फुलके में बात टाल देनी चाहिए। यह सोचकर उसने उस विषय पर उस समय मौन धारण कर लिया।

पलक झपकते दिवस बीते, समय निकलता विरला जीते,
कालजयी हो जाए, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

बड़ी मार्मिक बात कही गई है। हम सोचें तो मार्मिक है, नहीं तो 'घणी रातां निकल गई और घणी निकल जाई।' भगवान ने कहा–

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ।।

अर्थात् जो समय आपके हाथ से निकल रहा है वह वापस नहीं आएगा। जो रात्रि निकल गई है वह वापस लौटकर नहीं आएगी।

हमारे जीवन की कितनी रातें व्यतीत हो गईं? हमारे जीवन की कितनी रातें चली गईं? गई हुई रातें वापस आएंगी क्या?

कितना ही रो लें, कितना ही रुदन कर लें, जो समय चला गया, वह वापस लौटकर आने वाला नहीं है। मुँह से निकला हुआ वचन, धनुष से छूटा हुआ तीर वापस आने वाला नहीं है। मान लो ये कभी वापस आ भी जाएं, किंतु जो समय हाथ से निकल गया, वह वापस मिलने वाला नहीं है।

देखते–ही–देखते दिवस और महीना बीत गया। चातुर्मास का कितना समय व्यतीत हो गया?

(श्रोतागण बोले– एक महीना हो गया)

देखते–ही–देखते एक महीना चला गया और ऐसे ही कितने महीने निकल जाएंगे?

(श्रोतागण बोले– चार महीने निकल जाएंगे)

देखते–ही–देखते हमारे 60–70 वर्ष निकल गए।

पलक झपकते दिवस बीते, समय निकलता विरला जीते,
कालजयी हो जाए, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

'जो बोले सो निहाल, सत श्री अकाल'

इसका क्या मतलब होता है? जो काल पर विजय पा लिया वह सत् है और वही निहाल है। उसी की जय है। हम भी काल के चक्कर में पड़े हुए हैं। कब मौत आ जाए पता नहीं है। अकाल यानी जहाँ काल नहीं है अर्थात् जो सत है वह अकाल है। वह कालजयी है। उस पर काल का असर नहीं होता। सिद्ध भगवान का जन्म–मरण नहीं होता। काल पर उन्होंने विजय प्राप्त कर ली।

विरले लोग हैं जो काल से विजयी होते हैं, बाकी तो जन्म-मरण के प्रवाह में बहते रहते हैं। हमें कालजयी बनना है या इसी प्रवाह में बहना है?

(श्रोतागण बोले- हमें कालजयी बनना है)

आपकी आवाज मेरे तक ही नहीं आई, ऐसे ही कालजयी बन जाएंगे क्या! मुर्दा आवाज से कालजयी नहीं बन पाएंगे। जो भी कालजयी बने हैं, उन्होंने कठिनाइयों को सहन किया, परेशानियों को सहन किया। चाहे राम का नाम लें, चाहे महावीर भगवान का नाम लें या राजा हरिश्चंद्र का नाम लें। वे कालजयी तब बने पाए, जब सारी कठिनाइयों का सामना करने के लिए मजबूत सीना लेकर खड़े रहे। कितने भी संकट आए, उनका लक्ष्य था हर संकट का सामना करने का। वे अपने संकल्प से पीछे नहीं हटे। ऐसा लक्ष्य रखनेवाला व्यक्ति ही कालजयी होगा।

बंधुओ! धर्म कालजयी बनानेवाला है। धर्म श्रद्धा कालजयी बनाने वाली है। तीर्थंकर भगवंतों की स्तुति, उनका स्तवन, उनका कीर्तन, गुणकीर्तन दृढ़ता देनेवाला है। वह साथ रहेगा। वह कहेगा कि तुम घबराओ मत, मैं तुम्हारे साथ हूँ। उससे इतना बल मिलेगा कि मालूम ही नहीं पड़ेगा कि कब, कैसे, क्या हो गया। इसलिए प्रतिदिन परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए। उनका स्तवन करना चाहिए।

यहाँ पर ऐसे कौन-कौन हैं जो नियमित प्रार्थना करते हैं, जो कभी नागा नहीं करते?

निरंतर प्रार्थना करनी चाहिए। कुछ माँगने के लिए नहीं, ज्ञान, दर्शन और चारित्र को निर्मल बनाने के भाव से तीर्थंकर भगवान की स्तुति करनी चाहिए।

हे प्रभु मेरा मन हो सुंदर, वाणी सुंदर जीवन सुंदर,

कब होगा हमारा मन सुंदर? कब होगा जीवन सुंदर?

मन में कोई भी विचार आए तो सबसे पहले परमात्मा से पूछें कि भगवन्! यह विचार सुंदर है या नहीं! अपनी आत्मा से पूछें कि यह वचन सुंदर है या नहीं! कुछ बोलने से पहले विचार कर लें कि जो शब्द बोलने जा रहा हूँ वह सही है या नहीं! काया से जो भी प्रवृत्ति करने जा रहा हूँ, वह सही है या नहीं! क्या यह मेरे लिए सुंदर होगा! यह ध्यान रख लिया तो फिर देखना कि

भीतर कितनी शक्ति जागृत होती है। ध्यान रखना केवल शब्दों से काम नहीं चलेगा, उसके अनुसार अपने आपको ढालना पड़ेगा। वैसा ढाल लिया तो कोई मुकाबला करने में समर्थ नहीं होगा। अपने आपको दृढ़ रखें। प्रतिदिन मन से परमात्मा का स्मरण करें। परमात्मा की स्तुति करें।

तपस्या की कड़ी में, महासती श्री मल्लिका श्री जी म.सा. की आज 23 की, महासती श्री कर्णिका श्री जी म.सा. की 17 की तपस्या है। भाई अभिषेक जी का कल मासखमण सम्पन्न हुआ और आज 31 की तपस्या है।

(निर्वाण मुनि जी म.सा. बोले, आज नवीन जी कक्षाओं में उपस्थित नहीं हुए। वे बोले कि आज मेहंदी का कार्यक्रम है, इसलिए आ नहीं पाऊंगा)

मेहंदी रचाना आसान है, किंतु मेहंदी का सच्चा रंग जीवन में आना चाहिए।

'धर्म रंग से मन हो रंगा, देख कठौती दिखती गंगा'

महेश जी! खड़े हो जाइए।

महेश जी बोले–

धर्म का रंग जमा हो चकाचक, ज्ञान का पान चबाय,
ऐसा खटका लगे जिगर में, कि आतमज्ञान हो जाय।

क्या सुना आपने?

जीवन में धर्म का खटका लग जाए तो फिर कहना ही क्या। और भी कई भाई–बहनों की तपस्या चल रही है। बोडावत बाई जी की आज 27 की तपस्या है। 31 के पच्चक्खाण ले ली हैं। सरिता जी मुणोत की 33 की तपस्या है। अन्य जो भी तपस्या है आप समझ लें, क्योंकि मासखमण करने के बाद कई आगे बढ़ गए, मुझे पूरा पता नहीं है कि किस–किसकी तपस्या चल रही है। उनसे प्रेरणा लें कि उन्होंने किस प्रकार अपने मन को संकल्पित किया और वे कैसे आगे बढ़ रहे हैं। अपने भावों को जगाकर भीतर दृढ़ता लाने का प्रयत्न करें। दृढ़ता काम आएगी। ऐसा करेंगे तो निश्चित रूप से धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

01 अगस्त, 2023

12

कामदेव ना डिगता बंदा

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।

हम जिस सुख की कामना करते हैं, अभिलाषा करते हैं, सचमुच में वह अपना नहीं है। हमारा सुख है- आत्म-रमण में। धर्म उस सुख की सदा रक्षा करने वाला है। जब तक उस सुख को हमने पहचाना नहीं है, तब तक पराए सुख में लीन हैं। पराए सुख को ही अपना मानकर चल रहे हैं।

पराए घर में कितने समय तक ठहर सकते हैं? कितने समय तक ठहरा जा सकता है?

पराए घर में भले ही खूब साता पहुँचाई जा रही हो, खूब स्वागत-सम्मान हो रहा हो, पर पराया आखिर पराया ही होता है। पराया घर अपना नहीं हो सकता और अपना, अपना ही रहेगा, वह पराया नहीं हो सकता।

'कामदेव ना डिगता बंदा, कलुषदेव का छूटा फंदा'

कामदेव आत्मसुख में लीन था। कामदेव की जीवनी यह दर्शाती है कि उसके पास धन-वैभव पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था किंतु वह उसमें अभिभूत नहीं रहा। वह चंपा नगरी का रहवासी था। उसके पास अपार संपत्ति थी। छह करोड़ सोनैये उसके पास फिक्स डिपॉजिट के रूप में थे। छह करोड़ सोनैये व्यापार में लगे हुए थे और उतना ही घर खर्च में लगा रहता था। उसके पास दस-दस हजार गोधन के छह गोकुल थे। कुल साठ हजार गोधन।

बहुत से लोगों में मान्यता प्राप्त था। राज्य की तरफ से वह सम्मान प्राप्त था।

वह बहुत से लोगों के लिए आधारभूत था। मेढ़िभूत था। चक्षुभूत था। बहुत से लोग विविध विषयों पर उसकी राय लेते थे। उससे दिशा-निर्देश लेते थे। ध्यान रहे, हर कोई दिशा-निर्देश देने में समर्थ नहीं होता। जिसके पास पर्याप्त ज्ञान हो, अनुभव व बौद्धिक बल हो वही भिन्न-भिन्न विषयों में दिशा-निर्देश दे सकता है। इससे जान सकते हैं कि उसका ज्ञान कितना था, उसका अनुभव कितना रहा होगा।

उसने लम्बे समय तक धर्माराधना की। भगवान महावीर का उपदेश सुना और बारह व्रतधारी श्रावक बन गया। एक बार चिंतन करते हुए उसने विचार किया कि मैंने अब तक क्या किया? उसके सामने उसके द्वारा किए गए कार्यों की एक तसवीर बन गई कि मैंने यह किया, वह किया।

ऐसा विचार आपके भीतर पैदा हुआ क्या? आपको तो याद यह रहता है कि मैंने कहाँ कितने पैसे लगाए। कहाँ कौन-सी संस्था खड़ी की। कहाँ हॉस्पिटल खड़ा किया। कहाँ स्कूल बनवाया। कहाँ पर प्याऊ लगवाई। और तो और यह भी चाहते हैं कि पक्षियों के लिए पानी का पलिंडा भी लगवाया तो वह अखबार में आए ताकि लोग जानें कि अमुक ने गरमी में प्याऊ लगवाया।

कामदेव के सामने भी ऐसा विचार आया कि उसने क्या किया? उसके सामने एक प्रश्नवाचक चिह्न जरूर लग गया कि मैंने अपने लिए क्या किया? दुनिया के लिए बहुत कुछ होगा, परिवार के लिए बहुत कुछ किया होगा, किंतु अपने लिए क्या किया? कितना समय मैंने अपनी आत्मा को दिया?

यह सोच केवल कामदेव की ही नहीं होनी चाहिए। सबके लिए उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। अब तक हमने जितना भी समय लगाया, वह शरीर के लिए लगाया होगा। परिवारवालों के लिए लगाया होगा। समाज और राष्ट्र के लिए लगाया होगा, पर आत्मा के लिए कितना समय लगाया? जो समय आत्मा के लिए लगेगा वही सार्थक होगा। शरीर के लिए, परिवारवालों के लिए अनंत जन्मों में बहुत समय लगाया, किंतु क्या हुआ? मोह कर्म का सर्जन किया। कुछ परोपकार के काम भी किए होंगे, किंतु यश की लिप्सा में, नाम की टोह में किया होगा। उससे तथाभूत पुण्य का उपार्जन भी नहीं कर पाए होंगे। भाव-सम्मान पाने के लिए परोपकार का कार्य कर रहे हैं तो वह मान-सम्मान की चाह के साथ सौदा हो गया। पुण्य या दान उसे कहा गया है जिसमें अपनेपन

का अस्तित्व गौण हो जाए। जिसमें यह भाव गौण हो जाए कि यह मेरी चीज है, मैंने बनवाई है, वही दान है। वही पुण्य है।

कामदेव ने विचार किया कि मैंने अपने लिए क्या किया! वह सोचने लगा कि मैंने व्रत-नियम स्वीकार किया, बारह व्रतों की आराधना की फिर भी आत्मा को तृप्ति नहीं मिल पाई। अब मुझे बचा हुआ समय आत्मसाधना में लगा देना चाहिए। रात्रि के समय में उसने विचार किया कि शुभस्य शीघ्रं, अर्थात् अच्छे कार्यों में विलंब नहीं करना।

''काल: पिबति तद्रसम्''

अच्छे कार्य में विलंब हो जाता है तो उसका रस काल पी लेता है।

सूर्योदय होते ही कामदेव ने पूरे परिवार को एकत्रित किया, इष्ट मित्रों को याद किया। सबको बुलाकर भोजन कराया। उससे निवृत्त होने के बाद एक सभा का आयोजन हुआ। कामदेव ने कहा कि अब तक मैं आप लोगों के साथ काम करता रहा हूँ। जब भी आपको मेरी आवश्यकता हुई, मैंने आपको दिशा-निर्देश दिया। आपने मेरा सम्मान किया। मेरा मान बढ़ाया है। आप अपना कार्य करने में कुशल थे, कुशल हैं फिर भी आप मुझसे राय लेते रहे हैं। अब मैं संसार के कार्यों से निवृत्त होना चाहता हूँ। अब मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को संसार का पूरा दायित्व सौंप रहा हूँ। अब आपको कोई भी परामर्श लेना हो तो उससे ले सकते हैं। मैं अब कोई भी परामर्श देने के लिए उपलब्ध नहीं रहूंगा।

हम श्रावकों का जीवन देखते हैं तो एक बात स्पष्ट होती है कि अधिकांश श्रावक घर-परिवार में चिपके नहीं रहते थे। मोह को दोनों हाथों के बीच सीने से लगाकर बैठे नहीं रहते थे, अपितु धर्म जागरणा करते हुए उन्हें जैसे ही धर्म-बोध जागृत हो जाता कि अब संसार से निवृत्त हो जाना चाहिए, वे निवृत्त हो जाते।

कामदेव संसार से निवृत्त हो गया। परिवार की सारी चर्या से अलग हो गया। मुनाफा, हानि-लाभ, शादी-विवाह से कामदेव को कोई लेना-देना नहीं रहा। वह आत्मभ्रमण में, शुद्ध भावों में लीन हो गया। सामायिक, पौषध और प्रतिक्रमण करते हुए वह अपना समय व्यतीत कर रहा था।

एक दिन की बात है। कामदेव पौषध में लीन था। एक देव भयंकर पिसाच का रूप बनाकर उपस्थित हुआ। ऐसा विभत्स रूप बनाकर उपस्थित

हुआ कि देखते ही व्यक्ति घबरा जाए, भयभीत हो जाए। विभत्स रूप बनाकर वह धम-धम करता हुआ आ रहा था। धरती को कंपायमान करते हुए आ रहा था। भूकंप तो नहीं था, किंतु भूकंप जैसा लगा। धरती को थर्राते हुए, धुजाते हुए वह कामदेव के सामने पहुँचा। कामदेव पौषध में लीन था, आत्मभाव में लीन था। उसे ध्यान ही नहीं था कि कौन आया, क्या हो रहा है।

देव कहता है, हे कामदेव! तुमने व्रत-नियम स्वीकार कर रखे हैं। तुम उनकी पालना करते रहते हो। धर्म तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय बना हुआ है। तुम व्रतों की आराधना कर रहे हो। मैं यह जानता हूँ कि तुम धर्माराधना को नहीं छोड़ना चाहते, किंतु कान खोलकर सुन लो, यदि जीवन चाहते हो तो इन व्रत-नियमों को छोड़ दो। नहीं छोड़ोगे तो तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा। तुम अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। अकाल मृत्यु से बचना चाहते हो तो मेरी बात को स्वीकार कर लो।

कामदेव ने उसके कथन को सुनकर अनसुना कर दिया। उसको इन बातों से कोई मतलब नहीं था, कोई लेना-देना नहीं था।

'एक धर्म ही जग जस पाता'

एक धर्म ही है जो जग में यशस्वी है, वही आज तक जीवित रहा है। उसी का यश जीवित रहा है।

कामदेव को धर्म में उसी प्रकार दृढ़ व स्थिर देखकर देव कुपित हो जाता है। उसका इगो जाग जाता है कि मैंने इसको कहा, किंतु यह समझता ही नहीं है। यह अपनी हेकड़ी में है, मुझे इसकी हेकड़ी को हटाना है। देव उस बात को फिर से दोहराता है, फिर तीसरी बार कहता है कि कान खोलकर सुन ले। मेरी बात मान ले। देव ने कहा कि मैं केवल कह नहीं रहा हूँ, तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ।

कामदेव के सामने संकटमय स्थिति थी। ऐसी स्थिति में हम क्या सोचेंगे? हम सोचने में इतना समय ही कहाँ लगाते? यह भी ठीक है कि हमारे लिए देव आकर खड़ा होने वाला ही कहाँ है। हमारे कपड़े तो पहले ही गीले और पीले हो जाते। हममें इतनी सहनशीलता कहाँ है कि देव धमकावे और हम शांत बने रह जाएं।

उस पिसाच रूपी देव ने कामदेव के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए, किंतु वह केवल वैक्रिय माया थी। बाद में वापस शरीर बन गया, तैयार हो गया।

कामदेव को असह्य-पीड़ा हुई। उसको ऐसा लग भी रहा था कि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े किए जा रहे हैं। पर वह बन्दा धर्म में सुदृढ़ था।

'तन जाए तो जाए, मेरा सत्य धर्म नहीं जाए।'

शरीर जाए तो जाए कोई परवाह नहीं है, किंतु मेरा सत्य धर्म नहीं जाना चाहिए। रामचरितमानस में कहा कहा गया है-

'धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपद काल परिखिअहिं चारी।'

व्यक्ति के धैर्य की पहचान आपातकाल में ही होती है, आपद के समय ही होती है। मित्र प्याली और थाली का ही नहीं हो। प्याली और थाली वाले मित्र बहुत होते हैं। खाना-पीना मिला तो हाँ साहब!, हाँ साहब! हम दोस्त हैं।

एक समय भारत में नारा लगा था भारत-चीन भाई-भाई।

(किसी भाई ने कहा- हिंदी-चीनी भाई-भाई नारा था)

जो भी हो नारा था, और हो गया विश्वासघात। उस समय किसी ने कविता रची थी, उसका एक पद्य है-

राम-राम है वीर जवाहर, म्हारा जेठा भाई।
चाऊडो चालाक घणो है, वीरो का क्या मन आई।।

क्या समझे आप?

जवाहरलाल नेहरू को वीर और जेठा भाई कहा गया। हम बड़े सरल निकले। हर किसी पर विश्वास कर लेते हैं। धर्म नीति कहती है, **'विश्वासः फलदायकः'** किंतु राजनीति कहती है- **'विश्वासो नैव कर्त्तव्यम्'** अर्थात् अपने बाप पर भी विश्वास मत करो।

एक पिता अपने पुत्र को छत पर चढ़ाते हैं। पिता ने निसर्णी लगाकर पुत्र को छत पर चढ़ाया फिर निसर्णी हटा दी और कहा, बेटा! नीचे छलाँग लगा। उसने कहा, पापा! मैं गिर जाऊंगा, मुझे चोट आ जाएगी। पिता ने कहा, मैं खड़ा हूँ, मुझ पर विश्वास कर। पिता ने कहा कि तू चिंता मत कर, मैं नीचे खड़ा हूँ, पकड़ लूंगा। पुत्र ने अपने बाप पर विश्वास कर छलाँग लगा दी। छलाँग लगाते ही उसका बाप पीछे खिसक गया। उसको चोट लग गई। उसे दर्द होने लगा। उसने कहा, आपने तो कहा मुझ पर भरोसा कर, मैं पकड़ लूंगा और आप पीछे खिसक गए। पिता ने कहा, बेटा तू राजनीति में जाने वाला है, तुमको राजनीति का यह पहला पाठ पढ़ाया गया है कि भरोसा अपने बाप पर

भी मत करना।

कौन है राजनीति में भरोसे लायक! आज राजनीति में कोई किसी की तौहीन करता है, बुराई करता है, कहता है कि यह भष्टाचारी है और अगले दिन दोस्ती हो जाती है। एक-दूसरे से हाथ जुड़ जाते हैं। हाथ मिलाकर दोनों कहते हैं कि कि हम एक हैं। चुनाव भी एक साथ लड़ लेते हैं किंतु जीत के बाद कौन कब तक किसका रहेगा, कोई भरोसा नहीं। जो भरोसा करके बैठ जाता है वह राजनीतिज्ञ नहीं हो सकता। राजनीतिज्ञ को देखना रहता है कि मुझे सबसे काम लेना है, किंतु भरोसा किसी का नहीं करना है। केवल दिखाना है कि मैं तुम्हारे ऊपर बहुत भरोसा करता हूँ। तू तो मेरा खास है। मेरा जिगरी है, किंतु कौन खास है?

जिन्होंने भगवान की वाणी स्वीकार की है, वे किसी से लगाव नहीं रखते। ऊपर से सभी के साथ मेल-मिलाप है, किंतु भीतर से सावधान हैं। वे मानते हैं 'जहाँ देह अपनी नहीं वहाँ न अपना कोय।' धर्म नीति और राजनीति में भावना का अंतर है। राजनीति में लोग भले ही कह दें कि अमुक की जोड़ी है, किंतु कल कौन, किसका होगा, कुछ भरोसा नहीं किया जा सकता।

धर्म नीति कहती है **'विश्वासः फलदायकः'** धर्म पर विश्वास नहीं होगा, धर्म पर श्रद्धा नहीं होगी तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ पाएगी।

'धर्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण'

धर्म श्रद्धा को हृदय में धारण करो। धर्म श्रद्धा रहेगी, हृदय में बनी रहेगी तो कैसा भी संकट आ जाए, कैसी भी समस्या आ जाए, नैया पार लगेगी।

'कामदेव ना डिगता बंदा, कलुषदेव का छूटा फंदा'

कामदेव नहीं डिगता। जैसे साग-सब्जी के टुकड़े किए जाते हैं, वैसे ही उसके शरीर को सुधारा गया। उसे लग रहा था कि मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े किए जा रहे हैं। शरीर के टुकड़े-टुकड़े किए गए फिर भी उसके मन में धर्म छोड़ने का भाव नहीं बना। धर्म छोड़ने का विचार पैदा नही हुआ। इससे देव और ज्यादा क्रोधित हो गया। देव ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाला नहीं है, इसकी दुर्दशा करनी पड़ेगी। देव, हाथी का रूप बनाकर आया और कहने लगा कि अभी भी समझ जा, अभी भी सावधान हो जा, मेरी बात मान ले, नहीं तो मैं तुम्हें सूँड में उठाकर पौषधशाला से बाहर ले जाऊंगा और आकाश में उछाल दूंगा। पैरों से रौंद दूंगा। कामदेव अडिग रहा। वह डिगा नहीं। हाथी बने हुए देव

को और गुस्सा आया। उसने कामदेव को सूँड में उठाया, बाहर ले गया और आकाश में उछाल दिया। नीचे गिरा तो पैरों से रौंद दिया।

आपको सुनने में बहुत अच्छा लग रहा है, किंतु खुद के साथ ऐसा हो जाए तो देव के सामने हाथ जोड़कर चिल्लाने लगेंगे कि बचाओ-बचाओ। देव के सामने हाथ जोड़कर बोलने लगेंगे कि तुम जो कहोगे मैं मानने को तैयार हूँ। हम सोच लेते हैं कि एक बार हाथ जोड़ेंगे तो बचाव हो जाएगा। बच जाएंगे।

एक सेठ सोया हुआ था। एक बार, एक गिरगिट उसके पेट के ऊपर से निकल गया। सेठ ने हो-हल्ला मचा दिया। घरवालों ने कहा, हुआ क्या, क्यों फालतू की रामायण कर रहे हैं तो उसने कहा, मेरे पेट के ऊपर से गिरगिट निकल गया। घरवालों ने कहा, गिरगिट ही निकला है, कौन-सा हाथी निकल गया। सेठ ने कहा, तुम नहीं जानते। यदि आज ही रोकथाम नहीं की गई तो कल रास्ता बन जाएगा और रास्ता बन जाएगा तो हाथी भी निकल जाएगा।

जैसे उस सेठ ने कहा कि एक बार रास्ता बन गया तो कल हाथी भी निकल सकता है, वैसे ही हमने यदि एक बार सोच लिया कि क्या फर्क पड़ता है कठिनाई का समय है इसलिए इसकी बात मान लेनी चाहिए, कल वापस धर्म-ध्यान, पौषध-सामायिक कर लेंगे, तो मन कमजोर हो जाएगा। मन एक बार कमजोर हो जाएगा तो बार-बार परेशान करने वाला होगा।

हाथी बने हुए देव ने कामदेव को आकाश में उछाल दिया, पैरों से रौंद दिया, किंतु कामदेव धर्म को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था। देव का गुस्सा आसमान छूने लगा। उसने कहा, देख! तू मान जा नहीं तो तुम्हारी और दुर्दशा की जाएगी। कामेदव नहीं माना। फिर देव एक सर्प का रूप बनाकर उसको चेतावनी देता है, किंतु कामदेव उसी प्रकार दृढ़ व स्थिर रहा। नहीं मानता। सर्प धीरे-धीरे कामदेव के शरीर के ऊपर चढ़ता है। गले में तीन कुंडली लगाता है, जैसे शिवजी के गले में कुंडली लगी थी। उसने फन को नीचे करके कामदेव के सीने पर डस लिया। फिर भी कामदेव अडिग रहा। अविचलित भावों से खड़ा रहा।

इतना कष्ट देने पर भी कामदेव धर्म से नहीं डिगा तो देव अपने मूल रूप में आकर कहता है, धन्य हो कामदेव! तुम्हारी जितनी प्रशंसा की जाए कम है। देवलोक में शक्रेंद्र ने तुम्हारी प्रशंसा की कि कामदेव धर्म पर अडिग है।

उसको देव-दानव, मानव कोई भी धर्म से विचलित नहीं कर सकता। शक्रेंद्र की बात मुझे सुहाई नहीं थी, इसलिए मैं परीक्षा लेने आ गया, किंतु मैंने तुम्हारे विषय में जितना सुना था तुम्हारी दृढ़ता उससे कई गुना ज्यादा मिली। देव, नंदना-नमस्कार करता है और पैरों में गिरकर क्षमायाचना करता है।

'देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो'

जिसका मन सदा धर्म में लगा रहता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं। देव वंदना-नमस्कार, क्षमायाचना करके चला गया। फिर भगवान महावीर का पधारना हुआ। कामदेव भगवान महावीर के चरणों में पहुँचा, भगवान की पर्युपासना की। भगवान ने कहा, कामदेव! क्या, तुम्हारे सामने एक देव उपस्थित हुआ? उसने पिसाच, हाथी व सर्प का रूप धारण करके तुम्हारे साथ ऐसा-ऐसा कृत्य किया? कामदेव ने कहा, भगवन्! आप तो केवलज्ञानी हैं, सर्वज्ञ हैं। आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही हुआ।

भगवान ने साधु-साध्वियों को संबोधित करते हुए प्रेरित किया कि एक श्रावक, एक गृहस्थ इतने कठिन समय में धर्म पर अडिग रहता है तो साधु-साध्वी को कितना दृढ़ रहना चाहिए। बन्धुओ! ये बातें हम शास्त्रों में पढ़ते हैं, किंतु हमारे भीतर दृढ़ता कितनी आती है? कहीं हम धर्म का ढोंग तो नहीं कर रहे हैं? हम धर्म की कसौटी पर कसे गए तो हमारे भीतर दृढ़ता कितनी रहेगी?

दरअसल हमें धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। जहाँ तक मैं विचार कर रहा हूँ लोगों का इगो, अहंकार इतना खड़ा रहता है कि वे धर्म की रक्षा करें या न करें, अपने इगो की रक्षा जरूर करेंगे। व्यक्ति सोचता है कि मेरी बात रहनी चाहिए। ऐसे में धर्माराधना हो पाएगी क्या? धर्म का स्पर्श कर पाएंगे क्या? जब तक अहंकार नहीं नमेगा, तब तक धर्म का स्वाद, धर्म की अनुभूति नहीं हो पाएगी। कषाय संसार है उससे रक्षा करने वाला एक मात्र धर्म है।

हमने यह बहुत बार सुना है कि गर्म लोहे को ठंडा लोहा काटता है। गर्म लोहे को गर्म लोहा नहीं काट सकता। क्रोध, मान, माया और लोभ की तासीर गर्म है। इन्हें पराजित करने के लिए ठंडे लोहे की आवश्यकता होगी। क्षमा, मृदुलता, निर्लोभता और सरलता के गुण शीत प्रकृति के हैं। इनमें ठंडापन है। जब कभी क्रोध पर विजय प्राप्त करनी हो तो क्षमा से ही विजय प्राप्त की जा सकती है। क्षमा के समीप क्रोध के आने की हिम्मत हीं नहीं होगी। वह

हिम्मत ही नहीं करेगा। आ भी गया तो क्रोध ठंडा हो जाएगा।

एक किंवदंती है कि एक बार काली (देवी) प्रचण्ड रोष में भागती हुई जा रही थी। उसके वेग को कोई रोक नहीं पा रहा था। चारों तरफ त्राहिमाम, त्राहिमाम होने लगा। शिवजी से कहा गया कि आप ही अब रक्षा कर सकते हैं। शिवजी उधर आए, किंतु काली तो अपनी धुन में दौड़ रही थी। वह दौड़ती-दौड़ती आई और शिवजी से टकरा गई। शिवजी से टकराकर, शिवजी का स्पर्श पाकर वह ठंडी हो गई, शीत हो गई। वैसे ही क्षमा, क्रोध का स्पर्श पाकर शांत हो जाएगी। यदि इसका उदाहरण चाहिए तो चंडकौशिक का उदाहरण सामने है।

चंडककौशिक ने भगवान महावीर पर क्रोध कर उन्हें डंक मारा, किंतु भगवान महावीर की क्षमा के आगे उसका जहर शांत हो गया। फिर उसने यह सोचकर अपने मुँह को बिल में रख दिया ताकि उसकी आँखों से बहने वाला विष किसी को चढ़ नहीं जाए। चंडकौशिक क्षमाशील बन गया, शांत बन गया।

क्रोध को क्षमा से जीत सकते हैं। अहंकार को मृदुलता से जीता जा सकता है। माया को सरलता से जीता जा सकता है। जहाँ सरलता होगी वहाँ माया का दाँव-पेच नहीं चलेगा, वहाँ उसकी दाल नहीं गलेगी और निर्लोभता से, मुक्ति से लोभ को जीता जा सकता है किंतु हम तो गर्म से गर्म को काटने की कोशिश करते हैं।

'जो ताको काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल'

जो तुम्हारे लिए काँटा बोए, उसके लिए तुम फूल उगाओ। काँटा बोने का काम मत करो। भगवान कहते हैं- **'सरिसो होइ-बालाणं'** अर्थात् किसी ने तुम्हारे साथ बुरा बरताव किया, तुम उसके साथ बुरा बरताव मत करो। किसी की नीति ऐसी हो सकती है कि-

'शठे शाठ्यं कुर्यात्'

अर्थात् अमुक ने मेरे साथ दुष्टता की है तो मैं भी उसके साथ वैसा ही करूंगा। भगवान साधुओं से कहते हैं, तुम ऐसा मत सोचो। वह अज्ञानी था, मूर्ख था, किंतु तुम वैसा ही बरताव करोगे तो कौन-सा समझदारी का काम होगा। तुम ज्ञानी थे और ज्ञानी हो, तो कोई कितना ही तुम्हारे साथ बुरा बरताव करे, तुम शांत रहो, यही ज्ञानी की पहचान है। आप भी सोचें- कोई आपको बुरा बोले, आपके साथ बुरा बरताव करे और आप भी वैसा ही व्यवहार करेंगे

तो क्या ठीक है? आपका व्यवहार क्या होना चाहिए?

आपको क्षमा का वरण करना चाहिए, किंतु आप भी उसकी बुराई की कामना करने लग जाओगे तो फिर आपकी गिनती किसमें आएगी?

खैर, कामदेव की बात पर आगे बढ़ते हैं। कामदेव डिगा नहीं। वह अडिग रहा। इसी से कामदेव के लिए कहा जाता है–

'कामदेव ना डिगता बंदा, कलुषदेव का छूटा फंदा।'

देव कितना ही जहरीला कलुषित बनकर आया, किंतु कामदेव डिगा नहीं। कामदेव की क्षमा से पराजित कौन हुआ?

(श्रोतागण बोले– देव पराजित हुआ)

देव हार गया। 'कलुषदेव का छूटा फंदा।' देव, कामदेव श्रावक को पराजित नहीं कर पाया। यह सुंदर संस्कार की बात है।

सुनंदा में संस्कार है। वह भी अपनी गति से गतिशील है। जैसा की आपने अभी तक सुना–

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
अमन चैन था घर हरियाली, सुरेश के मन थी खुशहाली,
पाया मन सन्तोष, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

घर में अमन–चैन था। क्योंकि सुनंदा समझदार थी। समझदारी से, व्यवहार से सबको अपना बनाया जा सकता है। व्यवहार ही मित्र बना लेता है और व्यवहार ही शत्रु बना लेता है। हमारा व्यवहार कैसा है? हमारा व्यवहार मित्रता वाला है या शत्रुता वाला?

(श्रोतागण बोले– हमारा व्यवहार मित्रता वाला है)

हमें अपने व्यवहार की समीक्षा करनी पड़ेगी कि हमारा व्यवहार कैसा है। मैं बोलना नहीं चाहता कि आपका व्यवहार कैसा है, किंतु इसकी समीक्षा करनी होगी कि व्यवहार कैसा है। व्यवहार आनंद श्रावक जैसा, कामदेव श्रावक जैसा होगा तो समस्याएं टिकी नहीं रहेंगी।

सुनंदा को आए हुए अभी छह महीने ही बीते होंगे। घर में अमन–चैन हो गया। हरियाली अमावस्या निकल गई, श्रावण की पूर्णिमा निकल गई। जैसे श्रावण की हरियाली छाई रहती है, प्रकृति मुस्कराती रहती है, वैसे सुनंदा के ससुराल में, सुनंदा के घर में हरियाली छा गई। किसी को कुछ भी कहने की

आवश्यकता नहीं। सबकी आवश्यकताओं को, सबकी अपेक्षाओं को सुनंदा समय पर पूरा कर देती। ऑफिस-दुकान जाते समय विजय की आवश्यकताएं पूरी कर देती। सास की आवश्यकता पूरी कर देती। सुरेश के प्रति उसका आत्मीय भाव था। सुरेश की भी देख-रेख करती। उसकी सार-संभाल करती। बड़े प्रेम से उसको खिलाती। हाथ फेरती हुई उसे सुलाती।

सुरेश गूंगा और बहरा था। वह न सुन सकता था और न बोल सकता था किंतु वह भी प्रेम को पहचानता था, आक्रोश को पहचानता था। सुनंदा के स्नेहिल व्यवहार से उसको आत्म-सुख मिलता। परम शांति मिलती। परम समाधि मिलती। अब तक सुरेश भय खा रहा था, वह निर्भय हो गया।

कहा जाता है कि जिस घर में बहुत खुशहाली हो जाए, बहुत अमन-चैन हो जाए, उसमें किसी की नजर लग जाती है।

लोग मकान को, बिल्डिंग को नजर से बचाने के लिए क्या उपक्रम करते हैं?

(श्रोतागण बोले- घर के आगे हांडी रखते हैं)

घर में हांडी रखते हैं या काला टायर लटका देते हैं। और धोले (सफेद) बाल नजर आ जाएं तो क्या करना? सफेद बाल दिख जाएं तो आप लोग डाई पुतवा लेते हैं कि कहीं नजर न लग जाए। अब बुढ़ापे में क्या नजर लगेगी, किसकी नजर लगेगी और नजर लग गई तो क्या बिगाड़ होगा।

जहाँ तक मैंने सुना है, आचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी म.सा. किसी गाँव में विराज रहे थे तो एक वृद्धा आईं और निवेदन किया कि बावजी! आप यहाँ से विहार कर जाइजो। थे आठे ठहरजो मती।

आपके यहाँ म.सा. आ जाएं तो आप लोग ठहरने की बात करते हो या विहार करने की?

(श्रोतागण बोले- ठहरने की बात करते हैं)

उस बुजुर्ग महिला ने कहा, बावजी! आप यहाँ से विहार कर लो। आप यहाँ ठहरना मत। आचार्यश्री जी ने विचार किया कि क्या बात है, ऐसा क्यों कह रही है। आचार्यश्री ने पूछा, माँजी! बात क्या है? क्या बात हुई? उसने कहा, म.सा.! आप फूटरा घणा हो। अठे एक डाकण रेवे, आपको नजर नहीं लग जाए, इसलिए आप यहाँ से विहार कर लो। आचार्यश्री ने कहा, आप

घबराओ मत, डाकण मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं करेगी। धर्म पर विश्वास, धर्म पर श्रद्धा होगी तो डाकण क्या नजर लगाएगी, बल्कि लगी हुई नजर उतर जाएगी।

सुनंदा ने परिवार में अमन-चैन ला दिया, किंतु वह सदा कायम नहीं रहा। छह महीने बीते या नहीं, उसकी सास मौत के मुँह में समा गई। उसका आयुष्य इतना ही था, उतनी ही आयु थी, किंतु पिछले समय में उसको पुत्रवधू से जो सांत्वना मिली उससे वह आराम की मौत मरी। उसके मन में कोई चाह नहीं रही। कोई तनाव नहीं रहा। उसने शांति से मौत प्राप्त की। अब आगे परिवार की क्या स्थिति बनती है, क्या हाल होता है समय के साथ विचार करेंगे।

भाई अभिषेक जी कांठेड़ ने अपना कार्य संभालते हुए मासखमण की तपस्या की। कल इनकी 31 की तपस्या थी और आज डेढ़ पोरसी के पच्चक्खाण किए। उन्होंने शिविर आयोजन का बहुत बड़ा दायित्व संभाल रखा है।

बहनों में भी तपस्या चल रही है। यह भी आत्मबल का परिचायक है। आत्मबल मजबूत बने। हम भी कामदेव जैसे दृढ़ बनें। ऐसी दृढ़ता हमारे भीतर भी आए और कैसे भी संकट के क्षण आ जाएं, हम दृढ़ बने रहें। धर्म से च्युत नहीं हों।

'धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी...'

मित्र और नारी की पहचान कठिनाई के समय होती है। जैसे धीरज और धर्म की परीक्षा होती है, वैसे ही मित्र और नारी की परीक्षा होती है। विपत्ति के समय, कठिनाई के समय में जो हमारा साथ निभा सके वही सच्चा मित्र है और वही नारी होगी। इन तपस्वियों से प्रेरणा लेते हुए अपने आपको आगे बढ़ाने का प्रयत्न करें। धर्म में सुदृढ़ बनें। ऐसा करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

02 अगस्त, 2023

13

मनुज तन की सफलता

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।

मनोरथ तीन हैं मेरे, प्रभु मैं पूर्ण कर पाऊँ।
मनुज तन की सफलता को, प्रभु मैं पूर्ण कर पाऊँ।।
आरंभ दिन-रात है बढ़ता, उसे दूर कर पाऊँ।
आरंभ से कर्म जो बंधता, मैं उनसे मुक्त हो जाऊँ।।
परिग्रह पाप की जड़ है, नहीं उसको मैं सरसाऊँ।
परिग्रह भाव से तजकर, धर्म अनुरक्त हो जाऊँ।।
मनोरथ दूसरा मेरा, धर्म अणगार बन जाऊँ।
करूँ यतना मैं जीवों की, भवोदधि पार हो जाऊँ।।
क्षमादि धर्म है प्यारे, जीवन उनसे मैं विकसाऊँ।
पंचामृत पान करके मैं, अटल अमरत्व पा जाऊँ।।
जीवन की सांध्य बेला में, आलोचन शुद्ध कर पाऊँ।
कामना पूर्ण तज करके, संथारा शुद्ध वर पाऊँ।
नहीं इस लोक की लिप्सा, नहीं परलोक सुख चाऊँ।
'राम' आराम अन्तर में, मनोरथ तीन वर पाऊँ।।

तीन मनोरथों को पूरा करना श्रावक का लक्ष्य होता है। यदि उसके मन में उक्त मनोरथ न हो तो वह श्रावक की भूमिका पर भी आरूढ़ नहीं है। सम्यक् दृष्टि भाव पैदा होने के बाद उसमें आगे बढ़ने की ललक होती है, व्रतधारी बनने की भावना होती है। उसकी अभिलाषा होती है कि मैं शीघ्रातिशीघ्र मुक्ति को वर पाऊँ। अंतगडदशा सूत्र में हम सुनते रहे हैं कि गजसुकुमाल दीक्षित हुए। दीक्षित होकर उन्होंने भगवान से निवेदन किया, भगवन्! मुझे वह मार्ग बताइए जिससे

मैं जल्दी से जल्दी मुक्ति को वर पाऊँ। एक दिन मैंने सुमित मुनि जी के विषय में बोला था कि पर्युषण के दौरान चल रहे प्रवचन में खड़े हो गए और कहा कि मुझे दीक्षा दीजिए।

श्रावक के मन में संयमी बनने के भाव हिलोरें लेते हैं। धन जोड़ने का मोह उसको नहीं होता। धन बढ़ाने का भाव यह बताता है कि अभी कचावट है। श्रावक धन में जीता जरूर है, किंतु उसका मन धन में नहीं रहता। वह धर्म करता है। धन का अंबार लगने के बावजूद वह उससे निर्लिप्त रहता है। चारों तरफ धन बिखरा हुआ होने के बाद भी वह अपने ऊपर बरसाती लगा लेता है, जिससे मोह-ममत्व का पानी उसके भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। अपने मन को ऐसा बना लेना श्रावक की भूमिका है। उस भूमिका पर आरूढ़ होने वाले की तमन्ना शीघ्र मुनि जीवन स्वीकार करने की होती है।

'अंत समय आलोयणा, करूं संथारो सार'

वह चाहता है कि जीवन की सांध्य वेला में आत्मशुद्धि पूर्वक संलेखना को स्वीकार करूँ, राग-द्वेष को पतला करूँ, विषयों से मन को हटा लूँ। उसकी अन्य कोई चाह नहीं होती, कोई अभिलाषा नहीं होती। वह तृप्त हो जाता है।

ऐसी तृप्ति में मरने वाला संसार में नहीं रुलता, वह जन्म-मरण को रोक देता है। यह तृप्ति नहीं आएगी तो 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' अर्थात् पुनः जन्म, पुनः मरण चलता रहेगा। उससे उपरत नहीं हो पाएंगे।

प्रसंग विदित हो चुका है। धामण गाँव रेलवे, महाराष्ट्र विदर्भ के सुश्रावक शांतिलाल जी छाजेड़ सामायिक-प्रतिक्रमण आदि में रत रहने वाले थे। वार्धक्य था, शरीर की रुग्णता थी। उन्होंने विचार किया कि अब मुझे संसार से निवृत्त हो जाना चाहिए। संतों की प्रेरणा मिली और उन्होंने संलेखना एवं साधु जीवन स्वीकार किया। परिवारवालों ने भी विघ्न पैदा नहीं किया। उन्हें अंतराय नहीं दी। वहाँ संत दो ही हैं- जयप्रभ मुनि जी और अनन्य मुनि जी।

अनन्य मुनि जी तपस्वी हैं। वे तपस्या करते रहते हैं। सेवा में भी तत्पर रहते हैं। जयप्रभ मुनि जी म.सा. सेवाभावी हैं। बिना किसी ग्लानि के, अग्लान भाव से उन्होंने सेवा कार्य को स्वीकार किया। लंबे समय तक एक ही स्थिति में रहने से शरीर पर कुछ घाव भी हो गए। डॉक्टरों ने कह दिया कि आप नजदीक

नहीं जाएं, श्रावकों को संभला दो, श्रावक सेवा कर लेंगे। श्रावकों को ही सेवा करनी होती तो गृहस्थ अवस्था में कर ही लेते। मुनियों ने हिम्मत की और सेवा की जिम्मेदारी संभाली। उनको धर्म का पाथेय दिया।

हम पिछले दिनों से सुनते रहे हैं कि इतने दिन हो गए हैं... 02 जुलाई को उन्होंने दीक्षा और संथारा स्वीकार किया और 03 अगस्त की सुबह पाँच बजकर बीस मिनट के आस-पास संथारा सीझा अर्थात् लगभग 32 दिनों का संथारा पूर्ण हुआ। 32 दिनों तक संथारा-संलेखना की आराधना करते हुए उत्साह मुनि जी ने उत्साहपूर्वक समाधिमरण को प्राप्त किया।

जन्म हमारे हाथ में नहीं है। पता नहीं किस योनि में कब जन्म लेंगे। यहाँ भी जन्म लेना अपने हाथ में नहीं था, किंतु जन्म लेने के बाद जीवन अपने हाथ में है। जीवन को कैसे जीना यह अपने ऊपर है। आप श्रावक जैसा जीवन जी सकते हैं। आनंद का जीवन भी जी सकते हैं। मस्ती का जीवन भी जी सकते हैं और खिन्न होकर, दुखी होकर भी जी सकते हैं। जीवन का जितना समय मिला है, उस समय को कैसे सार्थक करना यह आप पर निर्भर है।

हम क्या कर रहे हैं यह सोचने की आवश्यकता है। हमें अपने जीवन से संतुष्टि है या नहीं? हम जिस प्रकार से जी रहे हैं, उससे तृप्ति का अनुभव हो रहा है या नहीं? यदि लगे कि हमारे जीवन में कुछ कमियाँ हैं तो हमारे पास मौका है उन कमियों को दूर करने का। यदि कोई कमी नजर नहीं आ रही है तो कोई बात नहीं। फिर आराम से जीवन जीएं, आनंद से जीएं। कोई तनाव, कोई खिंचाव भीतर नहीं रहना चाहिए। मन जितना सरल होगा, उतनी ही समाधि प्राप्त हो पाएगी। मन जितना तनावग्रस्त होगा, जितना संक्लेश परिणामों में चलेगा, उतना ही दुखी होगा।

एक प्रश्न कई बार होता है, कल भी हुआ कि भाग्य प्रबल है या पुरुषार्थ। हम अपनी फ्लॉपी में क्या भरना चाहते हैं यह हम पर निर्भर है। कम्प्यूटर आपके सामने है। आप फ्लॉपी में जो भरेंगे कम्प्यूटर को खोलने पर वही सामने आएगा। जैसा करेंगे, वैसा मिलेगा।

उत्साह मुनि जी भले ही शरीर से वृद्ध थे, किंतु उनमें उत्साह था। कई बार आदमी मन से बहुत जल्दी वृद्ध हो जाता है। बुढ़ापा आ जाता है। शरीर भले ही मजबूत हो, किंतु मन में निराशा आ जाती है कि अब कोई मतलब नहीं

है, अब कुछ नहीं हो सकता, जीना है, इसलिए जी लूँ। यह भी एक जीवन है और मन का उत्साह-उमंग बना रहना भी एक जीवन है। उत्साह मुनि जी म.सा. को संतों का संयोग मिला और उनका मन बन गया। मन बना तो संलेखना व साधु जीवन स्वीकर कर लिया। साधु जीवन और संथारा दोनों ही हो गया।

ऐसे प्रसंगों पर सबके मन में प्रेरणा जगनी चाहिए कि मेरे जीवन में भी तीन मनोरथ फलित हो जाए।

मनोरथ तीन हैं मेरे, प्रभु मैं पूर्ण कर पाऊँ,
मनुज तन की सफलता को, प्रभु मैं पूर्ण कर पाऊँ।।

कई लोग सोचते होंगे कि दस बड़े उद्योगपतियों में मेरा नाम आ जाए। मेरा दबदबा हो जाए, किंतु ज्ञानीजनों की दृष्टि में मनुष्य तन की सफलता होशो-हवास में मृत्यु वरण करना है। बेहोशी में तो लोग मरते ही हैं। हमें सोचना चाहिए कि मुझे होशपूर्वक मृत्यु को स्वीकार करना है। जैसे शादी के समय व्यक्ति कन्या का वरण करता है, वैसे ही शहजादी रूपी मृत्यु को स्वीकार करना चाहिए। सोचना चाहिए कि सज-धजकर मौत रूपी वधू के गले में बड़े प्रेम से माला पहनाऊँगा और मृत्यु को स्वीकार करूंगा।

जीवन में तृप्ति प्राप्त होने पर ही यह कार्य संभव है। अतृप्त अवस्था में यह मुश्किल है। इसलिए जितना जीएं, तृप्ति से जीएं। संध्या के समय विचार करें कि मैं पूरा तृप्त हूँ... तृप्त हूँ... तृप्त हूँ... मुझे कोई अभाव नहीं है। जितना हुआ है बहुत अच्छा हुआ है और जितना हो रहा है बहुत अच्छा हो रहा है। जितना प्राप्त है वह पर्याप्त है। मुझे कोई आकांक्षा नहीं है, कोई अभिलाषा नहीं है। सुबह उठें और विचार करें कि आज का दिन तृप्ति में निकले। मैं किसी प्रकार से अपने आपको अभावग्रस्त महसूस नहीं करूँ। अभाव का सोचेंगे तो अभाव ही नजर आएगा।

एक गिलास में दूध है। एक व्यक्ति देखता है कि आधा गिलास दूध से भरा है, वहीं दूसरा व्यक्ति देखता है कि गिलास आधा खाली है। दोनों का नजरिया अलग है। एक व्यक्ति उसमें भरे हुए दूध को देख रहा है और दूसरा उसके खालीपन को देख रहा है। जो व्यक्ति दूध देख रहा है वह सद्भाव को देख रहा है और जो खाली स्थान को देख रहा है वह अभाव की दृष्टि से देख रहा है। हमें मनुष्य जीवन मिला है, तीर्थंकर भगवंतों का शासन मिला है, इससे

बढ़िया और क्या हो सकता है।

रोज चर्चा चल रही है–

धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।

मनुष्य जन्म के रूप में अच्छा अवसर मिला है, सुंदर वातावरण मिला है, जिनेश्वर देवों का धर्म मिला है। महान पुण्यवानी के योग से ये सारे साधन मिले हैं। इस पुण्यवाणी के संयोग से हम अपने आपमें कितना तृप्ति का अनुभव करते हैं, यह खुद पर निर्भर है। हम तृप्त बनें, तृप्ति हमारा अंग बने। हमें लगे ही नहीं कि मैं अधूरा जीवन जी रहा हूँ। हमें लगना चाहिए कि मैं पूर्ण हूँ। मुझमें कोई कमी नही है। पाँच इंद्रियाँ मिली हैं, सुंदर मन मिला है। कोहिनूर हीरा भी मन के सामने कुछ नहीं है। मन से मुक्ति को वरा जा सकता है, कोहिनूर हीरे से नहीं। इसलिए हम अपने मन में तृप्ति का अनुभव करते हुए आगे बढ़ें। तीन मनोरथ पूर्ण करते हुए मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ेंगे तो एक दिन धन्य बनेंगे।

महासतियों की तपस्या में महासती श्री मल्लिका श्री जी म.सा. की आज 25 की तपस्या है। जैसा ज्ञात हो पाया है, महासती श्री कर्णिका श्री जी म.सा. की भावना तो बहुत थी, किंतु स्वास्थ्य का सहयोग नहीं मिला। संभव है कि आज उनका पारणा हो गया हो। आज उनकी पारणे की संभावना बनी है। उन्हें भी तृप्ति का अनुभव करना है। हमें कोई रिकॉर्ड नहीं बनाना कि मैंने इतनी तपस्या कर ली, जितनी हुई उतनी पर्याप्त है, बहुत है। नहीं से सही है।

एक तो नहीं है और जो हुआ है कुछ–न–कुछ हुआ तो सही। नहीं में नाम तो नहीं रहा, होने में नाम रहा। हम अपने आपमें तृप्ति का लक्ष्य रखें कि मेरी तृप्ति सदा बनी रहे। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो मोक्ष के नजदीक पहुँचने में देर नहीं लगेगी। फिर अगला कदम मोक्ष का होगा, मुक्ति का होगा। देखेंगे कि अगला कदम मुक्ति की ओर पहुँच गया। ऐसा लक्ष्य बने तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

03 अगस्त, 2023

14

अग्नि शीतल शूल सिंहासन

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।

धर्म की महिमा, धर्म के माहात्म्य की चर्चा हम कर रहे हैं। धर्म के प्रति जितनी गहरी श्रद्धा होगी, उतना ही प्रतिलाभ मिलेगा।

धर्म के प्रति सीता की श्रद्धा गहरी थी। रावण ने उनका हरण किया। उसने बहुत सारे उपक्रम किए। साम, दाम, दंड, भेद से उसने सीता को झुकाने की कोशिश की, पर सफल नहीं हो पाया। सीता ने उस शक्तिशाली सम्राट को भी खरी-खरी सुना दिया। कहा कि धिक्कार है तुम्हारी माता को जिसने ऐसी संतान को जन्म दिया। सीता ने कहा कि तू कितना भी प्रयत्न कर, प्रत्यक्ष स्वीकार करना तो दूर की बात है, मैं स्वप्न में भी तुझे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ।

जहाँ कोई भी सीता का रक्षक नहीं है, कोई भी परिचित नहीं है, वहाँ भी दृढ़ स्वर में अपनी बात कहना, दृढ़ता से अपनी बात सुना देना आसान काम नहीं है। उसे कोई भय नहीं था। वह जानती थीं कि निर्भय होकर जो बात कही जाएगी या निर्भयता से जो कहा जाएगा वह सही कथन होगा। सत्य कथन निर्भय बनाने वाला होता है।

भय क्यों होना?

'जो करना सो अच्छा करना, फिर दुनिया में किससे डरना'

सीता यह मान रही थीं कि मैं कोई गलत काम नहीं कर रही हूँ, गलती की है तो रावण ने की है। सन्न्यासी की पोशाक पहनकर रावण ने बहुत भारी

गलती की है, उस चर्या से सच्चे साधुओं से भी विश्वास हट सकता है। सन्न्यासियों के ऊपर से भरोसा उठ जाता है। अपनी गलती की सजा यह भुगतेगा। यह मुझे उठा लाया, पर मैं यह गलती नहीं करूंगी कि इसकी बातों में आ जाऊँ।

रावण ने सीता को मनाने का, समझाने का बहुत प्रयत्न किया। सीता रावण से मुँह फेर लेती। उसकी तरफ देखती भी नहीं। यह बात हमने रामायण में सुनी होगी, देखी होगी, पढ़ी होगी। रामायण बहुत लंबी है।

प्रसंग बदलता है। राम, लंका के द्वार पर पहुँच जाते हैं। लंका के द्वार पर युद्ध होता है। जो भी उस समय की परंपरा रही, उसका पालन किया। पहले के समय में युद्ध से पहले दूत भेजा जाता था। राम ने भी दूत भेजा।

दूत ने रावण से कहा, यदि आप सीता को वापस लौटाकर माफी माँग लेते हो तो युद्ध टाला जा सकता है।

इसका अर्थ क्या हुआ?

इसका अर्थ यह हुआ कि अंतिम घड़ी तक भी युद्ध को टालने का उपक्रम होना चाहिए। राजनीति में भी हिंसा मान्य नहीं है। मनुष्य के प्राण इतने सस्ते नहीं हैं कि अपनी बात के लिए, अपनी टेक के लिए घमासान किया जाए, किंतु जब आतताई-अन्यायी हर तरह से समझाने पर भी नहीं समझता है तो अंत में युद्ध होता है। वही कार्य राम और लक्ष्मण द्वारा हुआ। रावण पराजित हो गया। रावण का विनाश हुआ, जीवनलीला समाप्त हो गई।

लंका पर राम का आधिपत्य हो गया, विभीषण का राज्याभिषेक हुआ और ससम्मान सीता को राम के चरणों में सौंपा गया।

ऐसा बताया जाता है कि राम, सीता से कहते हैं कि सीते! इतने समय तक तुम रावण के यहाँ रही हो, मैं तुम्हें शुद्ध कैसे मान लूँ। इसका प्रमाण क्या है? इसकी कसौटी क्या है? यह सुनकर सीता को बड़ा बुरा लगा कि राम के भरोसे, राम के नाम पर जी रही थी और आज मुझ पर भी विश्वास नहीं किया जा रहा है। सीता ने अग्निदेव का आह्वान किया। अग्नि प्रज्जवलित हुई और सीता उसमें प्रवेश कर गईं। देखते-ही-देखते अग्नि बुझ जाती है और सीता ज्यों-की-त्यों निकल आती हैं।

'अग्नि शीतल शूल सिंहासन, सीता सेठ सुदर्शन पावन'

अग्नि शीतल हो गई। इस पर लोग आश्चर्य करते हैं। लोगों की दृष्टि

में यह चमत्कार हो गया किंतु धर्म श्रद्धा से नित नये चमत्कार घटते रहते हैं। कई लोग चमत्कार को नमस्कार करने की स्थिति में आ जाते हैं। चमत्कार को मत देखो, धर्म के प्रति दृढ़ता को देखो।

किसी डंडे के बल पर ध्वजा फहराई जाती है। यदि बाँस को हटा दें, तो ध्वजा किसके बल पर फहरेगी? जैसे बाँस मजबूती से खड़ा रहता है, वैसे ही धर्म श्रद्धा अटल रहनी चाहिए। अकंप रहनी चाहिए। सीता की श्रद्धा थी, भक्ति थी, सत्य की निष्ठा थी। शील का तेज था जिसके कारण अग्नि भी शीतल हो गई।

ऐसी घटनाएँ एक बार नहीं, अनेक बार हुई हैं। ये घटनाएँ प्रायः सतयुग में घटी हैं। उस समय प्रायः मनुष्य जैसा बोलता था, वैसा ही जीता था। जैसा जीता था, वैसा ही बोलता था। तब उसकी कथनी-करनी में कोई फर्क नहीं था। भावना और मन का द्वंद्व नहीं था। भाव सच्चे, योग सच्चे थे। जो भावों में है वह योग में है। जो योग में है वह कर्तृत्व में है। ऐसी आस्था होने पर देव-दानवजन्य उपसर्ग भी दूर हो जाते हैं। व्यक्ति कठिन-से-कठिन क्षणों में भी उत्तीर्ण हो जाता है।

सीता जैसी बात ही सेठ सुदर्शन की है। सेठ सुदर्शन पर लाँछन लगा। अभया महारानी ने उस पर लाँछन लगाया। सेठ सुदर्शन पौषध में था, उसने मौन धार ली। वह कोई बयान नहीं देता। सेठ सुदर्शन का प्रसंग आपने बहुत बार सुना होगा। राजा ने बहुत प्रयत्न किया कि सेठ सुदर्शन अपना बयान दे। सेठ सुदर्शन से पूछा भी गया, किंतु उसने मौन धारण कर ली थी। पौषध में अपराधी को भी दंड देने का निषेध है, उसमें अपराधी को भी दंडित नहीं किया जा सकता। तब राजा ने एक तरफा न्याय किया। सेठ सुदर्शन को सूली की सजा दी गई। जब सूली पर चढ़ाने का अवसर बना तो सूली का सिंहासन हो गया।

'शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला'

सेठ सुदर्शन का जीवन वृत्तांत देखने, सुनने, पढ़ने पर एक बात सामने आती है कि धर्म के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। सूली का सिंहासन होने का मुख्य कारण धर्म के प्रति श्रद्धा थी।

सेठ सुदर्शन के पिता का नाम जिनदास था। जिनदास धर्मी श्रावक थे। उनके कोई संतान नहीं थी। उन्होंने गायों को चराने के लिए एक ग्वाला रखा था। उसका नाम था शुभग। उसको धर्म के संस्कार दिए गए। ग्वाला, सेठ के

साथ अवार-नवार धर्म स्थान में भी जाता था। वह मुनियों का दर्शन करके बड़ा खुश होता। बड़ा प्रसन्न होता। एक बार वह गायों को चरा रहा था तो देखा कि एक मुनिराज नवकार मंत्र बोलकर आकाश में उड़ गए। शुभग को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। घर आकर उसने यह बात सेठ से कही कि ऐसा-ऐसा हुआ। सेठ ने उसे पूरा नवकार मंत्र सुनाया और कहा कि यही मंत्र होगा! उसने कहा, हाँ! यही मंत्र बोला था। उसने कहा, मैं भी यह मंत्र याद करना चाहता हूँ। सेठ ने उसको मंत्र याद करवाया और कहा, यह महान लाभकारी-मंगलकारी मंत्र है। भारी-से-भारी विपत्ति इससे दूर हो जाती है, किंतु उसके प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। धर्म के प्रति आस्था होनी चाहिए। नवकार मंत्र पर गहरा विश्वास होना चाहिए।

दो घोड़ों की सवारी नहीं चलेगी। दो घोड़ों की सवारी में आदमी खतरे में रहता है। किस समय कौन-सा घोड़ा विदक जाए और आदमी नीचे गिर जाए पता नहीं। एक तरफ नवकार मंत्र की बात करते हैं और दूसरी तरफ इधर-उधर भटक भी जाते हैं। यदि धर्म पर आस्था है, तो पूरी होनी चाहिए। मरना कबूल हो, किंतु धर्म से विपरीत कुछ नहीं करना। मौत को रोका नहीं जा सकता। वह तो एक दिन आएगी, फिर विपरीत रास्ता क्यों अपनाया जाए?

सेठ ने शुभग को नवकार मंत्र के माहात्म्य की एक कहानी सुनाई। कहानी के अनुसार एक चोर को सम्राट ने सूली पर चढ़ाने की सजा दी। सूली चढ़ाने का मतलब है एक लंबे बाँस या खंभे पर लगी कील पर अपराधी को चढ़ा देना। उस पर बैठाना। मलद्वार को उस कील पर स्थापित किया जाता। धीरे-धीरे वह कील उसके भीतर घुसती चली जाती। जैसे मोती में डोरे को पिराया जाता है, वैसे ही उसको पिरो दिया जाता है। उसमें भयंकर वेदना होती है। भयंकर त्रास होती है।

कहानी के अनुसार सूली पर चढ़े उस चोर को तेज प्यास लगी थी। वह बार-बार पानी माँग रहा था, किंतु अपराधी को कौन पानी पिलाए! उधर से एक धर्मी सेठ निकल रहा था। उस सेठ ने चोर की बात सुनी। वह जान रहा था कि यह अपराधी है और यह भी जान रहा था कि इसकी लम्बी नहीं है। सेठ ने कहा, देख भाई! मैं पानी लाने की कोशिश करता हूँ। जब तक मैं लौटकर आऊँ, तब तक तुम नवकार मंत्र का स्मरण करना। सेठ ने उसको **'नमो**

अरिहंताणं...' की जानकारी देते हुए कहा कि इसे रटते रहना।

सेठ जान रहा था कि यह कुछ समय का ही मेहमान है। मैं जब तक लौटकर आऊँगा तब तक इसका जिंदा रहना मुश्किल है। हुआ भी वही।

चोर ने पहले कभी नवकार मंत्र न सुना था न सीखा था। उसको 'नमो अरिहंताणं' याद नहीं रहा। वह केवल '**आणू ताणू कुछ ना जाणू, सेठ वचन परमाणू**' रटता रहा। इसका मतलब है कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ, कुछ नहीं समझता हूँ। सेठ ने मुझे मंत्र दिया है वही इसमें प्रमाण है। उसी को मैं स्वीकार करता हूँ। चोर उसी में लीन हो गया और मरकर देव हो गया।

'नवकार मंत्र है महामंत्र, इस मंत्र की महिमा भारी है'
आगम में कथी गुरुवर से सुनी, अनुभव में जिसे उतारी है'

आगम में इसका वर्णन किया गया है। कौन-से आगम में है?

(श्रोतागण बोले- भगवती सूत्र में बताया गया है)

'एसो पंचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो...'

पाँच पदों को किया गया नमस्कार सारे पापों का नाश करने वाला है। दो-चार दुखों का नहीं, सारे पापों का, सारे दुखों का नाश करने वाला है। उसकी महिमा बहुत बड़ी है। बहुत बड़ा माहात्म्य है। इससे बढ़कर और क्या महानता होगी कि यह मंत्र छोटे-मोटे पाप ही नहीं, सारे पापों का नाश करने वाला है।

कौन-सा मंत्र सारे पापों का नाश करने वाला है?

(श्रोतागण बोले- महामंत्र)

किंतु हमारी दशा बड़ी विचित्र है। हम महामंत्र को भूलकर दूसरे मंत्रों पर विश्वास करते हैं। हमने महामंत्र को भूलकर दूसरे मंत्रों को स्थापित कर दिया। नवकार मंत्र को भुलाकर 'ॐ ह्रीं' आदि मंत्रों को स्थापित कर दिया। हम नवकार मंत्र भी जप रहे हैं और 'ॐ ह्रीं' आदि भी जप रहे हैं।

हमारा विश्वास किस पर है? किससे ज्यादा फायदा होगा?

हमने अपनी आस्था को भटका दिया है। दूसरे सारे मंत्र हैं पर हमारा महामंत्र है। हमारा महामंत्र महान मंत्र है। कुछ लोग कहते हैं कि नवकार मंत्र को मंत्र नहीं सूत्र कहना चाहिए। इसके लिए रगड़ा-झगड़ा नहीं करना। नवकार मंत्र कहो या सूत्र कहो। ऐसा नहीं है कि आगमों में मंत्र नहीं आए। चौदह पूर्वों में एक मंत्र प्रवादपूर्व भी है, जिसमें मंत्र भरे हैं। मंत्र किसे कहा जाय? '**मननात्**

त्रायते त्ति मंत्रा' अर्थात् जिसका मनन करने से रक्षा होती है उसको मंत्र कहा गया है। नवकार मंत्र का स्मरण करके, उसका ध्यान करके उसमें अपने आपको लीन कर देना। वह सारे पापों का नाश करनेवाला है। सारी मनोकामनाएँ पूरी करनेवाला है। ऐसा मंत्र मन में ग्रहण करने से रक्षा होती है।

जो मंत्र का लक्षण है, जो मंत्र का गुण है वह नवकार मंत्र में है, इसलिए मंत्र कहना कोई गलत नहीं है। इसकी महिमा का कथन आगम से हुआ है, गुरुवर से सुना है। यह मंत्र सबसे बढ़कर है।

'सबसे बढ़कर है नवकार, करता है भव सागर पार।'

ऐसी अनमोल चीज, ऐसी अनमोल वस्तु, ऐसा अनमोल उपदेश, ऐसा अनमोल मंत्र हमको मिला है। किंतु हमारा मन, हमारी दृष्टि सही नहीं है। देखने की ताकत हमारी सही नहीं है। इसलिए इससे हम लाभान्वित नहीं हो पाते। पूज्य श्री हजारीमल जी म.सा. ने क्या सुंदर कहा है–

'हीरे री कीमत भाई, कूंजड़ो तो जाने कांई...'

साग–सब्जी बेचनेवाले, कपड़े का व्यापार करनेवाले के सामने जाकर रत्न रख दें, हीरा रख दें और पूछें कि इसकी कीमत क्या है, तो वह क्या बताएगा? उनके लिए काँच का कंचा और हीरा एकसमान है। उनके लिए चमकता हुआ पत्थर है। उनको क्या मालूम कि इसकी कीमत कितनी है। उसकी कीमत कौन आँकेगा?

(श्रोतागण बोले– जौहरी आँक पाएगा)

अभी तक हमें जोहरी की आँख प्राप्त नहीं हो पाई। जिनेश्वर देवों का धर्म मिला, महामंत्र मिला, किंतु हमारे कर्म योग ऐसे हैं कि हम उनकी परख करने की दृष्टि प्राप्त नहीं कर पाए। इसलिए ऐसा महान धर्म, महामंत्र मौजूद होते हुए भी हम इधर–से–उधर भटक जाते हैं। नहीं भटक रहे हैं क्या?

(श्रोतागण बोले– भटक रहे हैं)

हम इधर–से–उधर क्यों भटक रहे हैं? इधर–उधर क्यों झाँक रहे हैं? क्यों झाँकना, किसलिए झाँकना? अपने पर भरोसा नहीं होता है तो आँखें दूसरी तरफ भटकती हैं। अपने धर्म पर भरोसा होगा तो उससे सारे समाधान मिलेंगे। वैसी दृष्टि होनी चाहिए। वैसी दृष्टि होगी तो कहीं–से–कहीं तक मात खाने वाले नहीं होंगे।

'धर्मी मात कभी ना खाता, जब भी पाता वह जय पाता'

मात खाने की हमारी आदत बन गई है। आज हम मार खाने के लिए तैयार हैं। जीत तो दूर की बात रह गई, मार खाने के लिए तैयार हो जाते हैं। क्यों खाना मात? क्यों खाना मार? एक दिन मैंने खरबूजे और चाकू के बारे में बताया था। बताया था कि खरबूजा चाकू पर गिरे या चाकू खरबूजे पर, कटेगा खरबूजा ही।

वैसी ही दशा हमारी बनी हुई है। जो चाहे हमें चाँटा लगा दे। जो चाहे हमें कठिनाइयों में डाल दे और हम हाँ साहब! हाँ साहब करते रहेंगे। हमारी तेजस्विता और ओजस्विता कहाँ चली गई? हमारा धर्म कभी कायरता का पाठ नहीं पढ़ाता है। यह नहीं कहता कि तू दरवाजा बंद करके भीतर बैठ जा। हमारा धर्म, आतताई बनने का निषेध करता है। आतंकी बनने का निषेध करता है, किंतु श्रावक के लिए कहा गया है कि यदि कोई तुम पर आक्रमण करे तो आत्मरक्षा करना तुम्हारा धर्म है।

श्रावक का पहला व्रत क्या है?

अपराधी को छोड़कर निरपराध को मारने की दृष्टि से हनन करने का प्रत्याख्यान। यदि कोई मेरे शरीर पर आक्रमण करे तो वह उसका अपराधी है। इसलिए शरीर पर आक्रमण करनेवाले को दंडित करने का अधिकार श्रावक के हाथ में है। हमारे श्रावकों ने युद्ध किए हैं। भगवान महावीर के बारह व्रतधारी श्रावकों ने युद्ध किए हैं। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि हम युद्ध क्यों करें।

श्री भगवती सूत्र में वरणनाग नत्तुआ का वर्णन आता है। वह बारह व्रतधारी श्रावक था। बेले-बेले की तपस्या करता था। उसको संदेश मिला कि आपको युद्ध में आना है। उसने बहाना नहीं बनाया कि मैं बेले-बेले की तपस्या करनेवाला हूँ, मेरा शरीर कमजोर है, मैं युद्ध में कैसे आऊँगा? बेले-बेले का तपस्वी भी युद्ध में जाता है। उसको संदेश मिला और वह युद्धभूमि में चला गया।

आप विचार कीजिए कि अपना धर्म कितना तेजस्वी रहा है! कितना ओज रहा है हमारे धर्म में! किंतु आज दशा यह है कि लोग मानते हैं कि जैन धर्म कायरों का है।

किसका है जैन धर्म?

(श्रोतागण बोले- शूरवीरों का है)

हमारा जैन धर्म, शूरवीरों का धर्म रहा है।

क्यों रहा है शूरवीरों का धर्म?

क्योंकि लाखों-लाख योद्धाओं को जीत लेना आसान है, किंतु अपने मन को जीत लेना बहुत दुष्कर है। जैन धर्म, जैन सिद्धांत यही कहता है कि दूसरों को जीतने के बजाय अपने आप पर विजय प्राप्त करो। अपनी वृत्तियों पर विजय प्राप्त करो, इसलिए सबसे उत्तम धर्म जैन धर्म है और सबसे अहिंसक धर्म, सबसे ओजस्वी धर्म जैन धर्म है। कुछ कायरताओं के कारण जैन धर्म पर लांछन लगा।

सेठ सुदर्शन की बात चल रही थी। वह मरने के लिए तैयार हो गया पर उसने कोई सफाई नहीं दी। उसको धर्म पर आस्था थी। उसे विश्वास था कि धर्म से कभी मेरा बुरा नहीं होगा। जो होगा अच्छा होगा और

शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला,
शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला, फेरो एक माला, हो हो...

जिस चोर की बात मैं बता रहा था, वह चोर देवलोक में गया। वह कहानी सेठ, शुभग को सुना रहे थे। शुभग के मन में नवकार मंत्र पर अटूट आस्था हो गई। कहानी बहुत लंबी है। एक प्रसंग आया, नवकार मंत्र गिनकर शुभग नदी में कूद पड़ा। उसकी मृत्यु हो गई। वह मरकर सेठ जिनदास के घर सेठ सुदर्शन के रूप में जन्म लेता है। नवकार मंत्र की आस्था के बल पर सेठ सुदर्शन नाम पड़ा। वे संस्कार पूर्व जन्म के भी थे और वर्तमान में भी सेठ के घर में गहरे संस्कार थे। इतने गहरे संस्कार उसके भीतर हो गए कि मरना है तो भी कोई दुख नहीं, जीने की तो बात ही नहीं। मृत्यु का क्षण आया तो भी मन में कोई ऊहापोह नहीं, कोई ग्लानि नहीं, कोई दुख नहीं। ऐसा नहीं सोचा कि परिवार का क्या होगा, मेरी इज्जत का क्या होगा।

उन्हें पता था कि मेरा धर्म ही मेरी रक्षा करने वाला है। और जब उसने सारी बात धर्म पर छोड़ दी तो धर्म को अपने आप अपना काम करना पड़ेगा, अपने आप काम होगा। देवों का ध्यान आकर्षित हुआ और सूली का सिंहासन बन गया। यह धर्म श्रद्धा के बल पर हुआ। सेठ सुदर्शन की धर्म पर श्रद्धा थी, इसलिए सूली का सिंहासन हो गया। धर्म पर यदि हमारी आस्था है, श्रद्धा है तो क्या नहीं हो सकता। ऐसा कोई भी कार्य नहीं, जो नहीं हो सकता, बशर्ते श्रद्धा अडिग रहनी चाहिए, अकंपित रहनी चाहिए, अटल रहनी चाहिए।

श्रद्धा अटल-अकंप रहेगी तो दूसरी तरफ झाँकने की आवश्यकता

नहीं है। सच्चाई और सही राह पर यदि टिके हुए हैं तो घबराने की कोई बात नहीं है। सच्चाई की आराधना करते हुए यदि मौत भी आ जाए तो खुशी-खुशी स्वीकार करना।

भगत सिंह को फाँसी पर चढ़ाने की तैयारी हो रही थी किंतु उनके मन में कोई गम नहीं था। कोई पश्चात्ताप नहीं था। उनके मन में विचार था कि मैंने जो किया अच्छा किया है, सही किया है। जो किया देश के लिए किया। राष्ट्र के लिए किया। देश को स्वतंत्र कराने के लिए किया। उन्होंने मन में कभी नहीं सोचा कि मैंने अपराध किया है, इसलिए उनकी चाल मस्त थी।

'मेरा रंग दे बसंती चोला', यह कौन बोला?

(श्रोतागण बोले- भगत सिंह)

भगत सिंह के साथियों ने उनको जेल से भगाने की योजना बना ली थी। सारा प्लान बना लिया था, तैयारी हो गई थी। भगत सिंह से मिलकर उनके साथियों ने कहा, आप तैयार रहना, हमने सारी तैयारी कर ली है। भगत सिंह ने कहा, ऐसा कार्य मुझसे नहीं होगा। मैं जेल से नहीं भागूँगा। साथियों ने कहा, आपका रहना बहुत जरूरी है। भगत सिंह ने कहा, मैं रह गया तो आंदोलन फीका पड़ जाएगा। यदि मैं कुर्बान हो गया, शहीद हो गया तो लाखों भगत सिंह पैदा होंगे। आप एक भगत सिंह की रक्षा की बात मत करो, सत्य की रक्षा करो। यह बल कहाँ से आया?

आत्मबल ही है, हाँ! सब बल का सरदार, आत्मबल ही है।

टी.वी. पर महाभारत किस-किसने देखी, हाथ खड़े करो? घबराओ मत, सच्चाई में पीछे मत रहना।

(कई श्रोताओं ने हाथ खड़े किए)

क्या देखा आपने?

अभिमन्यु चक्रव्यूह में फँस गया। उसकी गरदन काट दी गई। गरदन कटने के बाद भी वह लड़ रहा था। उसने कइयों को मृत्यु के घाट उतार दिया। जब तक उसका तन नहीं गिरा तब तक उसके हाथ चलते रहे और वह घमासान करता रहा।

किसके बल पर ऐसा किया?

आत्मविश्वास के बल पर। आत्मविश्वास बहुत महत्त्वपूर्ण चीज है।

धर्म श्रद्धा से ही आत्मविश्वास मजबूत होता है, सुदृढ़ होता है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...
हलके-फुलके ज्वर ने घेरा, उठा दिया मांजी का डेरा,
सुरेश का बेहाल, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...

वनस्पतिकाय जीव को भी यह बोध हो जाता है कि कौन मेरा हितैषी है और कौन मेरे साथ शत्रुता रख रहा है। डॉ. जगदीशचंद्र बसु व डॉ. वेंकटेसन आदि ने खोज की तो पता चला कि वनस्पति के सामने उसकी प्रशंसा करने से वह पुलकित हो जाती है। यह भी पता चला कि जिसने एक बार वनस्पति को छिन्न-भिन्न कर दिया, उसे तोड़ दिया, वह दूसरी बार वनस्पति के पास जाता है तो वनस्पतियों के भीतर प्रकंपन पैदा होती है, कंपन पैदा होती है। यह देखकर वैज्ञानिकों ने मान लिया कि वनस्पति में भी संवेदन होता है।

भगवान ने तो कहा है कि पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक सभी में संवेदन होता है। डॉ. जगदीशचंद्र बसु ने बताया था कि पृथ्वीकायिक जीवों में भी संवेदन होता है। उन्होंने पानी के जीवों में भी संवेदन सिद्ध किया, किंतु उसका ज्यादा प्रचलन नहीं हुआ। वनस्पतिकाय की बात प्रचलन में ज्यादा आ गई, क्योंकि वह स्थूल है और स्थूल जल्दी से समझ में आ जाता है। जब वनस्पति का जीव भी अपने हितैषी की पहचान कर लेता है, तो सुरेश को अपने हितैषी की पहचान क्यों नहीं हो सकती।

माता की मृत्यु से वह बेहाल हो गया। माता को हलका-फुलका बुखार हुआ था। लोग सोचते हैं कि हलका-फुलका बुखार है पर मौत के लिए कोई एक छोटा सा निमित्त होना चाहिए। लोग सोचते हैं, बातें करते हैं ''कि अरे! अमुक के कुछ नहीं था। एकदम ठीक था। बुखार भी ठीक हो गया था, फिर भी पता नहीं क्या हो गया। एक छोटा सा हार्ट-अटैक था, कुछ नहीं था।'' माँजी को हलका-फुलका बुखार था। हलके-फुलके बुखार ने माँजी को उठा लिया। सुरेश बेहाल हो गया। माँ के शरीर से चिपक कर जोर-जोर से रोने लगा। उसका रुदन देखकर बड़े-बड़े लोगों का दिल हिल जाए, प्रकंपित हो जाए, किंतु विजय को वह बात नहीं सुहा रही थी। विजय कहता है कि यह ढोंग कर रहा है।

विजय ने सुरेश का हाथ पकड़कर कहा, चल हट। सुरेश का एक हाथ

विजय के हाथ में था और दूसरे हाथ से उसने माँ की लाश को पकड़ रखा था। विजय कहता है कि ज्यादा ढोंग मत कर। तुम्हें ही मोह है, दूसरों को नहीं है क्या। विजय उसका हाथ पकड़ता है और कहता है चल हट, एक किनारे बैठ। वहाँ मौजूद लोगों ने देखा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

सुनंदा सामने आकर विजय से कहती है, थोड़ी लोकलाज तो रखो। थोड़ा तो ध्यान दो। सुनंदा भी दुखी थी कि मुझे ऐसी सासु माँ मिली और अल्प समय में उनकी छाया मेरे सिर से उठ गई। एक माँ को पीहर में छोड़ आई, दूसरी माँ यहाँ मिली। उनके साए में मेरा जीवन आनंद से चल रहा था। मुझे अच्छी-अच्छी शिक्षा मिल रही थी, किंतु मेरा भाग्य ही रूठ गया। मेरा पुण्य रूठ गया कि सास का साया मेरे सिर से हट गया। ऐसा विचार सुनंदा कर रही थी। वह खुश नहीं थी कि पापो कटियो। वह यह नहीं सोच रही थी कि रोज-रोज का झमेला खत्म हुआ। उसको अफसोस हो रहा था। यद्यपि वह जान रही थी कि मरना एक दिन सबको है, किंतु सास इतनी जल्दी चली जाएगी ऐसा उसने कभी नहीं सोचा। उसको ऐसा विश्वास ही नहीं था। कोई व्यक्ति किसी को बुरा लगता है, तो किसी को बहुत अच्छा लगता है। अपने-अपने कर्म योग हैं।

'पत्तेय पुण्ण-पावं'

प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने पुण्य हैं और अपने-अपने पाप हैं। व्यक्ति कि किसी के साथ दोस्ती हो जाती है और किसी के साथ दुश्मनी हो जाती है। हमें अपनी आत्मा को तटस्थ बनाना चाहिए। '**ना काहू से दोस्ती, ना काहू से वैर।**' किसी से दुश्मनी भी नहीं हो और किसी से दोस्ती भी नहीं। सबके साथ मित्रता का भाव होना चाहिए। ऐसा लक्ष्य होगा तो अपनी आत्मा को ऊँचा उठाने वाले बनेंगे। ऐसा लक्ष्य बनाना है कि आत्मविश्वास दृढ़ बने, सुदृढ़ बने।

सुनंदा अफसोस कर रही है, किंतु वह जान रही है कि कोई अमर नहीं होता। मरना सबको होता है। उस आधार पर वह सांत्वना धारण करती है। अब आगे क्या कुछ प्रसंग बनता है, विजय आगे क्या प्लानिंग करता है, सुनंदा क्या विचार करती है, सुरेश का क्या हाल होता है, ये सारे प्रसंग यथावसर सुनने को अवसर हो सकता है।

तपस्या का क्रम चल रहा है। यह तो नहीं कह सकता कि तपस्या की बहार आ गई, क्योंकि अभी तो उपवास में भी टिमटिमाते लोग खड़े हो रहे हैं।

एकासने-बेआसने में कितने लोग खड़े होते हैं, आप देख लेना। दो टाइम खाने की छूट है फिर भी इक्का-दुक्का लोग खड़े होते हैं। सुमतिलाल जी के सुपुत्र भाई संजय जी चौधरी की आज 36 की तपस्या है। मेरे पास इनके परिचय की चिट आई। इसका मतलब क्या हो गया? अर्द्ध-विराम हो गया या पूर्ण विराम? अर्द्ध-विराम का मतलब है- थोड़ा रुकना और पूर्ण-विराम का अर्थ होता है वाक्य पूर्ण होना। पहले भी इन्होंने कई तपस्या की है। बताया गया कि हर दीवाली पर तेला करते हैं। पंद्रह अठाइयाँ की है। आज इनकी 36 की तपस्या है। मुणोत बाई जी की आज 36 की तपस्या है। मंजू बाई छिंगावत के 29 की तपस्या है। महासती श्री मल्लिका श्री जी म.सा. की 26 की तपस्या है। कई और भाई-बहनों की भी तपस्या चल रही है, समय के साथ उनके बारे में ज्ञात होगा।

इन सबसे प्रेरणा लें और अपने आत्मविश्वास को जगाएँ। उपाध्याय श्री जी के पास ज्ञान चर्चा में कई लोग आते हैं और क्या कहते हैं नवीन जी?

(नवीन जी कांठेड़ बोले- 14 से 21 अगस्त तक अठाई महोत्सव के आयोजन का बोलते हैं)

'जो बोले सो अभय।' 14 से 21 अगस्त तक आठ दिन होते हैं। किसी को नौ करना हो तो वह 13 तारीख से शुरू हो जाए और ग्यारह करना हो तो 11 तारीख से चालू हो जाए। 7 तारीख से शरू करने पर पखवाड़ा हो जाएगा। 15, 11, 8 जो भी हो करें। इन सबको अठाई महोत्सव में गिना जा सकेगा। व्यक्ति सोच ले कि मुझे तो करना ही है और यदि मैं करने में समर्थ नहीं हूँ तो मेरे घर में किसी की होनी चाहिए। ऐसा हो जाए तो दो सौ अठाई होना कोई बड़ी बात नहीं है।

प्रेरणा लें और अपने भाव को आगे बढ़ाएँ। आत्मविश्वास बढ़ेगा तो सारे काम सुलभता से, सुगमता से सम्पन्न होते जाएंगे। आत्मविश्वास ही हिल गया तो एक उपवास करना भी भारी काम है। प्रेरणा लें और अपने आपको धन्य बनाएँ। इतना ही कहते हुए विराम।

04 अगस्त, 2023

15

अन्तर मन संगीत गुंजाता

शांति जिन एक मुज विनति, सुणो त्रिभुवन राय रे।
शांति स्वरूप केम जाणिये, कहो मन केम परखाय रे।।
धम्म सद्धा हृदय धरूँ, धर्म बने मुझ प्राण।
धर्म आराधन नित करूँ, धर्म सदा सुख त्राण।

कहा गया है कि 'धर्म आराधन नित करूँ' यानी कि धर्म की आराधना प्रतिदिन करूँ। धर्म की आराधना करने का मतलब है कषायों को पतला करने का प्रयत्न करना। क्रोध घटाने का लक्ष्य रखना।

यदि किसी भी कारण से क्रोध आ रहा है तो उसको शमन करने का लक्ष्य होना चाहिए। क्रोध हमारे समीप रहता है। मन के विपरीत कुछ भी काम होने पर वह आकर खड़ा हो जाता है। मान को अपने मतलब से काम है, मान का मतलब जब तक सध रहा है तब तक तो ठीक है पर मतलब में थोड़ी भी गड़बड़ी होने लगे, थोड़ी भी चूक हो जाय तो वह फुफकारने लगता है। वैसे ही माया और लोभ भी खड़े रहते हैं। इन सबके होते हुए की गई धर्म आराधना सामान्य या द्रव्य धर्म आराधना होगी। वह गहन या भाव से धर्म आराधना नहीं होगी। क्लेश से मन साफ नहीं होगा तो आराधना का उतना आनंद नहीं आ पाएगा।

द्रव्य आराधना हमने अनेक बार की है। अनेक बार सामायिक, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध किए हैं, किंतु भावों से आराधना नहीं हो पाई। भावों से आराधना नहीं हो पाने से संसार में रुके हुए हैं। यदि सही आराधना हो गई होती तो संसार में रुके नहीं रहते!

'जय जय जय होती रण में, मिले सफलता हर क्षण-क्षण में'

हर क्षण सफलता मिलेगी। श्रीमती का वर्णन स्वर्णाक्षरों में प्राप्त होता

है। श्रीमती एक श्रेष्ठी कन्या थी। वह ससुराल गई। वहाँ नियमित धर्माराधना करती। आराधना करते हुए समय व्यतीत करना ससुराल वालों को पसंद नहीं था। ससुराल वाले उसके सामने बहुत सारे ऐसे प्रसंग खड़ा कर देते कि उसको धर्माराधना का समय ही न मिले, किंतु वह चतुर थी। वह समय पर कार्य संपादित करती और धर्माराधना के लिए समय निकाल लेती।

शरीर में स्फूर्ति और मन में लगन होती है तो समय निकलता है। मन में लगन नहीं हो, स्फूर्ति नहीं हो तो व्यक्ति गप्प में समय निकाल देगा, इधर-उधर की बातें करने में समय निकाल देगा, पर समय को सार्थक नहीं कर पाएगा।

श्रीमती अपनी ड्यूटी पूरी बजाती थी। वह कार्य संपादन करने में चतुर थी। अन्य कार्यों के साथ धर्माराधना उसके जीवन का अंग था। धर्माराधना करना वह कभी नहीं भूलती थी। मैंने एक बार पहले भी कहा है कि चाहे छोटा-सा भी नियम क्यों न हो, नियमित होना चाहिए।

नियमितता से कार्य होता है तो उसकी अपनी एक अलग ही रचना होती है। उससे आत्मविश्वास विकसित होता है। आत्मविश्वास बढ़ता है। कठिनाइयों में भी अडिग रहने का मन बन जाता है। कठिनाइयों में भी मन अटल रहता है। जीवन में कठिनाइयां आती हैं और आएंगी। कठिनाइयों को सहन करने, उसे स्वीकार करने और उसमें निष्कंप बने रहने की दृढ़ता धर्माराधना से प्राप्त होती है। जैसे भूकंप या तूफान में मजबूत बिल्डिंग खड़ी रह जाती है, मजबूत पेड़ खड़े रह जाते हैं, वैसे ही धर्माराधना से व्यक्ति दृढ़ रहता है।

श्रीमती नियम से धर्माराधना करती थी। उसने समय को साध लिया था। समय को साधना बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। वह दिन में सारा कार्य करती। सुबह जल्दी उठकर और रात में धर्माराधना करती। वह धर्माराधना में इतनी तन्मय हो जाती कि परमात्मा और अपनी आत्मा का भेद भूल जाती। अभेदावस्था को अनुभव करती।

महासती मृगावती के वर्णन से भी उसकी जानकारी मिलती है। वह भगवान महावीर के दर्शन करने के लिए पहुँची और उनमें तन्मय हो गई। इतनी तन्मय हो गई कि भूल ही गई कि मैं कहाँ हूँ? मैं कौन हूँ? मैं कैसे हूँ?

उसको इतना आनंद आ रहा था, जिसकी कोई सीमा नहीं थी। उसकी प्रभु से गहरी प्रीत लग गई। अन्तर्मन से प्रीत लग गई। हम केवल शब्दों

से प्रीत लगाते हैं। केवल भीतर शब्द गुँजाते हैं, जय-जयकार कर लेते हैं, किंतु अन्तर से, हृदय से उसके साथ नहीं जुड़ पाते। मृगावती को जब खयाल आया तो उसे लगा कि समय थोड़ा ज्यादा हो गया है। वह अपने स्थान पर पहुँची।

विलंब से पहुँचने के कारण उसे उपालंभ मिला कि आपको ध्यान रखना चाहिए, समय पर अपने स्थान पर वापस लौट आना चाहिए, विलंब नहीं होना चाहिए।

साधुओं के स्थान पर साध्वियों और महिलाओं के रुकने के लिए निश्चित नियम है कि उनको उस स्थान पर कितने समय तक रुकना है। उसके अतिरिक्त समय में नहीं रुकना है। प्रार्थना के समय वे दर्शन-लाभ ले सकती हैं, आराधना कर सकती हैं। व्याख्यान के समय लाभान्वित हो सकती हैं। दोपहर वाचनी के समय (लगभग दो से चार बजे) लाभान्वित हो सकती हैं। इसके अतिरिक्त समय में उनको साधुओं के स्थान पर नहीं बैठना चाहिए। कभी विशेष कोई कार्य के लिए जाना हो तो खड़े-खड़े बात कर लें, वहाँ पर बैठें नहीं। इसी प्रकार साध्वियों के स्थान पर भाइयों के लिए बताया गया है। निर्धारित समय के बाद रुकने पर मर्यादा का उल्लंघन होता है। एक मर्यादा का उल्लंघन अनेक मर्यादाओं को भंग कराने वाला बन जाता है।

खैर, आते हैं मृगावती की बात पर। मृगावती को उपालंभ मिला कि विलंब नहीं होना चाहिए। उसने उपालंभ को सकारात्मक लिया कि मेरे कारण से गुरुवर्या को इतनी ठेस पहुँची। धिक्कार है मेरी आत्मा को, मुझे समय की साधना करनी चाहिए। उसने आत्मचिंतन किया। उसका आत्मचिंतन इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसी समय उसको केवलज्ञान हो गया।

लोग सोचते हैं कि केवलज्ञान बहुत कठिन है। कायरों के लिए हर कार्य कठिन है। शूरवीरों के लिए हर कार्य आसान है। कार्य संपन्न करने की विधा जिसको ज्ञात है, वह कार्य को संपन्न करता है। कायर व्यक्ति कार्य करने की हिम्मत नहीं कर पाता। साहस नहीं जुटा पाता। उसके मन में भय का संचरण होता रहता है कि मैं इस कार्य को कैसे करूंगा! वह सोचता है कि ऐसे करूंगा तो ये हो जाएगा, वैसे करूंगा तो वो हो जाएगा। वह सोचने में उलझ जाता है।

कायर व्यक्ति किसी कार्य को सहसा कर नहीं पाता। शूरवीर कार्य पूरा करने में हिम्मत के साथ जुट जाते हैं। कार्य को पूरा करने की क्षमता हमारे भीतर

मौजूद है, हमने ही उसको रोक रखा है। हम ही उसको प्रकट नहीं कर रहे हैं।

आप बोल सकते हैं कि म.सा.! हम क्यों रोकेंगे। हम तो प्रकट करने के लिए तैयार हैं। कौन-कौन केवलज्ञान प्रकट करना चाह रहा है?

किसी का हाथ नहीं उठ रहा है। जैसा मैं कहूं वैसा करने पर केवलज्ञान हो सकता है।

जनक राजर्षि सभा में बैठे हुए थे। बड़े-बड़े विद्वान, राजा और ऋषि आए हुए थे। जनक राजा सभा में कहते हैं कि मुझे आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना है। मुझे आत्मा का बोध प्राप्त करना है। कोई मुझे आत्मा का बोध प्राप्त कराए।

सभी विद्वान यथावसर अपनी-अपनी बात सुनाए जा रहे थे। इतने में ही अष्टावक्र ऋषि पहुँच गए। सभा में प्रवेश करने के लिए उन्होंने अनुमति चाही। उन्होंने कहा कि अनुज्ञा हो तो मैं सभा में शामिल होना चाहता हूँ। सबकी दृष्टि उनकी तरफ उठ गई। उनके शरीर को देखकर सभी हँसने लगे। जब सबने हँसना बंद किया तो अष्टावक्र ऋषि हँसने लगे।

राजर्षि जनक अष्टावक्र ऋषि से पूछते हैं कि ऋषिवर आपके हँसने का कारण क्या है? क्यों हँसे आप?

अष्टावक्र ने कहा कि राजन आप न्याय सिंहासन पर विराजमान हैं, आप यह बताइए कि पहले आपकी सभा में उपस्थित लोग हँसे या मैं हँसा?

जनक ने कहा कि पहले मेरी सभा के लोग हँसे तो अष्टावक्र ने कहा कि आपने उनसे नहीं पूछा कि वे क्यों हँसे? आप मुझसे पूछ रहे हैं कि मैं क्यों हँसा। पहले किससे पूछा जाना चाहिए था?

(श्रोतागण बोले- सभा के लोगों से पूछा जाना चाहिए था)

बात बहुत सामान्य है, क्योंकि हम पहले जान चुके हैं या जान रहे हैं। अष्टावक्र का शरीर आठ जगह से टेढ़ा-मेढ़ा था, इसलिए उनको देखकर सभी लोग हँसने लगे थे।

अष्टावक्र ऋषि ने जनक से कहा कि पूछ लिया जाए कि तुम लोग क्यों हँसे। इसका जवाब कौन दे? सत्य बात कहने की हिम्मत हर किसी की नहीं होती। खैर, एक युवक हिम्मत करके उठा। उसने कहा कि राजन! ऋषि पहुँचे, उन्होंने अनुमति ली और हमारी दृष्टि उनकी ओर चली गई। उनके शरीर को देखकर हमें हँसी आ गई कि आठ जगह से टेढ़े-मेढ़े शरीर वाला आदमी

परमात्म बोध कराने के लिए उपस्थित हुआ है। यही हमारी हँसी का कारण है। उस युवक ने हँसी का कारण बता दिया।

फिर अष्टावक्र ऋषि से पूछा गया कि आपकी हँसी का क्या कारण था। उन्होंने कहा कि राजन! मेरे सुनने में आया था कि आपने धर्मसभा का आयोजन किया है जिसमें आत्मा और परमात्मा की चर्चा होने वाली है। यह सुनकर मैंने सोचा कि विद्वानों की सभा में मुझे भी जाना चाहिए। वहाँ आत्मा-परमात्मा का ज्ञान मुझे भी मिल पाएगा, इसलिए मैं यहाँ आ गया, किंतु यहाँ आकर मुझे बड़ी निराशा हुई। मुझे लगा कि मैं चमारों के बीच में आ गया।

अष्टावक्र की बात सुनकर सभासदों को बुरा लगा।

राजा ने फिर प्रश्न किया कि ऋषि आपने यह बात कैसे कही कि आप चमारों के बीच में आ गए।

ऋषि ने कहा कि राजन, इनकी नजर आत्मा पर होती तो मेरे शरीर को देख कर हँसते नहीं। इनकी दृष्टि मेरे शरीर पर रही। मेरी चमड़ी को इन्होंने देखा जिससे इनको हँसी आ गई। चमड़ी की पहचान जितना चमार कर सकता है, उतना दूसरा नहीं कर सकता है। जैसे हीरे की परख जौहरी करता है, अनाज का व्यापारी अनाज की परख करता है, वैसे ही चमड़ी का व्यापारी चमड़ी की परीक्षा करता है। उसकी परख चमार ही कर सकता है। सभासदों ने मेरी कीमत चमड़ी से आँकी इसलिए मैंने कहा कि मैं चमारों के बीच आ गया। इस बात को थोड़ा विराम देते हैं।

किसी दर्पण में अपना चेहरा देखते समय आपकी दृष्टि किस पर लगी रहती है? आपकी दृष्टि आत्मा पर होती है या बाह्य वातावरण से प्रभावित होती हैं? अधिकांशतया बाह्य वातावरण प्रभावित करता है। यदि अष्टावक्र जैसा व्यक्ति सभा में आ जाए तो सबकी आँखें उसकी तरफ चली जा सकती हैं। उसको देखने का मन-ही-मन विचार कर सकते हैं।

गौतम स्वामी, मृगा लोढ़ा को देखने गए थे। मृगा लोढ़ा को देखकर उनके मन में संवेदना जगी कि अहो! यह भी जीव है, यह भी आत्मा है। किस प्रकार से कर्मों का वहन कर रहा है। हम दूसरे की बात पर हँसेंगे। दूसरे के बेडौल शरीर को देखकर हँसी आ जाएगी। जैसे जनक के सभासदों को हँसी आई। हम भी हँसेगे तो उसी श्रेणी में चले जाएंगे। शरीर का आकार कैसा भी हो

सकता है। उसमें भी आत्मतत्त्व रहा हुआ है।

दृष्टि आत्मा पर होगी तो शरीर के रूप-रंग को नहीं देखेंगे। शरीर कैसा भी हो, आत्मा सबकी एकसमान है। कर्मों के कारण थोड़ी भिन्नता आ गई। इसे ऐसे समझ सकते हैं- एक नीबू को काटकर उस पर लाल रंग लगा दिया, एक अन्य नीबू पर पीला रंग लगा दिया और एक पर काला रंग लगा दिया। सभी नीबुओं का रंग अलग नजर आ रहा है, किंतु निचोड़ने पर सबका रस समान होगा या अलग-अलग?

(श्रोतागण बोले- सबका रस एक जैसा ही रहेगा)

सभी नीबुओं का रस लगभग समान होगा। रंग देखने वाले ने केवल रंग देखा। उसने लाल, पीला, काला देखा किंतु उसके भीतर रस देखने वाला यह विचार करेगा कि रंग काला हो या पीला, कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। उसका रस तो वैसा ही है। वैसे ही शरीर कैसा भी हो, आत्मतत्त्व एक जैसा है।

अभी श्रीमती की बात हुई थी। वह आत्मतत्त्व देखने वाली थी। यदि हम अष्टावक्र की बात को आगे बढ़ाएं तो जनक को यह बोध हो गया कि इस व्यक्ति का शरीर आठ जगहों से टेढ़ा-मेढ़ा भले ही हो, किंतु यह तत्त्वज्ञ है। ज्ञानी है। यह आत्मा का बोध कराने में समर्थ होगा।

सारे सभासदों से विमुख होकर अष्टावक्र के अभिमुख हो राजा जनक ने कहा- ऋषिवर क्या आप मुझे आत्मतत्त्व का बोध करा सकते हैं?

ऋषि ने कहा कि क्यों नहीं करा सकता।

राजा ने पूछा कि कितना समय लगेगा?

अष्टावक्र ने बताया कि घोड़े पर चढ़ने के लिए एक छलांग लगाने जितना समय आत्मबोध में नहीं लगेगा।

राजा ने कहा कि मैं तैयार हूँ।

ऋषि ने कहा कि पहले संकल्पित होना जरूरी है राजन। इसलिए संकल्प करो कि धन, वैभव, परिवार, राज्य आदि मेरा नहीं है। आत्मा के अलावा कोई चीज मेरी नहीं है।

राजा ने संकल्प करने के बाद कहा कि मुझे आत्मा का बोध कराइए।

अष्टावक्र ने कहा कि आप तैयार हो जाइए। आपने अपनी सब चीजें संकल्प पूर्वक त्याग दी, किंतु अभी गुरु दक्षिणा नहीं दी। गुरु दक्षिणा के बिना

आपका ज्ञान सफल नहीं हो पाएगा।

राजा ने पूछा कि क्या होगी गुरु दक्षिणा! तो ऋषि ने बताया कि गुरु दक्षिणा में जो भी आपका हो, वह हो सकता है। राजा ने आदेश दिया कि राजकोष से धन निकालो। ऋषि ने कहा कि राजन रुको, राजकोष का आप पहले ही त्याग कर चुके हैं फिर आपने उससे धन निकालने का विचार कैसे कर लिया! ऋषि ने कहा कि मेरे कहे बिना, मेरी अनुमति के बिना मन में कोई विचार पैदा नहीं होना चाहिए। आप में से कौन-कौन तैयार है? केवलज्ञान ऐसे ही नहीं मिलेगा। उसे प्राप्त करने के लिए मन, वचन और काया को जीतना पड़ेगा।

थोकड़ों के जानकार जानते हैं कि केवलज्ञानी मन का प्रयोग नहीं करते। उन्हें 'नो संज्ञी नो असंज्ञी' कहा जाता है। वे अपने किसी कार्य के लिए मन का प्रयोग नहीं करते हैं। केवल जब वैमानिक देव अपने स्थान पर रहते हुए ही किसी प्रश्न का समाधान चाहते हैं तब भगवान मन को प्रश्न के समाधान के रूप में परिणमन करते हैं। उससे उनका समाधान हो जाता है। इस प्रकार मन को विराम दे पाएंगे तो केवलज्ञान प्रकट हो पाएगा।

हमारा मन कहाँ-कहाँ घूम रहा है? विचार करें कि एक मिनट में कितनी बार कहाँ-कहाँ के घूम के आ जाता है! एक मिनट तो बहुत ज्यादा है, एक सेकंड में कहाँ-कहाँ घूम के आ जाता है, पता ही नहीं पड़ने देता।

राजा जनक आत्मज्ञानी हो गए। उनको आत्मा का बोध हो गया। श्रीमती भी आत्मनिष्ठ थी। धर्म पर उसकी गहरी आस्था थी। गहरी निष्ठा थी। उसे धर्म श्रद्धा से विचलित करने में कोई समर्थ नहीं हो सका।

हम भी श्रद्धा से भगवान का स्मरण करते होंगे, किंतु हमारे भीतर स्वार्थ आ जाता है कि भगवान अब आप ही संभालना। परिवार की हालत यह हो रही है कि एक उठता है तो दूसरा बीमार पड़ जाता है और दूसरा उठता है तो तीसरा बीमार पड़ जाता है।

व्यापार की दशा भी विचित्र हो रही है। मोदी जी ने कहीं का नहीं रखा क्योंकि बाजार मंदा चल रहा है। किसानों को बहुत सुविधाएं मिल रही हैं, बहुत चीजें फ्री मिल रही हैं। जो बहुत पैसे वाले हैं उनको बढ़-चढ़ के रोजगार मिल रहे हैं। बीच का व्यापारी वर्ग दो पाटों के बीच पिस रहा है। उसकी हालत

बहुत विचित्र हो रही है। जैसे अकाल में अधिकमास बड़ा भयंकर होता है, दुष्कर लगता है, वैसे ही कोरोना की मार ने कमर तोड़ दी।

आप भगवान से निवेदन करते हैं कि अब आप ही संभालो। मान लो भगवान कहें- ''मैं तैयार हूँ, तुम चिंता छोड़ दो,'' किंतु हम चिंता छोड़ने के लिए राजी नहीं हैं। भगवान का स्मरण जरूर करते हैं, किंतु स्वार्थ की परत को साथ में रखते हैं। यह परत सुख-शांति से दूर कर देती है।

जैसे पारसमणि और लोहे के बीच पड़ा कागज लोहे की डिब्बी को सोने की नहीं बनने देता, वैसे ही स्वार्थ की परत हमें सुख-शांति नहीं प्राप्त कराती। बाहुबली जी के अहंकार की एक छोटी-सी परत उनके केवलज्ञान में बाधक बन रही थी। छोटे भाइयों को वंदना करने में बाहुबली जी का अहंकार बाधक बन रहा था। जैसे ही बाहुबली जी का अहंकार खत्म हुआ उन्हें केवलज्ञान हो गया। आप विचार करें कि अहंकार की एक हल्की परत सर्वज्ञ बनने में रुकावट पैदा करने वाली होती है। जैसे कागज की परत लोहा को सोना नहीं बनने देती।

सूई की नोंक में से हाथी निकल जाता है, किंतु उसकी पूँछ अटक जाती है। वह पूँछ ही केवलज्ञान प्रकट नहीं होने देती।

वापस लौटते हैं श्रीमती के प्रसंग पर। श्रीमती के परिवारवालों ने विचार किया कि इसका खात्मा कर देना चाहिए। उसका खात्मा करने के लिए परिवार वालों ने एक सपेरे से जहरीला, विषधर नाग लेकर एक घड़े में डाल दिया। घड़ा थोड़ा गहरा था। श्रीमती से कहा गया कि पुष्प की एक माला घड़े में रखी हुई है, उसको निकाल के अपने पति के गले में डाल दो।

घरवालों का विचार था कि वह जैसे ही हाथ डालेगी उसे सर्प डस लेगा और वह मर जाएगी। उसका काम खत्म हो जाएगा। रोज-रोज की झंझट खत्म हो जाएगी। लोगों में बदनामी भी नहीं होगी। अपयश भी नहीं होगा। कहा जाएगा कि सर्प ने काट लिया और मर गई।

श्रीमती का नियम था कोई भी कार्य करने से पहले **'नमो अरिहंताणं'** बोलना। नवकार मंत्र बोलना। संत भी कई बार कहते हैं कि कुछ भी खाना-पीना हो तो मुँह में डालने से पहले नमो अरिहंताणं बोलना चाहिए।

और खाना-पीना हो जाए तो क्या बोलना चाहिए?

(श्रोतागण बोले– नमो सिद्धाणं बोलना चाहिए)

मैं उससे आगे बढ़कर बात कहता हूँ कि किसी ने जहर दे दिया, दूध में, चाय में या खाने में दे दिया तो खाने से पहले मुँह से क्या निकलेगा?

(श्रोतागण बोले– नमो अरिहंताणं)

ऐसे में वह जहर अमृत भी हो सकता है। यदि आयुष्य पूरा हो ही गया होगा तो मरेंगे किंतु मरेंगे भी तो नवकार मंत्र की श्रद्धा से। तब नरक–निगोद में नहीं जाएंगे। सद्गति होगी। 'आम के आम और गुठली के दाम' हो जाएंगे। लाभ ही लाभ होगा। नुकसान की कोई बात ही नहीं है।

लोग कहते हैं कि म.सा.! नियम तो लें लें पर भूल जाते हैं। नियम भूल जाते हो किंतु साँस लेना तो नहीं भूलते! साँस लेना नहीं भूलते हैं। किसी से बदला लेना हो तो भी नहीं भूलते। किसी की निंदा करना भी नहीं भूलते हैं। दस–बीस साल पुरानी बातें याद रह जाती हैं। लेकिन नियम भूल जाते हैं।

धम्म सद्धा चालीसा में कहा गया है–

महा भयंकर नाग उठाया, श्रीमती मन भय नहीं आया।
विषधर पुष्प हार बन जाता, अन्तर्मन संगीत गुंजाता।।

श्री हरि ऋषि जी ने कहा है–

सुमिरन करके श्रीमती ने, नाग उठाया काला।
महाभयंकर विषधर था, वह बनी पुष्प की माला।
सुभद्रा ने तौला, चम्पा द्वार खोला, फेरो एक माला, हो हो...

श्रीमती ने हृदय से नवकार मंत्र का स्मरण कर विषधर नाग को हाथ में ले लिया। वह विषधर नाग फूल की माला बन गया। विषधर सर्प दूसरों को फूल की माला दिख रहा है। घरवाले ताज्जुब करने लगे कि यह क्या हो गया। वे सोचने लगे कि हमने विषधर डाला था यह फूल माला कहाँ से आ गई।

यह किसका परिणाम था?

(श्रोतागण बोले– धर्म श्रद्धा का परिणाम)

''धर्मो रक्षति रक्षितः''

जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा निश्चित रूप से करता है। जो धर्म की रक्षा नहीं करेगा, जिसका धर्म ही सुरक्षित नहीं होगा, वह खुद सुरक्षित कहाँ से होगा। लोग कहते हैं कि म.सा. हम सामायिक करते हैं,

हमको उसका क्या लाभ मिला। ऐसा कहने वाले यह बताएं कि आपने सामायिक कैसे की?

पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि धर्म रोकड़िया धंधा है। इस हाथ से लीजिए और उस हाथ से दीजिए। एक हाथ से लेना और एक हाथ से देना। इसका लाभ तत्काल मिलेगा। तत्काल समाधि मिलेगी, शांति मिलेगी। आप कषायों का शमन करके देख लो शांति मिलेगी या नहीं! इस भ्रांति में नहीं रहना कि क्रोध करने से शांति मिलेगी। क्रोध का शमन करने से शांति मिलेगी।

धधक रहा है द्वेष, दावानल प्रेम पयोधि बहाना प्रभुवीर जिनराज जी...

भीतर द्वेष का दावानल भभकना शमन नहीं है। शमन करना मतलब एकदम से भूल जाना। जैसे मोबाइल में कोई समाचार आया आपने डिलीट कर दिया। डिलीट करने के बाद वह मोबाइल में नहीं रहेगा। जैसे दर्पण के सामने कोई व्यक्ति गया और तुरंत हट गया तो दर्पण में कुछ नहीं दिखेगा। जब व्यक्ति सामने होता है, तब दर्पण में दिखता है। दर्पण के सामने नहीं रहने पर खाली नजर आएगा।

हमारे भीतर क्रोध का कोई भी बिंदु, कोई भी सुराख नहीं रहना चाहिए। कोई सुराख नहीं रहेगा तब शमन होगा। शमन करने वाले को शांति नहीं मिले, ऐसा संभव नहीं है।

सुनंदा परिस्थितियों का मूल्यांकन करती हुई अपने आपको शांत रखने का प्रयत्न करती है।

सुंदर हो संस्कार, भविकजन, सुन्दर हो संस्कार...
सास वचन का पालन करती, देखभाल सुरेश की करती,
पूर्ण रूप चित चाय, भविकजन, सुंदर हो...
खाना खिलाती व नहलाती, बड़े यतन से उसे सुलाती,
पूरा करती काम, भविकजन, सुंदर हो संस्कार...

सुनंदा ने माँजी को वचन दिया था कि आप निश्चिंत रहिए, मैं सुरेश की बराबर देखभाल करूंगी। उसका वचन देना केवल कहने की बात नहीं थी। वह वचन का निर्वाह कर रही थी। वचन के अनुसार वह सुरेश को खाना खिलाती, नहलाती, सुलाती। अपनी संतान से बढ़कर उसकी देख-रेख करती।

सुरेश प्रसन्न था, किंतु विजय को यह बात बड़ी अटपटी लगती। उसको समझ मे नहीं आ रहा था कि वह उसका उतना ध्यान क्यों रख रही है। क्यों इतना देखभाल कर रही है। विजय भीतर-ही-भीतर घुट रहा था कि मुझसे बढ़कर उसकी सेवा हो रही है। मेरी तरफ इतना ध्यान नहीं दे रही है। विजय कई बार दाँत भींच कर रह जाता।

थोड़ा-सा विचार करें कि सुनंदा सुरेश का काम कर रही है तो विजय को चिढ़ क्यों हो रही है!

यह द्वेष का परिणाम है। ईर्ष्या व अहंकार का परिणाम है। उसे लगता है कि बस मेरी सेवा होनी चाहिए, उसको कुछ नहीं होना चाहिए। विजय सोचता है कि सुनंदा मेरी पत्नी है तो उसे मेरी बात माननी चाहिए। उसे मेरी तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिए। सुरेश की सेवा नहीं करनी चाहिए। हालांकि सुनंदा अपने पति का पूरा ध्यान रखती है। उनकी भी पूरी सेवा करती है। चाकरी करती है।

'पराई थाली में घी घणो दिखे' वाली बात चरितार्थ हो रही थी। विजय को लग रहा था कि वह उसकी तरफ ज्यादा ध्यान दे रही है। अनाज में रह गया एक घुन सारे अनाज को साल देता है। भीतर ही भीतर खोखला कर देता है। लकड़ी में लगा दीमक लकड़ी को खोखला बना देता है। उसी तरह स्वार्थ का दुर्गुण जिसके मन में लग जाता है वह सोचने लगता है कि मेरी उपेक्षा हो रही है। मेरी तरफ ध्यान नहीं जा रहा है।

मेरी तरफ ध्यान नहीं जाने का विचार आदमी को दुखी बनाता है। आदमी को खोखला बना देता है, फिर भी व्यक्ति सावधान नहीं होता, सजग नहीं होता। जैसे दीमक लगने से लकड़ी खोखली हो जाती है, वैसे ही ईर्ष्या और द्वेष का दीमक जिसको लग जाएगा, उसके जीवन को खोखला किए बिना नहीं रहेगा। यह जानते हुए भी हम किस ओर जा रहे हैं? किस ओर हमारी प्रवृत्ति हो रही है?

विजय की सेवा बराबर हो रही थी, किंतु वह चाहता था कि मेरी पत्नी मेरी ही सेवा करे। वह सुरेश की सेवा क्यों करे। इस सोच से वह भीतर-ही-भीतर कुढ़ता रहता फिर भी सुनंदा के व्यवहार से उसे थोड़ी तसल्ली होती है। वह थोड़ी देर के लिए संतोष कर लेता है।

आगे क्या स्थिति बनती है, कौन-सा प्रसंग किस रूप में घटता है, समय के साथ सुन पाएंगे।

मल्लिका श्री म.सा. की आज 27 की तपस्या है। मंजू जी छिंगावत की आज 30 की तपस्या है। वह 31 के पच्चक्खाण की हुई हैं। आज वह मासखमण के रथ पर आरूढ़ हो रही हैं। महेश जी ने बताया कि वे स्वाध्याय सेवा भी देती रही हैं। सरिता मुणोत की आज 37 की तपस्या है। और कई भाई-बहनों में तपस्या चल रही है। इन तपस्वी आत्माओं से प्रेरणा लेकर लक्ष्य बनाएं कि मेरी आत्मा में भी ऐसी शक्ति जगे जिससे मैं भी समभाव की आराधना में सफल होऊं। ऐसा लक्ष्य बनेगा तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

05 अगस्त, 2023